अध्यात्म-ज्योतिष-विचार

ह. ने. काटवे

ज्यांना ज्योतिषशास्त्राचा उपपत्तिसह विचार करावयाचा असेल त्यांनी हे पुस्तक अवश्य पहावे.

— पुरुषार्थ, सुरत.

माझ्या माहितीप्रमाणे अशा पद्धतीने लिहिला गेलेला हा पहिलाच ग्रंथ आहे.

— ज्यो. वसंत लाडोबा म्हापणकर,
धनुर्धारी, मुंबई.

पुस्तक में योग के विविध चक्रों, ग्रहों और वेदान्त के तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन है।

— सरस्वती, प्रयाग.

पुस्तक चाळून पाहता काटवे महाशयांनी अनेक ज्योतिषी, योगी, महात्मे यांच्यावर मात केली असून पुष्कळच गुप्त असलेली माहिती जनताजनार्दनासमोर मुक्त हस्ताने ठेवली आहे.

— ज्यो. यशवंत केशव प्रधान,
मुंबई.

लेखक ने बडे परिश्रम के साथ ज्योतिष विद्या के आधार से वेदान्त को घटाया है। यह ग्रंथ ज्ञानप्राप्ति और ग्रहों तथा भावों के फल कहने में निराला ही दिख पडता है।

— राजज्योतिषी पं. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी,
नरसिंहगढ (म.प्र.)

मूल्य १२०/- रुपये

पं. राकेश चतुर्वेदी
"ज्योतिर्विद्"
0562- 381238
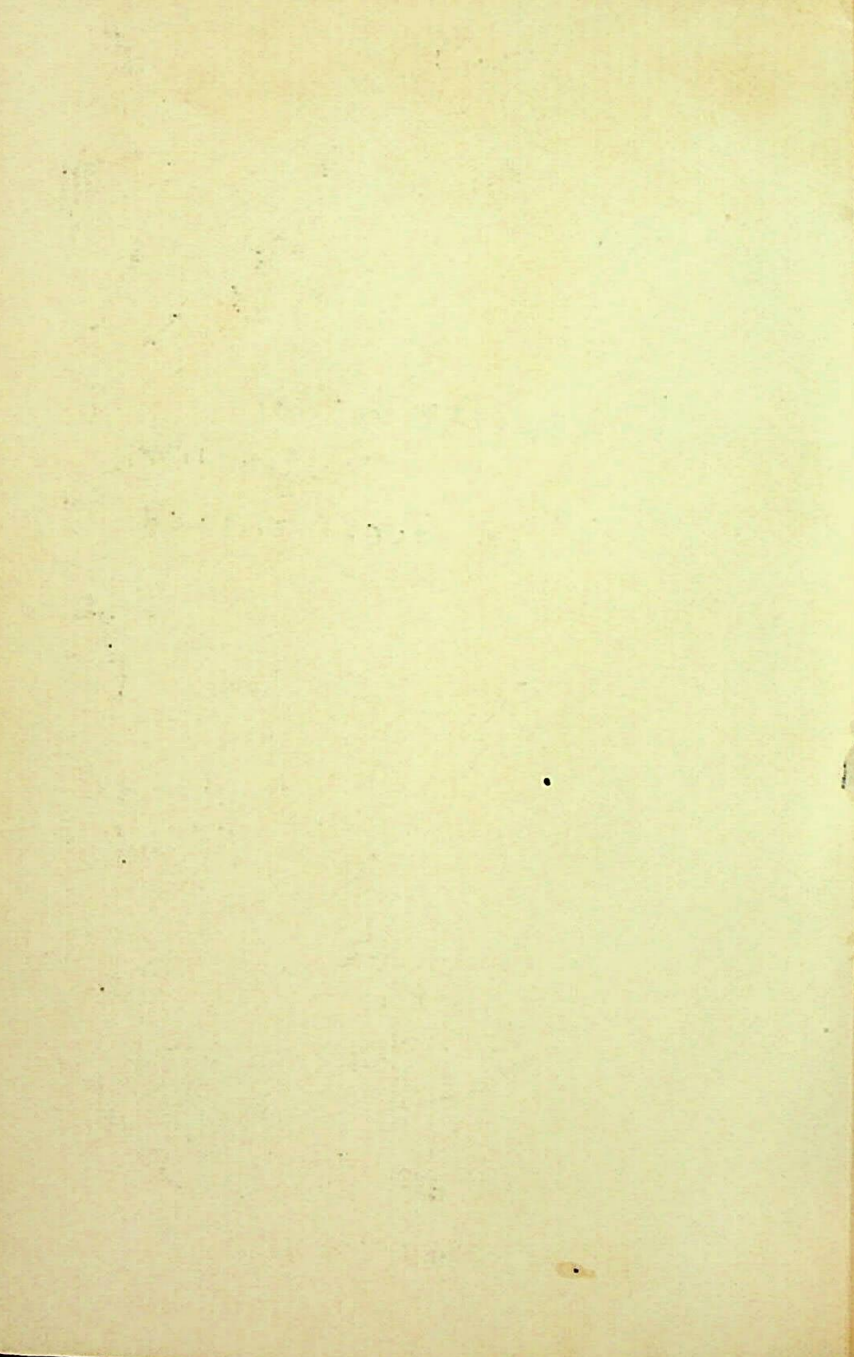
मेरे परम गुरू - भगवान महाबीरजी

अध्यात्म-ज्योतिष-विचार

लेखक

ज्योतिषी कै. ह. ने. काटवे,

२५ ज्योतिष ग्रंथोका कर्ता

नागपूर प्रकाशन, धंतोली, नागपूर - १२

श्रीमत् ब्रम्हीभूत भगवान ब्रम्हचैतन्य महाराज गोंदवलेकर

मु. गोंदावलेबुद्रुक जि. सातारा

चित्र नंबर २

अर्पण

मेरे परम गुरु भगवान महाबीरजी और गुरु भगवान ब्रह्मीभूत ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदावलेकर इन दोनों के चरणोंपर नम्रता से मस्तक रखकर, मुझे ज्येतिष शास्त्र का पूर्ण तया ज्ञान देनेवाले सद्‌गुरु सच्चिदानंद स्वरुप परमहंस श्री कृष्णानंद सरस्वती यति (पूर्वाश्रम के नृसिंहवाडी दत्तस्थान के पुजारी) काशी निवासी इनके चरणोंपर नम्रतापूर्वक भक्ति से यह ग्रंथ समर्पित करता हूँ ।

ता. १५-१-१९४९
सिताबर्डी, नागपूर

संत दासानुदास
विद्यार्थी ज्यो. ह. ने. काटवे

- भूमिका -

मैं जादा लिखा पढ़ा नहीं हूँ । मेरा जन्म और रहना कर्नाटक में, मातृभाषा अलग, बोलना कानडी और शिक्षण मराठी में । ऐसी अवस्था में यह ग्रंथ टुटी फुटी हिन्दी भाषा में लिखकर प्रसिद्ध किया है। हिन्दी भाषी प्रमाद हो गये हों तो मुझे क्षमा कर इस ग्रंथ का सार ग्रहण करेंगे ऐसी उनको मेरी विज्ञप्ति है । इस ग्रंथ में मैंने योग शास्त्र, वेदान्त और ज्योतिष शास्त्र इन तीन शास्त्रों का अपने अल्प बुद्धी से समन्वय किया है । यह कितना बरोबर हुआ यह देखना विद्वानों पर निर्भर है ।

क्षमस्व

१५-१-१९४९ }
बुधवार }

भवदीय
विद्यार्थी ज्यो. ह. ने. काटवे
सिताबर्डी, नागपूर

वक्तव्य

इस ग्रंथ के लेखक श्री. ह. ने काटवे महोदय ने यह ग्रन्थ सन १९४२ में बहुत परिश्रम कर कई वर्षों के बाद खुद का अनुभव ले कर लिखा है । यह ग्रंथ इस के पूर्व ही प्रकाशित हो जाना चाहिये था परंतु कई कारणवश इसे प्रकाशित करने में हमें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा इसलिये यह ग्रन्थ आज तक प्रकाशित न हो सका ।

इस ग्रन्थ में हिन्दू वेदान्त और योगशास्त्र को ज्योतिष शास्त्र में समन्वय करना बड़ी कठीन बात है परंतु आपने उसे बड़ी सुगमता के साथ सरल भाषा में किया है, इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं ।

यह ग्रन्थ रामेश्वर प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री. लक्ष्मणराव मनाजी पटले, इन्होंने अल्प समय में मुद्रित कर दिया इसलिये उन्हें धन्यवाद । तथा श्री. निमगांवकर, बी. ए.और श्री. सीतारामजी ठाकरे, नागपुर, इन्होंने यह ग्रंथ प्रकाशित करने के संबंध में मुझे जो बहुमूल्य सहायता दी उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ ।

आशा है यह ग्रन्थ पाठकों को प्रिय हो कर अपना उद्देश पूर्ण करने में सफल होगा ।

व्दितीय आवृत्तीकी प्रस्तावना

इस ग्रंथ का व्दितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें बहुत आनंद हो रहा है। इस से यह प्रमाणित होता है । कि इस विषय की अधिकाधिक जानकारी पाने की लोग इच्छा करते है। अध्यात्म, योग और ज्योतिष इन विषयों का समन्वय कराना यह मामूली आदमी का काम नहीं । जिसका इन तीनों विषयोंपर प्रभुत्व है, वही यह जटिल कार्य कर सकता है। इस ग्रंथ में वही कार्य अच्छी तरह से ग्रंथकार ने यशस्वी रीतिसे साध लिया है । हमलोग उनके बहुत ऋणी है। प्रथम संस्करण के समान यह संस्करण का भी लोग स्वागत करेंगे, ऐसी आशा है ।

\- प्रकाशक

अनुक्रमणिका

परिच्छेद		पृष्ठ
	उपोद्‌घात योगशास्त्र से ज्योतिष शास्त्रकी उत्पत्ति कैसे हुई ?	९
१.	आखिर वेदान्त क्या है ?	२२
२.	वेदान्त का मानव - प्राणीसे क्या संबंध है ?	२४
३.	वेदान्त और ज्योतिष शास्त्रका पारस्पारिक संबंध ...	२६
४.	रवि (ब्रह्म) उत्पत्ति	२८
५.	चंद्र (माया) स्थिती	५२
६.	शनि (वैराग्य) लय	६१
७.	राहू (मोक्ष, विदेही स्थिति) ज्ञान	६५
८.	पूर्व जन्म पुनर्जन्म	६८
९.	द्वैताद्वैत विचार	७७
१०.	ग्रहयोनि भेदाध्याय	८३
११.	कारकत्व	९६
१२.	मेषादि राशियोंका वेदान्तकी दृष्टीसे विचार	९९
१३.	राशियोंके स्वभाव	१३७
१४.	द्वादश भावोंमें क्या क्या देखना चाहिये	१५३
१५.	द्वादश भावस्थित ग्रहोंका फलादेश	२१६
१६.	ग्रहयोग फल	२३०
१७.	पूर्वजन्म कर्म संशोधन	२३२
१८.	महात्माओंके कुंडलियोंका विवेचन	२४६

चित्रोंकी सूची

चित्र क्र.		पृष्ठ क्र.
१	मेरे परम गुरु भगवान महावीरजी	१
२	श्रीमत् ब्रह्मीभूत भगवान ब्रह्माचैतन्य महाराज गोंदावलेकर	५
३	इस ग्रंथ के प्रकाशन कै. दि. मा. धुमाळ	९
४	चक्र युक्त प्रणवाक्षर	२१
५	सहस्त्रार कमल	१५५
६	आज्ञाचक्र	१६१
७	विशुद्धचक्र	१६६
८	अनाहत चक्र	१६९
९	मणिपूर चक्र	१७३
१०	स्वाधिष्ठान चक्र	१७७
११	कुण्डलिनी	१८४
१२	स्वयंभुलिंग	१८५
१३	भ्रूमध्य दृष्टी	१८६
१४	वह्मद्वार	१८७
१५	कुण्डलिनीका उपर चढनेका विवर ...	१९१
१६	मूलाधार चक्र	१९१
१७	नेताजी सुभाष चंद्र बोस	२००
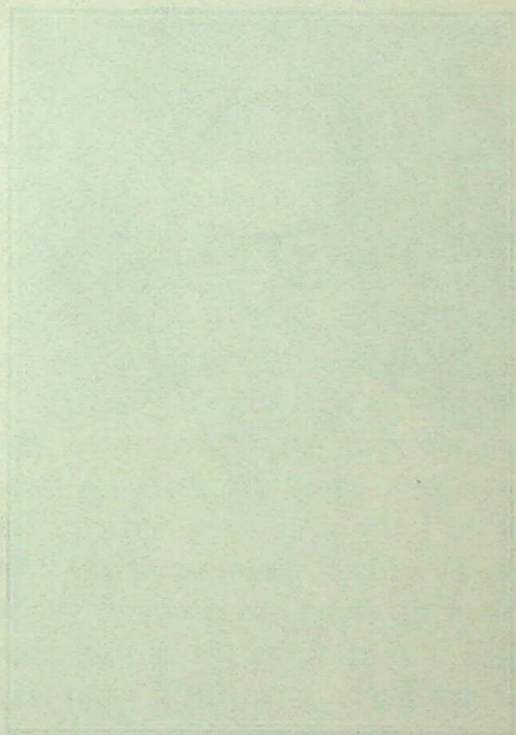
नागपूर प्रकाशन

स्थापना : १९३२

के संस्थापक एवम् प्रेरणास्थान
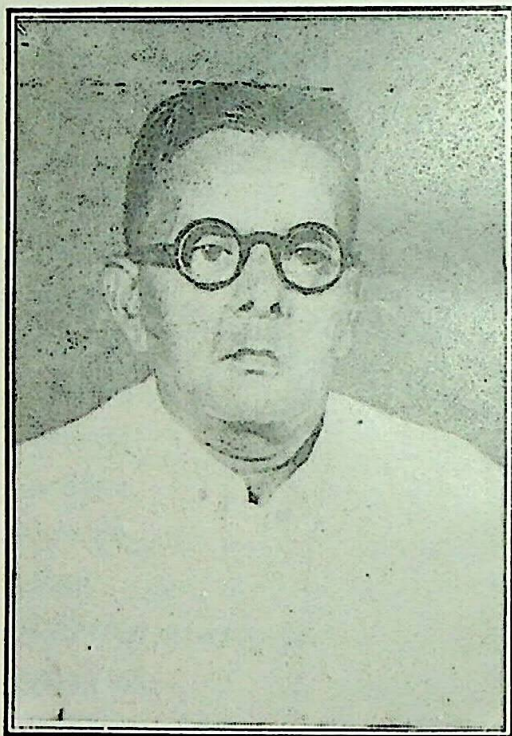
मा. स्व. ती. दिगंबर मारुती धुमाल

जन्म : २६–१२–१९१० निर्वाण : १७–४–१९९४

॥ श्री ॥

उपोद्घात

योग शास्त्र की प्राचीनता

सारे इतिहासकार अच्छी तरह जानते हैं कि अति प्राचीन काल में भारतवर्ष में द्राविड़ लोगों का साम्राज्य था। जिस समय आर्य संस्कृति भारतवर्ष को पूर्णरूप से व्याप नहीं सकी थी उस समय भारत में द्राविड़ों का बोलबाला था। उन्नति के अत्युच्च शिखर पर विराजमान वह द्राविड संस्कृति संपूर्ण रुपसे सर्वांगीण उन्नति की ओर बढ़ रही थी। द्राविड़ों का राज्य ही नहीं साम्राज्य भी था। जनता सुखी थी। धार्मिक,नैतिक, राजनैतिक और पारमार्थिक उन्नति उच्च कोटि को पहुंची हुई थी और पति-पत्नि का जीवनपर्यंत संबंध, पिता-पुत्र का नाता, राजा, प्रधान तथा सेनापति के संबंध जनता अच्छी तरह समझती थी। हरएक व्यक्ति अपना कर्तव्य पालन करता था। द्राविड़ लोग बलिष्ठ थे। ऐसे समय में एक काल ऐसा आया कि लोगों में शिव की उपासना जोरों से चली। एक ओर पंजाब में ऐसी परिस्थिति का बोलबाला था और उत्तर की ओर से वैदिक आर्य संस्कृति के प्रचारक दक्षिण की ओर जोरों से बढ़ रहे थे। जिस समय वैदिक आर्य पंजाब से उत्तर में आये तब उन का कोई राज्य न था। वे संघ के संघ बना कर अलग अलग रहते थे। उन में अलग अलग देवताओं की उपासना चल रही थी। उन के देवता इंद्र, वरुण, उषा, पूषा, सूर्य, इत्यादि थे। उन में यज्ञ की प्रथा थी। यज्ञ में वे सोम नामक मद्यपान किया करते थे। उन का व्यवसाय विशेषतः गो पालन था। इन में विष्णु भक्ति की प्रधानता थी। आर्यों के चालचलन आदि का, इन की गतिविधियों का द्राविड़ों को पता रहा होगा ऐसा इतिहास से जान पड़ता है। ये द्राविड़ लोग

कट्टर शिवभक्त और लिंगपूजक थे । ऐसे समय यह निश्चित ही था कि दोनो में झगड़े होते । झगड़े शुरू हुए और आर्यों की यज्ञ पूर्ति में द्राविड़ों की ओर से बाधाएँ आने लगी । आर्य लोग इन्द्र से प्रार्थना करते समय कहने लगे -

"मा शिश्न देवा अपि गुन्हंतनः"

अर्थात् हे इन्द्र यह लिंगपूजक लोग हमारे यज्ञ में विघ्न उपस्थित न करें ।

उस समय हिन्दुस्तान में चक्रवर्ती साम्राज्य का राज्य करने वाले हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु पंजाब के राजा थे । ये दोनों ही महान शिवभक्त और योगेश्वर थे । इनके गुरु श्री शुक्राचार्य नामक महान योगेश्वर थे । जिस समय शुक्राचार्य जी समाधि अवस्था में रहते उस समय उन के हृदय में संजीवनी नामक विद्या का स्फुरण होता था । बस, यहीं से भारतवर्ष के सच्चे इतिहास का प्रारम्भ होता है । परन्तु हमारे दुर्दैव से यह इतिहास, पुराण और केवल दंत कथाओं के रूप में ही रह गया है । इसी समय आर्यों के संघ का एक नृसिंहं नामक संघनायक महान बलिष्ठ, ऊंचा, सुवर्ण वर्ण का, अत्यंत उग्र और क्रूर Greatest Politician था । इसी ने हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु का खुले आम सामना किया । इनके रहते रहते पंजाब में आर्यों का प्रभुत्व जम नहीं सकता; यह जान कर हिरण्याक्ष का उस ने कपट से वध किया । इसीलिए हिरण्यकश्यपू ने नृसिंह का भयंकर पीछा किया । उस समय हिरण्यकश्यपु के पुत्र प्रल्हाद ने घर भेदिये का काम कर उसे अपने दालान में लाकर कपट से पिता का वध करवाया । कारण हिरण्यकश्यपु ने अपने पुत्र प्रल्हाद को नारायण भगवान की भक्ति नहीं करनी चाहिये ऐसी ताकीद दी थी और इसी लिए प्रल्हाद पिता के विरुध्द था । इस तरह एक योगेश्वर का घात हुआ । और आगे प्रल्हाद जब गद्दी पर आया तो भक्तियोग शुरू हुआ । उसने नारायण की भक्ति का प्रतिष्ठान किया । प्रल्हाद की मृत्यु के बाद उस का पुत्र विरोचन राजगद्दी पर बैठा और उसने पुनः शिव भक्ति का प्रचार किया; इतने लम्बे समय तक भी

आर्य पंजाब में नहीं उतर सके थे। विरोचन की मृत्यु के बाद उस का पुत्र बलि जब राजगद्दी पर बैठा तब भी शिवभक्ति का ही प्रचार जोरों से था। बलि महान शिवभक्त तथा योगेश्वर था। इस ने शुक्राचार्य की मदद से एक बड़ा यज्ञ किया। इसी समय आर्य लोग पंजाब प्रान्त में आये और बलि को पाताल में (अमेरिका को) भगा दिये। उस समय बलि अपने देवता शिवलिंग को भी साथ लेकर गया। इस से यह साबित होता है कि बलि को भगाकर आर्य लोग हिन्दुस्तान में स्थिर हुए और द्राविड़ों को दक्षिण की ओर पूर्ण रूप से भाग जाना पड़ा। यह बात सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है कि इस काल में शिवभक्ति योग-शासन का बोलबाला था। मैं उस समय का वर्णन कर रहा हूं जब कि आर्य हिन्दुस्तान में आये ही न थे; केवल आने का प्रयत्न कर रहे थे। और उनका कट्टर विरोध करनेवाले हिरण्याक्ष व हिरण्यकश्यपु कट्टर शिवभक्त हिन्दुस्तान में थे। यह काल निश्चित करना इतिहास के प्रकाण्ड विद्वानों पर सौंपना चाहिए पर मेरी अल्पमति में यह अति प्राचीन काल, कम से कम बीस से पच्चीस हजार वर्ष पहले का होगा। इसके बाद का समय अर्थात रामायण काल में तो महान शिवभक्त योगेश्वर रावण हो गया। राम स्वतः शिवभक्त थे यह सारे संसार में प्रसिद्ध है। महाभारत के काल में बाणासूर योगेश्वर था। इसी समय में आर्यों ने द्रविड़ों के कुछ रीतिरिवाज सीखे और शिवभक्ति तथा योगाभ्यास को उन्हों ने अपनाया और अपने कुछ रीतिरिवाज द्रविड़ों को दिये; जिस में विष्णुभक्ति भी थी। इस तरह दो विपरीत सभ्यताओं का संगम शुरू हुआ और वह पक्का हुआ।

योग शास्त्र द्राविड़ों का ही है आर्यों का नहीं।

यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि बाद के समय में आज तक बहुत से योगेश्वर हो गये। इस विवेचन से पाठकों के ध्यान में एक बात स्पष्ट रूप से आ गई होगी कि प्राचीन द्राविड़ों में शिवभक्ति व योगाभ्यास का प्रचार जोरों से था और उसी समय आर्यों में यज्ञ और विष्णुभक्ति थी। इस से यह सिद्ध होता है कि आर्य गंगा नदी के तट पर आ कर रहने लगे

तब तक उन को योगाभ्यास का ज्ञान नहीं था। उन्हें योगाभ्यास की जानकारी काश्मीर से मिली होगी। अब योगशास्त्र में योगशास्त्र की प्राचीनता के विषय में कुछ प्रमाण मिलते हैं या नहीं इसकी और ध्यान देंगे। योगशास्त्र में तीन बातें बहुत महत्व की है।

(१) षट्चक्र भेदन (२) सुषुम्नानाड़ी (३) कुंडलिनी

अब क्रमशः इन का विवेचन करेंगे।

षट्चक्र भेद विवेचन

चक्रका नाम	देव	शक्ति
१ मूलाधार	गणेश	डाकिनी
२ स्वाधिष्ठान	विष्णु?	राकिनी
३ मणिपुर	वृद्धरुद्र	लाकिनी
४ अनाहत	ईशानरुद्र	काकिनी
५ विशुद्ध	पंचवक्त्ररुद्र	शाकिनी
६ आज्ञा	लिंग (शिव) अर्ध नारीनटेश्वर	हाकिनी
७ सहस्रार	परमशिव	काली+गंगा

उपरोक्त चक्रों के देवताओं का विचार करने पर स्वाधिष्ठान चक्र को छोड़ कर अन्य चक्रों में शिव का ही अधिष्ठान दिखाई देता है। स्वाधिष्ठान चक्र पर विष्णु के पूर्व शिव का ही अधिष्ठान होगा। परन्तु जब आर्यों ने रीति रिवाजों का लेन देन किया तब उन्हों ने विष्णु की स्थापना इस स्थान में की होगी। इसी तरह प्रत्येक चक्र में एक एक लिंग ही है और अंत में परम ब्रह्मज्ञानी होने पर साधक को अंतिम चक्र में अर्थात् सहस्रार में परमशिव की भेंट होती है। शिव ये पुराण पुरुष-आदि पुरुष-हैं और इस से इन के जन्म की कथा अगम्य है। दूसरी बात इस के प्रत्येक चक्र में प्रत्येक देवता की शक्ति बतलाई गई है वे राकिनी इत्यादि हैं। ये नाम किसी भी भाषा के नहीं हो सकते हैं, कारण तेलगू,तामिल, मलियाली, कुर्गी, कानड़ी और तुलु या संस्कृत आदि भाषाओं में यह शब्द नहीं हैं। ये शब्द मूल द्राविड़ी भाषा के होने चाहिये।

२ सुषुम्ना नाड़ी

योगशास्त्र में इस नाड़ी का शांभवी, मध्यमार्ग, ब्रह्मरन्ध्र महाषथ शून्य पदवी नाम 'स्मशान' नाम से प्रसिद्ध है। यह स्मशान शंकर को प्रिय है और उसी तरह शांभवी नाम शिवशक्ति का है। इस नाड़ी पर शिव का अधिष्ठान है।

३ कुंडलिनी

इस नाड़ी के निम्न लिखित नाम शिवशक्ति पार्वती के हैं।

"मायाकुंडलिनी क्रिया मधुमती, काली कला मालिनी।
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शांभवी।
शक्तिः शंकर वल्लभा त्रिनयना, वाग्वादिनी भैरवी।
ऱ्हीं कारी त्रिपुरा परापरमयीं माताकुमारी त्यसि।
सरस्वती त्रिवेणी मूल नाड़ी महादेवी।"-अरून्धति भुजंगिनी

इसका विवेचन कर देखा जाय तो पता चलेगा कि यहाँ भी शिव और पार्वती का ही अधिष्ठान है। इस के अतिरिक्त योग शास्त्र के प्रारम्भ के दो श्लोकों मे भगवान शिव ने ही इस शास्त्र का पहले पहले उपदेश किया ऐसा कहा गया है।

इस समूचे विवेचन का तात्पर्य यह है कि यह योग योगशास्त्र द्राविड़ लोगों का था यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। अब इस योगशास्त्र से ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति किस तरह हुई इस का वर्णन आगे दिया गया है।

योगशास्त्र से ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई ?

योगशास्त्र से ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति किस तरह हुई इस मूल विषय की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

मनुष्य के श्वास दिन-रातमें २१६०० बार चलते हैं और २॥-२॥ घड़ी के अंतर से श्वास बदलते रहते हैं। एक बार दाहिने नथुने से २॥ घड़ी तो दूसरी बार बाएँ नथुने से २॥ घड़ी; इस तरह श्वासों के चलने का प्रमाण रहता है। याने १०८०० श्वास दाहिने नथुने से और १०८०० श्वास

बाएँ नथुने से चलते हैं इस प्रकार २४ घंटों मे कुल २१६०० श्वास होते हैं। जिस-दाहिनी नाड़ी से श्वास चलते हैं उस दाहिनी नाड़ी को पिंगला कहते हैं। यह नाड़ी अति उष्ण रहती है। नाभिकंद में (जहां से यह नाड़ी निकलती है) इस का सूर्य का स्थान है। और यही कारण है कि यह उष्ण होती है। दूसरा अनुभव हमें नित्य प्रति व्यवहार में भी दिखाई देता है। सूर्योदय के पश्चात् मनुष्य के पेट में भूख लगने की क्रिया शुरू होती है, भूख लगना ही उष्णता बढ़ना है। हम देखते हैं कि जैसे जैसे भूख जोर से लगती है वैसे वैसे उष्णता बढ़ती जाती है। ऐसे समय पर यदि खाने को कुछ न मिले तो शरीर तपता है, सिर गरम होता है और आँखों के सामने अंधेरा छाने लगता है, यह क्रिया नाभि के नीचे होती है। अक्सर देखा जाय तो भूख १० बजे से १२ बजे तक जोर से लगती है, और इसी समय उष्णता भी बढ़ती है, और यही समय सूर्य के भी मध्यान्ह में पहुंचने का काल होता है। इस के बाद (१२ बजे से) जब सूर्य धीरे-धीरे पश्चिम की ओर ढलता जाता है तब भूख की तीव्रता भी क्रमशः शान्त होने लगती है। इस से पाठकों के ध्यान में यह स्पष्ट आ गया होगा कि रवि का अपने पेट की उष्णता से अत्यन्त निकटता का पारस्पारिक संबंध है। योगशास्त्र में मणिपुर चक्र सीधे नाभि के नीचे है और इसी चक्र पर सूर्य का अधिष्ठान माना जाना चाहिये। अंग्रेजी पद्धति में सूर्य ही इस का ग्रह माना जाता है। भारतीय यहाँ पर मंगल मानते हैं। (यह ग्रहों की दृष्टि से अधिष्ठान है।) देवताओं की दृष्टि से नहीं, भूख लगने की क्रिया इसी मणिपुर चक्र में शुरू होती है। उसी से मणिपुर चक्र का और सूर्य का संबंध स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। इस पर मंगल का अमल नहीं हो सकता। यदि मंगल का प्रभाव माना जावे तो उष्णता दिन रात चौवीसों घंटे रहनी चाहिये। लेकिन हम पहले ही देख चुके हैं कि परिस्थिति ऐसी नहीं है। इस तरह हम कह सकते हैं कि सूर्य-नाड़ी की उत्पत्ति जिसे पिंगला नाड़ी भी कहते हैं मणिपुर चक्र से हुई है और यह दाहिने नथुने से मिलती हुई है। मणिपुर चक्र सूर्य का स्थान है, इसलिये इस नाड़ी से उष्ण श्वास निकलता है। यही कारण है कि स्वरोदय शास्त्रकारों ने भी सूर्य की स्थिति दाहिने नथुने पर बतलाई है, इसी तरह उन विद्वानों ने चन्द्र की स्थिति बायें नथुने से जो श्वास

चलता है उस पर मानी है। इस का कारण निम्न है- मनुष्य के सिर के बाएँ भाग में बाएँ नेत्र के ऊपरी हिस्से में अमृत निर्माण होने का स्थान है, यह अमृत एक प्रकार का अमरत्व देनेवाला द्रव है; इस द्रव पदार्थ में सत्रहवीं जीवनकला है और इस में गुणधर्म; तेज, ओज, शरीर को नैसर्गिक सुगंध प्रदान करना इत्यादि गुण है।

प्रातः काल ब्राह्म मुहूर्त के समय इस द्रव प्रदार्थ को दो इतने ही बड़े बिन्दु जो कि सुई की नोक पर रह सके हरएक के मुंहमें गिरते हैं। इस में का एक बिन्दु ठीक कुंडलिनी को जाकर मिलता है। अर्ध बिन्दु मणिपुर चक्र में मिलता है और बचा हुआ अर्ध बिन्दु मुंह में ही रह जाता है। मुंह में जो द्रव बिन्दु शेष रहता है इस का कार्य मुंह में आर्द्रता बनाये रखना और लार निर्माण करना हैं। पाठक अच्छी तरह जानते होगे कि मृत्यु के समय जब प्राणी का मुंह सूखने लगता है तब उस में घड़ों से पानी डाला जाय तो भी जिह्वा पर आर्द्रता नहीं आ पाती। इस अमृत को योगशास्त्रमें 'मद्य' नाम से पहचाना जाता है। योगशास्त्र में निम्न लिखित श्लोक पाया जाता है —

> "मद्य मांस मीनंच मुद्रा मैथुन मेवच।
> एते पंच मकार स्यु मोंक्ष दायि युगे युगे ॥
> पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत् पतति भूतले।
> पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ जिसे कौल चार्वाक वाममार्गी और शाक्त लोगों ने माना वह निम्नानुसार है।

मद्य= शराब, मांस=बकरेकी बोटी, मीन=मछलियाँ, मुद्रा= योनी के आकारके बड़े, मैथुन = स्त्री पुरुष संयोग।

लेकिन योगशास्त्र में इस का अर्थ निम्न लिखित है -

मद्य :- चन्द्रामृत हठयोग प्रदीपिका में इसे अमर कहा गया है।

मांस खाना :- प्रातःकाल खेचरी मुद्रा के कारण अमृत के दो बिन्दु का श्राव होता है इन बिन्दुओं को पेट में न लेकर कुंडलिनी को पहुंचा देने की क्रिया को मांस खाना कहते हैं।

मीनः- आसन ८४, सिद्धासन, पद्मासन इत्यादि

मुद्राः- दस मुद्राएँ; खेचरी, षण्मुखी, काकी, शांभवी आदि ।

मैथुनः- प्राण और अपान नामक दोनों वायु की भेंट मूलाधार चक्र में होती है इसी को मैथुन कहते हैं ।

या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परम पदमता सेवनीया सुषुम्ना ।
सा कान्ता लिंग नार्हा न मनुज रमणी सुन्दरी वार योषित ।।
कुर्य्याच्चन्द्रार्क योगे युग पवन गते मैथुनं नैव योनौ ।
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमय भवने तां परिष्वज्य नित्यम्
(भैरव यामल)

कुण्डलिनी रूप काली का सहस्रार में स्थित शिव से मिलना मैथुन कहलाता है ।

इसलिये यहाँ पर चन्द्रामृत का महत्व मालूम होता है । इस में बायें नथुने से श्वास अनाहत चक्र तक जाकर फिर वापिस लौटता है । यह श्वास चन्द्रामृत से आता है इसलिये अति शीत होता है । यही कारण है कि इस श्वास पर चन्द्र का प्रभाव माना जाता है । इस प्रकार हम दो ग्रहों के बारे में विवेचन कर चुके हैं ।अब एक तीसरी नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहते हैं उसका विचार करेंगे ।

सूर्य नाड़ी का चन्द्र नाड़ी में प्रवेश करते समय और चन्द्र नाड़ी का सूर्य नाड़ी में प्रवेश करते समय जो ५ सेकंड का संधिकाल होता है उस समय नाक के सिरेसे ४ अंगुल के अन्तर पर बाहर बहुत ही धीमी चाल से एक नाड़ी चलती है । यह नाडीं कालभक्षक सर्व नाशकारक होती है । मनुष्य की मृत्यु इस नाड़ी में से श्वास निकले बिना नहीं हो सकती और यही कारण है कि इस नाड़ी को योग शास्त्र में श्मशान कहा गया है । श्मशान का अधिकारी शनि अर्थात शंकर होता है । यह नाड़ी नाशकारक है किन्तु साथ ही साथ ज्ञान देने वाली है । इस नाड़ी पर शनि का प्रभाव होता है और शनि का भी यही गुणधर्म है ।

इस प्रकार अब तक रवि, चन्द्र और शनि इन तीन प्रमुख ग्रहों का हमने विचार किया है अर्थात ॐकार के प्रणव की स्थापना हो चुकी है । अब हम शेष ग्रहों का विचार करेगे ।

मंगल :- मनुष्य में जो शारीरिक शक्ति उत्पन्न होती हैं उने कायम रखने का कार्य स्वयंभू लिंग के द्वारा होता है । गुदाद्वार के पास मांस का गोटी के आकार का एक ठोस गोला है । इसी से कुंडलिनी लिपटी हुई है । इसी के पास स्वयंभूलिंग स्थित है । इस शक्ति पर ही सब जीवनकार्य निर्भर है और इसीलिये इस पर मंगल का प्रभाव है ।

गुरू :- मनुष्य की विचार शक्ति का प्रवाह जिस मस्तिष्क में उत्पन्न होता है वह बड़ा मस्तिष्क सिर के दाहिने बाजू में है । इस मस्तिष्क पर गुरु का अमल होता है । इस भाग को शरीरशास्त्र में Cerebrum कहते है ।

बुध :- सिर के बाएँ बाजू कान के पीछे एक छोटा सा मस्तिष्क है । जिस पर बुध का प्रभाव है । इस स्थान में कुंडलिनी आकर स्थिर होती है । इस मस्तिष्क को Cerebellum कहतें है । अंग्रेजी शरीर शास्त्रज्ञ लिखते है —

The functions of the lesser brain are not yet understood completely. It appears to serve in bringing the various muscular movements into harmoninus action.

अंग्रेजी शरीर शास्त्रज्ञों को इस छोटे से मस्तिष्क lesser brain के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका, इस स्थान में कुंडलिनी आकर स्थिर होती है और वहाँ चन्द्रामृत पीना आरम्भ करती है । इस स्थान में ज्ञानशक्ति है, कुंडलिनी को जगाए बिना ये सब बातें समझ में नहीं आ सकती । अंग्रेजी शरीर शास्त्रज्ञों को इस बात का ज्ञान नहीं है और यही कारण है कि वे लोग इस बातको समझने में या इसका विवेचन करने में बिलकुल असफल रहे है ।

शुक्र :- जिस नाड़ी से संभोग के समय वीर्य का प्रवाह शुरू होता है उस नाड़ी पर इस ग्रहका अमल होता है ।

राहू (कुंडलिनी) (अर्द्धमात्रा)

जब कुंडलिनी जगाई जाती है तब उस का मुंह ऊपर की ओर हो जाता है। और वह षट्चक्रों का भेदन कर ऊपर ब्रम्हरंध्र में पहुंचती है; इस कुंडलिनी पर हम ने राहू ग्रह को माना है।

गुदा और लिंगके बीच में मूलाधार नामक चक्र है। इस चक्र का स्वामी या देवता गणेश जी माने गये हैं और गणेश जी बुद्धि के अधिष्ठाता देवता हैं। कुंडलिनी जागृत होने के बाद प्रथम इसी को ठोकरें देकर जगाती, है। इस के जगाने का फल यह है कि मनुष्य की आत्मज्ञान की या मोक्ष प्राप्ति की इच्छा प्रबल होती है। इस चक्र पर ग्रहों में बुध का अमल रहता है। कुंडलिनी के द्वारा जागृत होने पर बुध का तेज प्रदीप्त होता है। इस बुध का तेज लेकर-निश्चयात्मक बुद्धि को लेकर-कुंडलिनी दूसरे चक्र (स्वाधिष्ठान नामक चक्र) को ठोकरें देकर जगाती है। इस चक्र पर शुक्र नामक ग्रहका अमल है। मनुष्य की कामवासनाओं पर शुक्र का अमल है। इस चक्र को जगाने का फल यह होता है कि कामवासनाओं का नाश होकर शुक्र के वास्तविक तेज को कुंडलिनी ग्रहण करती है। इस चक्र के ऊपर तीसरा मणिपुर नामक चक्र है। यह नाभि स्थान में है। कुंडलिनी या राहू पहिले दो चक्रों का तेज ग्रहण कर ठोकरें दे कर इस चक्र को जगाते हैं। इस के जगाने का फल यह है कि मनुष्य थोड़ा सा आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ता है। यहाँ पर कुंडलिनी को ख्याल आता है कि वह स्वयं शक्ति है। यह शक्ति या कुंडलिनी इस रवि को जगा कर इस चक्र में जो अग्नि है उस को ग्रहण करती है और मनुष्य के बड़े विकारों का नाश करती है, साथ ही सात्विक गुणों का उत्थान करती है। इस तरह पहले बतलाये हुये तेज के साथ ही साथ सतोगुण को ले कर यह कुंडलिनी आगे आवाज करते हुए (Hissing Sound) ऊपर चढ़कर अनाहत चक्र को जगाती है। इस अनाहत चक्र को जगाने का फल आशाओं को नष्ट करना है। यहाँ कुंडलिनी आशा को

नष्ट कर मंगल का तेज ग्रहण कर 'विशुद्ध चक्र' की ओर बढ़ती है और उसे ठोकरें देकर जगाती है । इस चक्र पर चन्द्रमा का अमल है । इस चक्र में कुंडलिनी का पहुँचना ही चन्द्रमा को राहू का ग्रहण लगना माना जाता है । चन्द्र अर्थात-मायाको राहूका ग्रहण लगने से माया का नाश हो जाता है और आत्मा शुद्ध स्वरूप में सामने आ जाता है । आत्मा के आवरण नाश होते ही मनुष्य बड़ा ही तेजस्वी हो जाता है । इस प्रकार पाठकों कें ध्यान में आया ही होगा कि इस चक्र के जगाने का फल तेजस्वी बनाना है । यह तेज ग्रहण कर राहू या कुंडलिनी फिर ऊपर की ओर चढ़ते हैं और आज्ञा चक्र को ठोकरें देकर जगाते हैं, इस चक्र पर गुरु का अमल माना जाता है । गुरु इतना अहंकारी होता है कि इस के अहंकार का नाश किसी भी प्रयत्न से नहीं हो पाता । यह अहंकार "अहं ब्रह्मास्मि" है । इस अहंकार को केवल सद्गुरु ही नष्ट करते हैं । इस चक्र के जाग जाने पर सद्गुरु की पूर्ण कृपा होती है । यह कार्य कर कुंडलिनी या राहू बड़े मस्तिष्क के ऊपर जो सहस्रार चक्र हैं उन चक्रों को ठोकरें देकर जगाते हैं और उस पर सोने वाले शिव या शनि को जगा कर उसके छाती पर नृत्य करते है । यह परम शिव सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाला परम ईश्वर है । यह निर्गुण निराकार आनन्द स्वरूप है और दो शक्तियों के साथ है । इन का मिलन यहीं है । इस के ऊपर विसर्ग है । यहाँ पर कुंडलिनी आकर स्थित होती है । इस जगह पर भी फिर मैंने राहू का अमल दिखाया है लेकिन वहाँ पर केतू का अमल समझना चाहिये । यह स्थान अव्यक्त, अज्ञेय, निरानन्द और शून्य है ।

इस तरह राहू प्रत्येक ग्रह के साथ युति करता है । (इस युति का पूर्ण फल और उसका अर्थ समझना हो तो मेरा 'ग्रहण विचार' नामक ग्रंथ पढ़िये) इस तरह राहू (या कुंडलिनी) सब ग्रहों से युति करते हुए शनि को मिलता है और शनि और राहू ये दो पाप ग्रह मोक्ष ज्ञान की प्राप्ति करा देते हैं ।

कुंडलिनी या राहू का पथ
(षड्चक्र भेदन)

चक्र का नाम	चक्र जगाने का फल	अधिष्ठात्रि देवता	अमल करनेवाला ग्रह		
१ मूलाधार	मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्ति जागृत	गणेश	बुध	राहु	क्रमशः कुण्डलिनी मूलाधार चक्र को जागती हुई अंत में महस्रार चक्र में पहुचती है।
२ स्वाधिष्ठान	कामवासनाओं का नाश	विष्णु	शुक्र		
३ मणिपुर	आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ना	रुद्र	रवि		
४ अनाहत	आशा का नाश	रुद्र	मंगल		
५ विशुद्ध	माया का नाश	रुद्र	चंद्र		
६ आज्ञा	सद्गुरु की भेट	रुद्र	गुरु		
७ सहस्रार	अंतिम शिव की भेंट	रुद्र	शनि		

सद्गुरु, सत्पुरुष, मठस्थ संन्यासी और सच्चा संन्यासी इन में महत्व का अन्तर

सत्पुरुष :- सुशील, शुद्ध आचरणी, परोपकारी, निर्लोभी, ईर्ष्या से परे, व्यवहारी, सब पर प्रेम करनेवाला और लोगों पर अपना प्रभाव डालने वाला, सत्यवचनी, क्षमाशील, दयावान, अति सात्विकवृत्ति से बर्ताव करनेवाला, अन्य उत्तम गुणों से युक्त, किन्तु ईश्वर विषयक ज्ञान से अभिज्ञ, ये लोग रवि के अमल में होते हैं। **(महात्माजी)**

सद्गुरु :- उपरोक्त सभी गुणविशेषों के अतिरिक्त ये त्यागी, शरीर से अनासक्ति रखने वाले, तपश्चर्या करनेवाले, ईश्वरी ज्ञान से परिपूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले, दूसरों को ईश्वरीय ज्ञान देने वाले और शिष्यों का कल्याण चाहने वाले होते हैं; फिर इन के शरीर पर गेरुएँ कपड़े हों! या न हों! ये लोग शनि के अमल में आते हैं।

(श्री रामकृष्ण परमहंस)

चक्र युक्त - प्रणवाक्षर

प्रणवाक्षर

चित्र नंबर ४
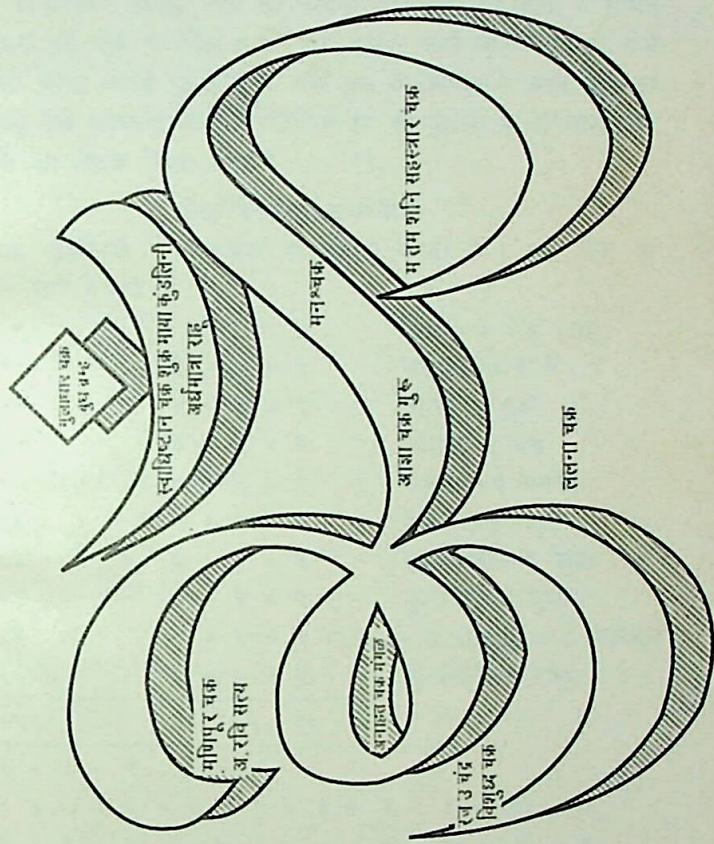
सच्चा संन्यासी- उपरोक्त सद्गुरु की व्याख्या के समान ही ये संन्यासी होते हैं। ये शनि के अमल में आते हैं। (स्वामी विवेकानंद)

मठस्थ संन्यासी- इनकी कोई भी वासना मरी हुई नहीं होती। श्रीमत् शंकराचार्य की गद्दी पर जिस प्रकार दंड धारण करने वाले संन्यासी होते है। उसी प्रकार के ये भी होते हैं और बुध के अमल में आते हैं। इन लोगों को कैसे पहचाना जाए ? इसीलिये इन की कुंडली से पहिचान करने के लिये यह शास्त्र लिखा गया है -

कुंडलिनीका चमत्कार

यह कुंडलिनी ९ के अंक पर अमल करती है। इस अंक का चमत्कार नीचे देखिये -

९	९ = ९	विसर्ग=० केतू (राहू)
१८	१ + ८ = ९	सहस्रार=७ शनि
२७	२ + ७ = ९	आज्ञा=५ गुरू
३६	३ + ६ = ९	विशुद्ध=२ चंद्र
४५	४ + ५ = ९	अनाहत=३ मंगल
५४	५ + ४ = ९	मणिपुर=१ रवि
६३	६ + ३ = ९	स्वाधिष्ठान=६ शुक्र
७२	७ + २ = ९	मूलाधार=४ बुध
८१	८ + १ = ९	Canalis Centralis = ८ नेपच्यून
९०	९ + ० = ९	कुंडलिनी=९ राहू
४९५	४५ ४५ ९०	

९ + ९ + ९ + ९. ३६ = ९

९ + ८ + ७ + ६ + ५ + ४ + ३ + २ + १ = ४५ = ९

१ + २ + ३ + ४ + ५ + ६ + ७ + ८ + ९ = ४५ = ९

---

८ + ६ + ४ + १ + ९ + ७ + ५ + ३ + २ = ४५ = ९

***

अध्यात्म ज्योतिष विचार

परिच्छेद पहला

आखिर वेदान्त क्या हैं ?

ईश्वर ने सब से पहले चराचर और स्थावर-जंगम अचेतन सृष्टी निर्माण की और बादमें मनुष्येतर जीवसृष्टि । इस सृष्टि का सृजन करने के पश्चात ईश्वर ने सोचा तो उसे मालूम हुआ कि सारी जीव सृष्टी विचारहीन है और विचार अभिव्यक्त करने के लिये उसके पास वाणी का अभाव है । इसीलिये उस ने पुरुष को निर्माण किया और उसे विचार करने की शक्ति तथा विचार प्रकट करने के लिये वाणी प्रदान की । पुरुष का निर्माण कर ईश्वर उस के बर्ताव का निरीक्षण करते रहा । जब पुरुष निर्माण हुआ तब उसे कोई भी बन्धन न था । इस का नतीजा यह हुआ कि पुरुष मदोन्मत होकर ईश्वर की शक्ति मानने से इन्कार करने लगा; यहाँ तक कि उस ने परमेश्वर से ही स्पर्धा शुरू कर दी । स्वयं अज्ञानी होते हुए भी अहंकारवश वह सृष्टि में अति विप्लव मचाने लगा । यह देख कर कि पुरुष अपने वश के बाहर जा रहा है । उस पर कुछ बन्धन डाल दिया जाए इसलिए जिन सप्तरसात्मक धातुओं से पुरुष का शरीर बनाया गया था उन्हीं धातुओं से एक दूसरी बहुत ही सुंदर और आकर्षक मूर्ति ईश्वर ने बनाई और उस में एक महान शक्ती भर दी । इसी शक्ति का नाम है ''आकर्षण शक्ति'' और इस शक्तिशाली मूर्ति का नाम है स्त्री । इस शक्ति को निर्माण कर ईश्वर ने स्त्री के जिम्मे पुरुष को मोहजाल में डाल कर प्रपंच में फँसाने का कार्य सौंप दिया । सांसारिक जीवन दुःखक्लेशादि से पूर्ण है । इन्हीं दुःखों के कारण मानव-प्राणी वैराग्य को प्राप्त होता है और ईश्वर का नामस्मरण करता है । उस की वृत्ति भी शनैःशनै परमार्थ की ओर झुकने लगती है । परन्तु मानव प्राणी यह भूल गया है कि वह स्वयं ही परमेश्वर

है । आखिर मानव-प्राणी कौन है? कहाँ से आया, कहाँ जाएगा, उस का कर्तव्य और मूल स्वरूप क्या है आदि प्रश्नों पर विचार करना जरूरी है । आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन त्रिविध तापों को भोगते हुए जब मानव प्राणी पूर्ण वैराग्य को प्राप्त होता है, एवं शारीरिक आसक्तियों के परे मोह विमुक्त होता है; तब वह "अथा तौ ब्रह्मजिज्ञासा" का अधिकारी होता है । ब्रह्म क्या है ? माया कैसी है ? **आदि प्रश्नों पर प्रकाश डालने वाले शास्त्र को ही वेदान्त शास्त्र कहते हैं ।**

अगले परिच्छेद में वेदान्त का मानव-प्राणी से क्या सम्बन्ध है ? इस विषय पर चर्चा करेंगे ।

❄ ❄ ❄

परिच्छेद दूसरा

वेदान्त का मानव-प्राणी से क्या सम्बन्ध है ।

भारतवर्ष ही एक ऐसी पुण्य भूमि है जिस में परमेश्वर प्राप्ति के लिए विविध सोपान बनाये गए हैं । इस भूमि में स्वयं भगवान ने कई बार अवतार लिया है । और कई सन्तों व सत्पुरुषों ने बारबार जन्म ले कर इसे पुनीत किया है । सारे संसार में हिन्दुस्थान के सिवाय एक भी ऐसा देश, धर्म, पंथ या समाज नहीं है जिस ने परमेश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाया हो । यह बड़े सौभाग्य की बात है कि इस विषय में भारतवर्ष आज भी दिलचस्पी लेता है । पाश्चात्य देशों में दर्शन व तत्वज्ञान में लोग बहुत आगे बढ़ गये है किन्तु पाश्चात्य तत्त्ववेता बुद्धि-विकासवादी होने के कारण उन के तत्त्वज्ञान और हमारे वेदान्त में साधर्म्य नहीं हो पाता । हमारा वेदान्त आत्मा का विकासवादी है । हमारे देश में आत्मा के विषय में काफी अनुसन्धान हुए हैं । और हो रहे हैं ।

वेदान्त का मानव-प्राणी से क्या संबंध है इसे स्पष्ट करने के लिए प्रथम एक उदाहरण दे रहे है- मान लीजिए किसी जमीनदार ने किसी गरीब को अपना मकान रहने के लिए मुफ्त में दे दिया; किन्तु उसे मकान देते समय इस बात की चेतावनी दी गयी कि वह मकान की देखभाल ठीक तरह से करे । लेकिन इस चेतावनी की अवहेलना कर उस गरीब ने मकान की देखभाल ठीक तरह से नहीं की । इस का परिणाम यह हुआ कि मकान जर्जर होकर धीरे धीरे गिरने लगा । यह देख कर कि मकान की व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं रखी गई थी, जमीनदार ने उस गरीब को मकान छोड़ कर जाने की आज्ञा दी । परन्तु उस ने न केवल जमीनदार की आज्ञा ही अनसुनी की प्रत्युत उसने जमीनदार से झगड़ा भी शुरू कर दिया । कारण कई साल तक मकान में रहने से उस गरीब के मन में मकान के प्रति ममता हो गई । उस की आसक्ति यहाँ तक बढ़ गई कि वह अपने को ही मकान का मालिक समझने लगा । अब केवल अदालत में जाकर अपना मकान

वापिस लेने के सिवाय जमीनदार के पास कोई चारा न रहा । नतीजा यह हुआ कि अदालत ने जमीनदार को पुलिसके जरिये अपना मकान वापिस लेने की आज्ञा दे दी । अन्त में जमींदार ने अपने मकान पर फिर से कब्जा किया । गरीब को घर छोड़ते समय बड़ा ही दुख हुआ । उस बेचारे ने इस बात का विचार ही नहीं किया कि वह जिस मकान में रहता था उस का मालिक कोई दूसरा ही है । वह तो केवल उस में मुफ्त रहता था । जीवात्मा और शरीर का संबंध भी इसी प्रकार का होता है । पूर्वकर्मा नुसार यही जीवात्मा गर्भ के पाँचवे महीने में गर्भ में रहने के लिये आता है । पंचमहाभूतों से शरीर बनता है; इसलिये शरीर का मालिक पंचमहाभूत है । इन पंचमहाभूतों से सप्तधातुओं को शरीर में मुफ्त रहने की इजाजत दे दी जाती है । साथ.साथ- यह भी कह दिया गया है कि यदि तुम शरीर की सुश्रूषा ठीक रखोगे तो सौ वर्ष तक खुशी से रह सकोगे; अन्यथा तुम्हें निकाल दिया जायेगा । पर इन नियमों को भूल कर जीवात्मा मनचाहे कर्म करने लगता है । धीरे-धीरे उसे शरीर से आसक्ति हो जाती है और फिर शरीर छोड़कर जाने की इच्छा ही नहीं होती । इस अवस्था को देख कर पंचमहाभूत जीवात्मा को निकाल देते हैं । जीवात्मा को शरीर छोड़ते समय बहुत दुःख होता है । इसका कारण यही है कि वह यह कभी नहीं सोचता कि मेरा इस शरीर से कुछ भी संबंध नहीं है । वेदान्त शास्त्र की सहायता से मानव को इन बातों का विचार करना चाहिये कि वह कहाँ से आया है ? उसका कर्तव्य क्या है? उसे किस ओर जाना है ? जीवात्मा और शरीर का वेदान्त शास्त्र से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है ।

अगले परिच्छेदमें ''वेदान्त और ज्योतिष के पारस्पारिक सम्बन्ध'' पर विचार करेंगे ।

* * *

परिच्छेद तीसरा

वेदान्त और ज्योतिष-शास्त्र का पारस्परिक सम्बन्ध ।

प्राचीन काल में मानव-प्राणी जब पैदा हुआ तब वह आकाश में रवि, चन्द्र तथा ग्रहण का निरीक्षण करता रहा । आकाश में चन्द्र का उदयास्त; कला की वृद्धि तथा क्षय, एक दिन पूर्ण होना व एक दिन पूर्ण अस्तंगत होना आदि घटनाओं को देख कर उस को बड़ा आश्चर्य होता था । इस प्रकार कई वर्ष बीत जाने पर मानव-प्राणी इन का उपयोग काल-निर्णय के लिये करने लगा । अमावस्या से अमावस्या तक एवं पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक माह और बारह माह का एक वर्ष इस प्रकार का कालक्रम बनाया गया । इस के अनन्तर इस का उपयोग मुहूर्त शास्त्र व धर्म शास्त्र के लिये किया जाने लगा । जैसे-जैसे मानव-प्राणी का विकास और प्रगति होती चली गई वैसे-वैसे ज्योतिष शास्त्र में अन्वेषण होते गये और कुंडली शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ । साथ ही द्वादशभाव, द्वादशराशि और नव-ग्रहों का भी उदय हुआ । प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करने से इस बात का पता चलता है कि राजा-महाराजाओं का भविष्य तथा जिस जीव ने जन्म लिया है वह परमेश्वर की याद करेगा या नहीं यह जानने के लिए इस शास्त्र का उपयोग किया जाता था ।

अब हमें वेदान्त और ज्योतिष-शास्त्रका परस्पर क्या संबंध है, यह देखना है । वेदान्त में यह बताया गया है कि माया की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई तथा माया से पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों से सृष्टि उत्पन्न हुई है । यही वेदान्त क्रम है । ज्योतिष-शास्त्र में रवि यह मूल है । रवि से चन्द्र की उत्पत्ति है और इन दोनों से सृष्टि निर्माण हुई है । खगोलशास्त्र द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आकाश में अपनी दृष्टि में आनेवाले जो ग्रह हैं वे दूसरे ही हैं । ये सब ग्रह रवि के चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं । इन में हमारी पृथ्वी भी है । इन सब का संचालक और प्रेरक रवि है । रवि स्थिर और तेजोमय है तथा ग्रहों व लोगों को जीवन प्रदान करने वाला है।

अपनी आकर्षण-शक्ति के द्वारा रवि इन सब को अपने कब्जे में रखता है और अखिल संसार के लिये साक्षीभूत रहता है। इसीलिये ब्रह्म तथा रवि समान-धर्मी हैं। माया ब्रह्म से पैदा हुई है। माया ब्रह्म से प्रकाश ले कर दूसरों को प्रकाश देनेवाली परप्रकाशी है; चन्द्र रवि से प्रकाश ले कर पृथ्वी को प्रकाशित करनेवाला परप्रकाशी है। जिस प्रकार माया चंचल एवं बहुरूपी है उसी प्रकार चन्द्र भी चंचल तथा बहुरूपी है। इन सब में समान धर्म पाये जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदान्त और ज्योतिष में समान गुणधर्म वर्तमान हैं। संचित कर्म में से जिस प्रारब्ध कर्म का उदय होता है, उस के अनुसार मानव-प्राणी अपने जीवन के अन्तिम क्षणतक भोग भोगता है। क्रियमाण कर्म का त्याग कर जन्म परम्परा क्षीण व नष्ट करते हुए वेदान्त के द्वारा मानव-प्राणी इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ज्योतिष शास्त्र में भी इन्हीं पूर्व कर्मों का विचार होता है और उसे शुभ कर्म का भोग तथा अशुभ कर्म का त्याग करना पड़ता है। उसी तरह अपने हाथ से किसी भी प्रकार का अशुभ कर्म न होने पाए इसलिये उसे बहुत सतर्क रहना जरूरी है। मूलतः ज्योतिषशास्त्र और वेदान्त का एक ही स्वरूप है। वेदान्त ज्ञानी लोगों के लिये है और ज्योतिष अज्ञानी लोगों के लिये। अगले परिच्छेद में ब्रह्म (रवि) के विषय में चर्चा करेंगे।

* * *

परिच्छेद चौथा

रवि (ब्रह्म)

Universal Father

For it is the solar orb which produces the manifestation of life upon every planet of existence and which thus may be called the Lord or Giver of Light Physically as also Spiritually the Great Architect and Geometrician of the Universe, Self-Existent, Self-conscious the Great First Cause of everything moving and unmoving the Supporter and Uphodar of the system. He has brought into manifestation and yet comparatively few in the Western world today have any knowledge of the spiritual aspect of the Sun even realise that the wonderous orb of living light and warmth shining in the heavens is in very truth the glorious out-ward vesture of the God of this Solar System.
(Planetary Infulences page 7 By- Bassil Leo)

कभी-कभी मन में ऐसा प्रश्न उठता है कि इस सृष्टि का कोई संचालक है या नहीं ? यदि है, तो कहाँ है ? उस का स्वरूप क्या है ? सृष्टि का संचालक किस प्रकार का होता है ? आदि ।

इन प्रश्नों का उत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण (eye witness) द्वारा देना कठिन हीं है । इसीलिये एक उदाहरण द्वारा हम इस बात को स्पष्ट करना उचित समझते हैं । शक्कर खाने में बहुत ही मीठी ी है, यह सभी जानते हैं परंतु यदि किसी से यह पूछा जाय कि शक्कर की मिठास कैसी है तो वह उस का वर्णन नहीं कर सकेगा । शक्कर की मिठास जानने के लिये स्वयं शक्कर का स्वाद लेना ही इष्ट है । इसी तरह यदि सृष्टि के संचालक के विषय में ज्ञान प्राप्त करना हो, तो स्वयं प्रयत्न करना आवश्यक है । सद्गुरु के सहवास में हम सृष्टि संचालक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं । यह हुआ

एक पक्ष का कथन । दूसरे पक्ष का कहना यह है कि इस सृष्टि का कोई भी संचालक नहीं है बल्कि सृष्टि स्वयंभू है और अपने आप स्वयंसिद्ध संचालित है । यही कारण है कि इस संसार में निरीश्वरवाद अस्तित्व में है । हमारी भारतभूमि पर निरीश्वरवादी महात्मा भी जन्म ले चुके हैं । महात्मा "कणाद" जिन्हों ने इस सृष्टि को मूलभूत अणु परमाणु (Atoms, Electrons, Ions, Protons, Molecules, Inter Molecules) है ऐसा बतलाया है । पाश्चात्य देश में इस परमाणुवाद के विषय में काफी अनुसन्धान चल रहे हैं हाल ही में पाश्चात्य देशों में अणु परमाणु का पता लग गया है । इस विषय पर वहाँ विद्वानो में बहुत हलचल मची हुई है । इस का दृश्य-फल गत महायुद्ध में (१९४५ के युद्ध में) एटम बम का अविष्कार हुआ और सब देशों में इसी की धुन चल रही है । भारतवर्ष इस विषय में अनजान नहीं है । ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में उत्तरी भारत में "कणाद" नामक एक महात्मा हो गये थे । आप के मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं अणु परमाणु से ही है । इस के बाद सांख्य विदों ने इस में भी आगे बिंदु का पता लगाया । फल यह हुआ कि आज पाश्चात्य शास्त्रज्ञों ने अणुशक्ति को संहारास्त्र के रूप में बदल दिया । हमारे मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं अणु परमाणु से ही है । इसके बाद सांख्य विदों ने इस से भी आगे बिंदु का पता लगाया । फल यह हुआ कि आज पाश्चात्य शास्त्रज्ञों ने अणुशक्ति को संहारास्त्र के रूप में बदल दिया । हमारे देश में यह वाद प्राचीन काल में अस्तित्व में था । इस विषय में बहुत कुछ छानबीन करने पर भी आज इस दिशा में विशेष अनुसंधान नहीं हो सका है । परन्तु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिगणों ने इस दिशा में अधिक अन्वेषण किये और यह सिद्धांत प्रस्थापित किया कि आत्मा सृष्टि का भी उसी तरह संचालक है । जिस प्रकार से हमारे शरीर का । इसीलिये माया सृष्टि की संचालिका है । इस मत का खण्डन अद्वैतवादियों ने किया है । सुप्रसिद्ध जर्मन पंडित नीत्से निरीश्वरवादी था । अमेरिका का कर्नल इंगरसोल भी निरीश्वरवादी था । बाद में मृत्यु के समय उस के मुख से ये उद्गार निकले There is a great force in the world which can act upon the human being.

अर्थात संसार में एक महान सत्ता व शक्ति है जो कि मानव जगत को संचालित करती है। इस से पता चलता है कि उन के विचारों में किस तरह परिवर्तन हुआ। निरीश्वरवादियों का मत है कि संसार में एक ऐसी महान शक्ति है जो अपना प्रभाव मानव-जगत पर डालती है। आगष्टस कान्ट, जड़ाद्वैतवादी सर अर्नेस्ट हैकेल आदि कुछ पाश्चात्य पंडित यह मानते हैं कि इस सृष्टि का संचालक भी है। सर अर्नेस्ट हैकेल अपने "Ridle of Universe" नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि इस सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने अपने रहने के लिये किया है। इस सृष्टि में ईश्वर विविध स्वरूपों मे रहता है। इसी मत को हमारे पूज्य विद्यारण्य स्वामी ने अपने ''पंचदशी'' में प्रकट किया है; जो कि हम लोगों में बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। इस सृष्टि का सत्य संचालक ईश्वर है यह बात निस्संदेह है। दूसरी बात जो कि सिद्ध हो चुकी है वह यह है कि ईश्वर इन्द्रियों से परे हैं और उस का स्वरूप केवल अतिन्द्रीय ज्ञान से ही जाना जा सकता है। ईश्वर का स्वरूप कैसा है यह स्पष्ट करने के लिये नीचे दो उदाहरण दिये जाते जा रहे हैं।

१. बिजली की बत्ती पर दृष्टिपात कीजिये। उस में दो प्रकार के प्रवाह (Current) होते हैं; एक धनाग्र (Posivite) और दूसरा ऋणाग्र (Negative)। जिस तार में से धनाग्र प्रवाह निकलता है उस तार में प्रवाह का अस्तित्व आँखों से दिखाई नहीं देता; यद्यपि तार में से प्रवाह चल रहा होता है। फिर प्रश्न यह उठता है कि इस बात का पता कैसे लगाया जा सकता है? धनाग्र के संयोग में जब ऋणाग्र आता है तब प्रकाश उत्पन्न होता है और उसी समय प्रवाह का अस्तित्व जाना जा सकता है। इस से हम यह देखते हैं कि ईश्वर का स्वरूप कोई भी हो, अशरीरधारी होने के कारण उसे हम अपनी आँखों से देख नहीं पाते। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण भगवान ही ने कहा है-''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः। मूढोऽयंनाभिजानाति लोको मामजमव्ययम''॥ अर्थात् अपनी योग माया से छिपा हुआ मैं सब के समक्ष प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ इसलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझे जन्मरहित, अविनाशी परमात्मा को तत्व से नहीं जानता अर्थात मुझे जन्मने-मरनेवाला समझता है। उपरोक्त विवेचन से पाठकों को यह विदित होगा कि

इस सृष्टि का संचालक अवश्य है जो सर्वव्यापी होते हुए भी अप्रकाशित है।

२. पत्थर पर पत्थर घिसने से अग्नि पैदा होती है; तथा एक काष्ठ पर दूसरा काष्ठ घिसने से भी अग्नि उत्पन्न होती है। यद्यपि यह अग्नि चर्म चक्षुओं को दिखाई नहीं देती, तो भी अग्नि स्वरूप तेज इन चीजों में है यह अवश्य ही सिद्ध होता है। ईश्वर भी तेज-स्वरूप है। ईश्वर का अस्तित्व इस सृष्टि में तीन अवस्थाओं मे पाया जाता है:- स्थावर जंगम पदार्थों में; सुप्त अवस्था में; मनुष्येतर प्राणी व जीव जन्तुओ में-स्वप्नावस्था में एवं मानव-प्राणी में-जागृत अवस्था में। इसीलिये कहा गया है कि ईश्वर सर्वव्यापी है ईश्वर स्वयं स्थिर रहते हुए भी सृष्टि का सूत्र संचालन करते रहते हैं।

इस के स्पष्टीकरणार्थ और एक उदाहरण दिया जाता है-आप ने लोहचुम्बक देखा ही होगा? इस लोहचुम्बक में एक ऐसी अजीब आकर्षण शक्ति होती है कि जिसके द्वारा लोहचुम्बक तो स्वयं स्थिर ही रहता है किन्तु किसी भी लोहे के टुकड़े को अपनी ओर खींच लेता है। ईश्वर भी इसी प्रकार अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा इस सृष्टि को अपने अधिकार में रखता है। वेदान्त में इस आकर्षण शक्ति को चित् कहते हैं। अब हम देखें कि परमेश्वर का स्वरूप कैसा है? तेजस्वी, शान्त, प्रकाशमय, सत् (त्रिकालाबाधित अविनाशी सत्य) चित् आनंद। किसी भी पाँच छः माह के बालक को ध्यान पूर्वक देखने से मालूम पड़ता है कि वह स्वयं हँसता है, किलकारियाँ मारता है; अथवा किसी जन्म जात पागल (Born mad) को देखिये तो यही प्रतीत होता है कि वह स्वयं ही हँसता है; अपने आप से खेलता है। इन दोनों की स्थिति आनन्द स्वरूप है; भेद केवल यही है कि पागल व्यक्ति अज्ञानी होता है ज्ञानी लोग बालक के समान होते हैं। सर्वव्यापी, सर्वांतर्यामी सचेतन निर्गुण, निराकार, अगोचर, (इंद्रियों को दिखलाई न देने वाला) उत्पत्तिकर्ता तथा लयकर्ता, अणु रेणु परमाणु में व्याप्त, सत्ता का संचालक, स्थिर रहने वाला एवं इस सारी सृष्टि का मालिक। इस स्वरूप को वेदान्त में परब्रह्म कहते हैं जो कि ईश्वर के लिये पर्यायवाची

शब्द है। ईश्वर के स्वरूप के समान ही रवि का भी स्वरूप होता है। आकाश में रवि की ओर देखने से हमें एक प्रचंड तेजोमय गोलाकृति दिखाई देती है। जिस प्रकार से ब्रह्म अपने भक्तों के लिये सगुण-स्वरुप धारण करता है उसी प्रकार रवि भी सगुण-स्वरूप धारण करता है। जब ईश्वर इस सृष्टि में पूरी तरह से व्याप्त हो कर दस अंगुल शेष रहता है तब वह रवि प्रतिमा के रूप में हमें दिखाई देता है। आकाश में हमारे चर्मचक्षुओं को जो रवि दिखाई देता है,उसका भी व्यास (Diameter) दश अंगुल ही रहता है। रवि में आकर्षण-शक्ति होती है जिस के द्वारा वह पृथ्वी को अपने चारों ओर परिक्रमा कराने लगाता है। पृथ्वी के साथ में शनि, गुरु आदि सभी ग्रह रवि के चारों ओर परिक्रमा करते हैं; इसीलिए रवि में तेज, आकर्षण शक्ति और प्रभुत्व होता है। सत् चित्, आनन्द, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सचेतन, उत्पत्ति और लयकर्ता, अणुरेणु-परमाणुमें व्याप्त, लोहचुम्बक के समान स्थिर रहकर सृष्टि आदि ग्रह व लोगों को गति देने वाला, उत्साह व जीवन प्रदान करने वाला, आकुंचनशील व प्रसरणशील, निराकार और साकार, निर्गुण एवं सगुण-यही रवि का स्वरूप है। इसीलिये रवि और ब्रह्म एक ही हैं।

परब्रह्म की उत्पत्ति

भारतवर्ष में हिंदुओं के जीवन का ध्येय इसी जन्म में आत्मस्वरूप की पहिचान कर लेना है। हमारे साधु-सन्तों ने ऊँचे स्वर से लोगों को बतलाया है कि आप सब परमात्मा के स्वरूप हैं और इसीलिए ईश्वर के चरणों में सदा के लिए विलीन भी हो सकते हैं। सभी पहुँचे हुए सन्तों ने भगवान के स्वरूप का अत्यंत मनोहर वर्णन किया है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त पू.श्री रामदास स्वामी अपने 'मनाचे श्लोक' नामक ग्रंथ में लिखते हैं —

वसे हृदयीं देव तो जाण ऐसा।
नभाचें परी व्यापकू जाण तैसा॥
सदा संचला येत ना जात कांही।
तया वीण कोठे रिता ठाव नाहीं॥१॥

नभा सारिखे रूप या राघवाचे ।
मनी चिंतिता मूळ तूटे भवाचे ।।
तया पाहतां देहबुद्धि उरेना ।
सदा सर्वदा आर्त पोटी पुरेना ।।२।।
नभी वावरे जो अणूरेणु कांही ।
रिता ठाव या राघवावीण नाही ।।
तया पाहता पाहता तेचि झाले ।।
तिथे लक्ष आलक्ष सर्वे बुडाले ।।३।।
कळे आकळे रूप ते ज्ञान होता ।
तिथे आटली सर्व-साक्षी अवस्था ।।
मना उन्मनी शब्द कुंठीत राहे ।
तो रे तोचि तो राम सर्वत्र पाहे ।।४।।

महाराष्ट्र के दूसरे महान् सन्त श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने भी अपने ''हरिपाठ'' नामक ग्रंथ में भगवत्-स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है ।

ज्ञान देवा पाठ हरि हा वैकुंठ । भरला घनदाट हरि दिसे ।।ह. ।।२।।
अव्यक्त निराकार नाहीं त्या आकार । जेथूनि चराचर त्यासि भजे ।।ह.।।३।।

जो ईश्वरके अणुरेणु से ले कर संसार की प्रत्येक चीज में व्याप्त है उस का स्वरूप बड़ा ही मनोहर, आकर्षक तथा उपमारहित है । उस परमात्मा की सुन्दरता से संसार की विनाशी चीजों की उपमा नहीं दी जा सकती । भगवत्स्वरूप यह बड़ा ही विलक्षण तेज है । ''चंद्र सूर्य कोटि सम प्रभाः।'' संसार को दैदीप्यमान करने वाले इन चंद्र सूर्यों के समान कोटि कोटि चंद्र सूर्य एकत्रित करने पर भी भगवान के समान अत्यंत तेजस्वी प्रकाश नहीं हो सकता ।

कोटि सूर्य प्रतीकाशं चंद्र कोटि सुशीतलं ।
यथा वेदान्त शास्त्रे तद्भवे दृश्यंहि धीमताम् ।।

अर्थात् वेदान्त में जिन सूर्यों का वर्णन किया गया है ऐसे कोटि सूर्यों

के समान दैदीप्यमान और कोटि चंद्रों के समान शीतल स्वरूप उन को दिखता है जो आत्मबुद्धिवान हैं।

रक्तश्वेतं तथा कृष्णं नील पीतादि शोभितम्। तन्मध्ये व्यापितं येन तज्जोति ब्रह्म केवलम्॥ वह रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण, कृष्णनील और पीले वर्ण से सुशोभित रहता है। उन का मध्य भाग जिस से व्याप्त है वही केवल ज्योतिस्वरूप ब्रह्म है। इस ज्योति की उपमा भी संसार की किसी भी दैदीप्यमान चीजों से नहीं दी जा सकती। उदाहरण के लिये किसी किटसन लाईट के बत्ती समक्ष घासलेट तेल का चिराग रख दिया जाय तो चिराग का प्रकाश कदापि किटसन लाईट की बराबरी नहीं कर सकेगा। यह तेज अत्यन्त शांत, तेजस्वी, सच्चिदानन्द और "कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुमशक्ति समर्थ है"। इसी तेज को वेदान्त के शब्दो में "परब्रह्म" कहते हैं। इस परब्रह्म की उत्पत्ति का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। ऋग्वेदमें १० वें मंडल के १२९ वें "नासदीय सूक्त" में लिखा है

नासदासीन्नो सदासीत्तदानी।
नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद गहनं गभीरम् ॥१॥

उस समय अर्थात मूलारम्भ मे परब्रह्म की उत्पत्ति के पूर्व सत् और असत् नहीं था। बहुत से टीकाकारों नें इसका जगत निर्माण होने के पूर्व, यह अर्थ किया है किन्तु इस अर्थ को उचित मानने से निम्नलिखित प्रश्न स्वाभाविक उत्पन्न हो जाते हैं-१ पंचमहाभूत (दृश्य) किस प्रकार निर्माण हुए? २ यह परब्रह्म किस प्रकार निर्माण हुआ? ३ परब्रह्म सर्वप्रथम निर्माण हुआ या सृष्टि? उपर्युक्त प्रश्नों का विवरण कहीं भी नहीं किया गया है। अतः जिस सूक्त में सृष्टि शब्द का अर्थ सूचित करने वाला शब्द ही नहीं है, वहाँ "जगत्" यह अर्थ उपर्युक्त नहीं हो सकता। हिन्दी टीकाकार पंडित जयदेव शर्मा उपर्युक्त सूक्त का निम्नलिखित अर्थ देते हैं (तदानीम्) यह जगत उत्पन्न होने के पूर्व (न असत् आसीत्) न असत था (नो सत आसीत) और

न सत् था। (न रजः आसीत्) उस समय रजत् अर्थात् नाना लोग भी नहीं थे।(नो व्योम) न यहाँ परम आकाश था। यत् परः) जो उस से भी परे है वह भी न था। उस समय (किम् आ अवरीवः) क्या पदार्थ सब को चारों ओर से घेर सकता था? कुछ नहीं (कुह) यह सब फिर कहाँ था और (कस्य शर्मन्) किस के आश्रय में था? तो फिर (किम्) क्या (गहनं गंभीरं अम्भः आसीत्) गहन्। अर्थात् जिस में किसी पदार्थ का प्रवेश न हो सके ऐसा गंभीर; जिस का वारापार पता न लगे ऐसा "अम्भस" (अप्‌भस्) कोई व्यापक भासमान् "आपः" तत्व विद्यमान था ?

पुणे निवासी आहिताग्नि शंकर रामचंद्र राजवाडे "नासदीय सूक्त भाष्य" नामक अकटोविकटश्च पंडित अपनी पुस्तक में केवल तीन सूक्तों का भाषांतर करते हुए लिखते हैं- तदानीम् उस समय अर्थात् मूलारम्भ में जगत् निर्माण होने के पूर्व, उस समय जब कि जगत् नहीं था अथवा जगत् का प्रारम्भ ही नहीं हुआ था। असत्=अ+सत्=न रहना। सत्=रहना। रज= रजोगुण अथवा रजो लोक। परः विऽओम= उस ओर का आकाश। आवरीवः= आ+अवरीवः= किसे आवरण डाला गया? किं आवरीवः= किस ने डाला? कुह=कहाँ? किस स्थान पर आवरण डालनेवाले ने आवरण डाला? कस्य शर्मन ? किस के लिए? गहनं= प्रवेश करने के लिए अत्यन्त कठिन, भीतर जाने के लिए असंभव ऐसा अत्यन्त गहरा। गंभीर= अत्यन्त अगाध दुस्तर स्थान। अम्भः= पानी। जो ध्वनि करता हुआ बहता है वह पानी। गहनं गभीरं अम्भः किं आसीत्= उस समय गहन और गम्भीर जल कौन सा था? अर्थात् किसी भी प्रकार का जल नहीं था।

उपसंहार :- प्राग्जगत्‌काल में असत् नहीं था, सत. नहीं था अतएव रज भी नहीं था। परमव्योम नहीं था अतएव आवरक भी नहीं था, आवार्य नहीं था। अतएव आवरण-कर्म नहीं था। स्थल नहीं था। तथा निमित्त भी नहीं था अतः व्यक्त अथवा अव्यक्त किसी भी प्रकार का गहन गंभीर अंभ नहीं था। अब इस का अर्थ दिया जाता हैं- ऊपर कहा गया है कि असत्

भी नहीं था और सत् भी नहीं था। अर्थात रहना न रहना ये दोनों भी उस समय नहीं थें। सारांश उस समय कुछ भी नहीं था।

असत्=अव्यक्त } परब्रह्म यहाँ इस प्रकार का अर्थ मैं कर रहा हूँ।
सत्=सृष्टि का } व्यापार क्योंकि ६ वे और ७ वें सूक्त में सत् यह विसर्ग अर्थात सृष्टि का व्यापार इस प्रकार अर्थ किया हुआ है। अतः सत्=सृष्टि,और विसर्ग=व्यापार सत् और असत्=परब्रह्म इस का अर्थ स्पष्ट रूप से यही हो सकता है कि किसी प्रकार का और कुछ भी नहीं इस अभाव से ही "अस्तित्व" की शुरूआत हुई है।

उस समय अंतरिक्ष Etheric world भी नहीं था और इस के उस पार आकाश भी नहीं था। हिन्दी भाषान्तरकार ने (यत् परः) -जो इस से भी परे है वह भी नहीं था- इस वाक्य का अर्थ 'आकाश के उस पार निवास करनेवाला परब्रह्म भी नहीं था; ऐसा ही करना होगा। इस सूक्त में कुछ न कुछ रहने का कुछ भी आधार नहीं है; ऐसी अवस्था में स्वाभाविक यह प्रश्न उठ सकता है कि जब कुछ भी नहीं था तो किस ने किसे आवरण डाला ? उपर्युक्त सूक्त के विषय में इसीलिए शंकाएँ की जाती हैं कि किस ने किसे आवरण डाला ? किस के सुख के लिये डाला गया, आदि प्रश्नों के उत्तर में बहुत से भाषांतरकारों ने नकारात्मक उत्तर दिये हैं। किन्तु मेरी अल्प समझ के अनुसार उन टीकाकारों के उत्तर ठीक नहीं कहे जा सकते। मेरे विचारों से आवरण डालनेवाला और पहननेवाला इन दोनों के अभाव में, कोई भी नही है, कहीं भी नहीं है और किस के सुख के लिए आदि प्रश्न उत्पन्न हो ही नहीं सकते। किन्तु जिस अवस्था में उक्त प्रश्न उत्पन्न हुये है। " आवरण डाला गया होगा ही" यह सिद्ध हो जाता है। इस प्रश्न की पुष्टि के लिए हम निम्नलिखित नैसर्गिक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। स्त्री को गर्भधारणा होती है और गर्भ के चारों ओर एक पतला सा आवरण स्वयं निर्माण हो जाता है। यहाँ आवरण पहननेवाला होता है। किन्तु पहनानेवाला नहीं होता। वह गर्भ स्वयं आवरण धारण कर लेता है। वह थैली भी उस गर्भ के साथ स्वाभाविक बढ़ती रहती है। यह जो स्थिति है उसे (मराठी

सन्तोकें अनुभवानुसार) ''पिंडी ते ब्रह्मांडी'' यह तत्त्व लागू होता है। दूसरा उदाहरण रेशम के कीड़े का है। यह कीड़ा स्वयं की रक्षा के लिये अपने शरीर से एक प्रकार का बारीक तन्तु बाहर निकाल कर अपने शरीर के चारों ओर उस का कोष तैयार कर लेता है। इसी कोष में वह १३ दिन तक पड़ा रहता है। १४ वें दिन उस कोष में छिद्र कर वह बाहर उड़ जाता है (यह स्थिति बंगाली कीड़ों की है; मैसूर की नहीं) उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में आवरण पहननेवाला हैं परंतु पहनानेवाला नहीं है। ठीक इसी प्रकार की अवस्था मूलारम्भ में भी थी। उस समय आवरण पहननेवाला कोई था, उस का विवरण दुसरे सूक्त में किया गया है। आवरण पहनानेवाला उस समय कोई भी नहीं था, यह क्रिया स्वयं होती थी। यह क्रिया कहाँ होती थी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता किन्तु किस के सुख के लिए इस प्रश्न का उत्तर सरल है। जो आवरण धारण करनेवाला है उसने अपनी रक्षा तथा सुख के लिए आवरण पहना था। उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा तर्क के आधार पर मैनें शंकाओं का अल्प समाधान किया है। सूक्त में पानी की चर्चा भी की गयी है। मूलारम्भ में यदि पंचमहाभूत नहीं थे तो पानी का रहना असंभव है। यदि पानी था तो उस के लिये पृथ्वी की आवश्यकता नितान्त हो जाती है। यदि यह मान लिया जाय कि दृश्य जल था तो भी बड़े-बड़े प्रश्न सामने उपस्थित हो जाते हैं। अतः उस समय आज के समान चारों ओर भूमि नहीं थी अर्थात परब्रह्म के पहले सृष्टि नहीं थी इसे मान लेने पर उस समय जल भी नहीं था यह स्वयं सिद्ध हो जाता है।

सूक्त २ रा

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि।
न रात्र्या अहन् आसीत् प्रकेत :॥
आनीदवातं स्वधयातदेकं।
तस्माद्धान्यन्य परः किंचनास ॥

तब- मूलारम्भ में- अर्थात परब्रह्म निर्माण होने के पूर्व मृत्युग्रस्त सृष्टि नहीं थी। अमृत (मोक्ष) अर्थात् परब्रह्म भी नहीं था। आज जिस प्रकार के

जन्म और मृत्यु हो रहे है उस प्रकार उस समय नहीं होते थे । उस समय शरीर धारी जीवों का निर्माण ही नहीं हुआ था । इसीलिए जन्म-मरण का होना असम्भव है । अर्थात उस समय जन्म, मृत्यु, रात, और दिन (दिन और रात्रि की पहचान के लक्षण विद्यमान नहीं थे) । **उस समय जो कुछ भी था वह अकेला था । वह स्वयं की अपरम्पार स्वयंभू शक्ति से बिना वायु के श्वासोछ्वास करता था ।** इस के आगे अथवा इस के अतिरिक्त उस समय कुछ भी नहीं था । अर्थात् उस समय केवल **''एकमेवाद्बितीयम''** था ।

यहाँ एक शंका हो सकती हैं कि बिना वायु के किस प्रकार श्वासोछ्वास किया जा सकता था ? प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है- स्त्री के पेट में जो गर्भ होता है वह आवरण से ढँका हुआ होता है । नाल भी माता के हृदय से जुड़ी हुअी है । यहाँ एक विशेष बात यह है कि उस गर्भ को कहीं से भी वायु नहीं मिलती । माता की ओर से लिया जानेवाला श्वासोछ्वास भी गर्भ को नहीं मिलता । केवल माता के खाये हुए अन्न से उत्पन्न हुआ ''अन्न-रस'' ही उसे मिला करता है । वह गर्भ बिना वायु के श्वासोछ्वास लेता है उसके हृदय की धड़कन नित्य चालू रहती है । इस से भी आश्चर्य की बात यह है कि वह जीवन्त होता हुआ भी मलमूत्र का त्याग नहीं करता । गर्भ के इस विवरण से यह सिद्ध होता है कि अदृश्य रूप से पंचमहाभूत उस अवस्था में भी वहाँ विराजमान रहते हैं । जब गर्भ उदर से बाहर आता हैं तब दृश्य पंचमहाभूतों का असर होते ही बालक का श्वासोछ्वास जारी हो जाता है मल -मूत्रका त्याग और रोना भी उसी समय से प्रारंभ हो जाता है । उपर्युक्त विवेचन से इस बात की पुष्टि होती है कि गर्भ बिना ही वायु के श्वासोछ्वास की क्रिया करता है । अर्थात् स्वयं में ही स्फुरता रहता हैं । इसे स्पष्ट करने के लिए हम प्रतिदिन का व्यावहारिक उदाहरण ले सकते हैं । दाल अथवा पतली भाजी अधिक खराब हो जानेपर फदफदाती है । इस क्रिया में मनुष्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं पड़ती । इसी प्रकार गर्भ भी स्वयं स्फुरता है ।

इस सूक्त को जिस ऋषि ने निर्माण किया उन्हें इस बात का स्मरण नहीं रहा कि जो अकेला था वह स्वयं की शक्ति से ही श्वासोछ्वास किया

करता था। और अपनी अपरम्पार शक्ति के बल पर ही हिलता डुलता भी था। फिर यह था क्या? यह एक महाशक्ति थी। इसी का मैंने महाब्रह्म नाम रखा है अब हिन्दी भाषांतर भी देखिए -

(मृत्युः न आसीत्) उस समय मृत्यु न थी। (तर्हि न अमृतम्) और न ही उस समय अमृत था। अर्थात् जीवन की सत्ता और जीवन का लोप दोनों नहीं थे। (नः रात्र्याः प्रकेत : आसीत्) न रात्रि का ज्ञान था और (न अहन् प्रकेतः आसीत्) न दिन का ज्ञान था। उस तत्व का स्वरूप (आनीत्) प्राण शक्ति रूप था। परंतु (अवातम्) वह स्थूल वायु न थी। (तत् एकम्) वह एक (स्वधया) अपने ही बल से समस्त जगत् को धारण करनेवाला शक्ति से युक्त था। (तस्मात् अन्यत्) उस से दूसरा पदार्थ (किंचन) कुछ भी (परः न आस) उस से अधिक सूक्ष्म न था।

अब राजवाड़े महोदय का कथन भी सुनिए -

तर्हि —उस समय, जगत् निर्माण होने के पूर्व।

मृत्यु — मृतत्व मरणभाव। (Mortality) (Death)

अमृत —अमृतत्व-अमरणभाव। (Immortality) (life)

प्रकेत : — चिन्ह

रात्र्या प्रकेत— रात्रि का चिन्ह।

अहन् प्रकेत— दिन का चिन्ह।

तदेकं— तत् एकम- वह अकेला एक।

स्वधया— स्वयं की शक्ति से।

अवातं —बिना वायु के।'

आनीत् —श्वासोछ्वास करता था।

तस्मात्—वह जो वायु के बिना श्वासोछ्वास कर के स्थित था उस से

ह —सचमुच।

अन्य न पर : -- दूसरा भिन्न

किंचन न आस-- कोई भी न था।

उपसंहार :- प्राग्जगत् काल में मृत्यु, अमृत, रात तथा दिन का चिन्ह

नहीं था । वह केवल अकेला अपनी शक्ति से वायु विरहित श्वसन करता था । इस के अतिरिक्त सचमुच ही कुछ भी नहीं था । जगदुत्पत्ति पूर्व अजग स्थिति में जहाँ सदसत् द्वन्द्व नहीं था वहाँ मृता-मृत द्वन्द्व नहीं रह सकता । अर्थात् नहीं था । रात और दिन पहचानने के चिन्ह सूर्य तथा चन्द्र नहीं थे फिर काल किस प्रकार रह सकता है ? ऐसी अवस्था में वह केवल अकेला एक था । अतएव वायु बिना स्फुरता था । उसे किसी भी प्रकार की अपेक्षा अथवा किसी प्रकार की प्रतियोगिता नहीं थी, अतएव वह निर्द्वन्द्व एकमेवाद्वितीयं था ।

अब तक जिन दो सूक्तों की आलोचना की गयी उस से यह सिद्ध हुआ कि उक्त सूक्तों का परब्रह्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । वह एक शक्ति है । इस शक्ति में तेज, चित् और आनन्द नहीं है । केवल असत् है । किन्तु परब्रह्म तेजस्वी सच्चिदानन्द स्वरूप है । इस से यह निर्विवाद स्पष्ट हो जाता है कि दोनों भिन्न-भिन्न हैं । अन्त में यह कहना पड़ता है कि यह शक्ति परब्रह्म को निर्माण करनेवाली महाब्रह्म है ।

सूक्तकार ऋषि दो सूक्तों मे महाब्रह्म की स्थिति बतलाकर तीसरे सूक्त में एकदम अंधकार (तम) था और अंधकार में जगत् डूब गया था यह बतलाते हैं । यहाँ भी निम्न शंकाएँ उपस्थित हो जाती हैं । ऐसी अवस्था में परब्रह्म किस प्रकार निर्माण हुआ ! और जगत की उत्पत्ति कैसे हुई ? दृश्यादृश्य पंचमहाभूत किस प्रकार निर्माण हुए इत्यादि । सूक्तकारों ने इन शंकाओं का निवारण बिलकुल नहीं किया है ।

सूक्त ३ रा

तम् आसीत तमसा गुढ मग्रेऽ- ।
प्रकेतं सलिली ˜ सर्वमा इदम् ॥
तुच्छेनाभ्व पिहिंत यदासीत् ।
तपस स्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥

जगदारम्भ काल में अंधकार व्याप्त था । जल भी न जानने योग्य व्याप्त था । माया ने परब्रह्म पर आवरण डाल दिया था और वह केवल तपश्चर्या

की महिमा से प्रकट हुआ। हिन्दी भाषांतर देखिए-

(अग्रे) सृष्टि होने के पूर्व (तमः आसीत्) "तमस्" था, वह सब (तमसा गूढम्) तमस् से व्याप्त था। वह (अप्र-केतम्) ऐसा था कि उस का कुछ भी विशेष ज्ञान योग्य न था। वह (सलिलम्) सलिल एक व्यापक गतिमान तत्व था, जो (सर्वम् इदम् आ) इस समस्त को व्यापे था। उस समय (यत) जो था भी वह (तुच्छेन) तुच्छ, सूक्ष्म रूप से (आभु-अपिहितम्) चारों ओर का सब विद्यमान पदार्थ ढँका था। (तंत्) वह (तपसः महिना) तपस् के महान सामर्थ्य से (एकम्) एक (अजायत) प्रकट हुआ। अब राजवाड़े महोदय का कथन भी सुनिए--

तमस्— प्रकाश का अभाव "अंधकार"

तम आसीत्—अंधकार था।

गूळम् गूढम्— ढँका हुआ।

अग्रे —आरम्भ में जगत् बनने के समय।

इदं सर्वम्— यह सारा दृश्यमान जगत्।

अप्रकेतं —न जानने योग्य।

सलिलं— गतिमान जगत्; गतिमान जल।

आः— था।

तुच्छेन— फोल (फल के ऊपर का छिलका)

आभु — जो चारों ओर था अर्थात् उत्पन्न होने वाला वह आभु।

अपिहि —ढँका हुआ था।

यत् तत् —जो वह

एकं— तम से व्याप्त था अतः जिसका भेदाभेद न जानने योग्य था एक एकमेव सलिलं।

तपस : महिमा अजायत—तप की महिमा से जन्म हुआ।

उपसंहार :- जगदारम्भ काल में तम था। और उस तम के भीतर ढँका हुआ यह सम्पूर्ण सलिल अप्रकेत स्थिति में था। इस प्रकार यह तुच्छ से आच्छादित तम से ढँका आभु सलिल एकमात्र था, और वह केवल तप

की महिमा से जन्म को प्राप्त हुआ ।

जगत् के पूर्व काल में असत् सत्, मृत्यु तथा अमृत नहीं थे । परन्तु जगदारम्भ काल में तम था । और तम के भीतर न पहचान ने योग्य सारा जगत् डूब गया था । यह तुच्छ से ढँके हुए अंधकार में व्याप्त । सब ओर से उद्भव पानेवाला गतिमान जगत् सर्वथैव उस मूल अज अव्यय आत्मा के तप की महिमा से प्रकट हुआ ।

इस सूक्त में "जगदारम्भ काल में तम था" और जगत् उस में डूबा हुआ था, यह बतलाया गया है । ऐसी अवस्था में निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं ।

(१) प्राग्जगत् काल में कुछ भी नहीं था जब जगदारम्भ काल में "तम" कहाँ से आया? तम की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

(२) जगदारम्भ काल में तम था और उस तम में जगत् डूब गया था । इस से यह साबित होता है कि तम के पूर्व जगत् की उत्पत्ति नहीं हो चुकी थी । जब तक तम के पूर्व जगत् की उत्पत्ति नहीं हो जाती तब तक तम के भीतर जगत् कदापि नहीं डूब सकता । यदि तम के भीतर जगत् डूब गया था तो जगत् का किस प्रकार निर्माण हुआ ? इन प्रश्नो का विवरण यहाँ नहीं किया गया है । प्रस्तुत ग्रंथ में हमें केवल ३ सूक्तों के विवरण की आवश्यकता थी, शेष सूक्तों को हम ज्यों का त्यों दे देते हैं --

सूक्त ४ था

काम स्तदग्रे समवर्तताधि ।
मनसो रेतः प्रथम यदासीत् ॥
सतो बंधमसति निरविन्दन ।
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

सूक्त ५ वाँ

तिरश्चिनो विततो रश्मि रेषाम् ।
अधःस्विदासि ३ दुपरि स्विदासि ३ त ॥
रेतोधा आसन् महिमान् आसन् ।
स्वधा अवस्तात प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

सूक्त ६ वाँ

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् ।
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टि : ॥
अर्वाक् देवा अस्य विसर्जनेना ।
थ को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

सूक्त ७ वाँ

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव ।
यदि वा दधे यदि वा न् ॥
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन् ।
सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

यह सारी हलचलें किस प्रकार होती गईं, इसे अब हम देखेंगे -

अद्वैत

O शून्य मूलारम्भ में कुछ भी नहीं था । किन्तु जो अकेला, अकेला ही था वह स्वतः की अपरम्पार शक्ति से बिना वायु के श्वासोश्वास करता था । तात्पर्य वह स्वयं के भीतर स्वयं ही स्फुरता था । (इस स्फुरना में नैसर्गिक हलचल थी । इसी अवस्था में वह आगे पीछे जोरों से डुल रहा था । और इसीलिए उसे स्वयंभू गति प्राप्त हुई थी ।) इस से यह सिद्ध हुआ कि जहाँ कुछ भी नहीं है वहाँ कुछ न कुछ भंयकर है । (There is something dangerous where there is nothing.) इसे स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं । रेलगाड़ी में Vacuum Brakes वेक्यूम ब्रेक रहता है । यह केवल हवा के बल पर काम करता है । इंजन से लेकर गार्ड के डिब्बे तक एक मोटी सी लम्बी नली लगी हुई होती है । इस नली में कुछ भी नहीं होता । वह भीतर से पोली होती है । जिस समय गार्ड ट्रेन रोकना चाहता है उस वक्त गार्ड एक डंडे को दबा देता है और ट्रेन एकदम रुक जाती है । जिस नली में कुछ भी नहीं था, वहाँ इतनी शक्ति कैसे स्वयं उत्पन्न हो जाती है ।

कुछ नहीं का विवरण इस प्रकार है- अज= कभी जन्म को प्राप्त नहीं हुआ अतः उसे मृत्यु तो नहीं है। वह त्रिकालाबाधित है ? मृत्यु के परे है। अदृश्य= चर्मचक्षुओं से न दिखनेवाला । अव्यक्त=जड़ सृष्टि के समान प्रकट न होनेवाला । अरूप=बिना आकार वाला । अनन्त जिसे न आदि है न मध्य है और न अन्त है ।अतर्क्य=तर्कसे भी न जानने योग्य । निर्गुण=मन, बुद्धि, चित् और अहंकार से रहित । मायातीत= माया से रहित । निरानन्द=किसी भी आनन्द से मुक्त। भासात्मक निराभास=अति प्रयास के कारण हमारे ज्ञान चक्षु को आभास होता है किन्तु चर्मचक्षु और शरीर को इस का बिलकुल आभास नहीं होता। स्वयंभू=स्वयं निर्मित। स्वयं की तपश्चर्या से प्रगट हुई स्वयंभू-शक्ति, स्वयंभूगति और स्वयंभू आकर्षण शक्ति इन तीनों से जो अपरम्पार पूर्ण शक्ति उत्पन्न हुई है,उसी को महाशक्ति अथवा महाब्रह्म कहा जा सकता है । (दासबोध देखिए) श्री समर्थ स्वामी रामदास जी ने अपने मनाचे श्लोक नामक पुस्तक के पहिले श्लोक में जो मूलारम्भ बतलाया है, वही महाब्रह्म मूलारम्भ है। स्वामीजी ने अपनी दासबोध के ७ वें समास में चौदह ब्रह्मों को साफ उड़ा दिया है। इस के बाद विमल ब्रह्म नामक ब्रह्म शेष रहता है। उस ब्रह्म का अर्थात जो कुछ भी नहीं है उस ब्रह्म का दासबोध में सर्वत्र वर्णन किया गया है। यह महाब्रह्म निर्माण होने के बाद इसी महाब्रह्म से परब्रह्म की उत्पत्ति हुई है, । इस ब्रह्म के पूर्व अदृश्य, अव्यक्त पंचमहाभूत निर्माण हुए थे । इस विषय में श्री समर्थ रामदास स्वामी लिखते हैं-ऐसी पंचमहाभुतें। पूर्वी होती अव्यक्तें। पुढे झाली व्यक्तें। सृष्टि रचनेसी ॥५६॥ दशक ८, समास ३ अब यह देखेंगे कि अव्यक्त पंचमहाभूत किस प्रकार निर्माण हुए।

स्फुरना+स्वयंभू-शक्ति,गति। इसलिए अत्यन्त भयंकर शक्ति और वेग से डुलने के कारण पोलापन (Empty space) निर्माण होने लगा। अर्थात आकाश का निर्माण हुआ। डुलने के लिए खुला भाग अर्थात पोला स्थान चाहिये । जिस समय स्त्री के उदर में गर्भ रहता है उस समय की अवस्था का विचार करने से ये सारी बातें समझ में आ सकती हैं । गर्भधारणा के प्रारम्भ में पुरुष के वीर्य में गर्भोत्पादक जन्तु होते हैं । इन जंतुओं में से केवल १ जन्तु गर्भाशय में प्रवेश करता है। भीतर प्रवेश करने के बाद वह

अपनी पूँछ से गर्भाशय का द्वार बन्द कर लेता है।कारण दूसरा जन्तु भीतर प्रवेश न करे इसलिए उसकी हलचल शुरू होती है। किसी बड़े सर्प को मारने पर जब मृत्यु के समय वह बड़ी भयंकरता से फड़फड़ करता है, उसी प्रकार इस जन्तु की हलचल होती है। जब यह क्रिया जोरों से शुरू होती है तब स्त्री के बीज कोष में से (Female ovary) एक दूसरा पदार्थ उस गर्भाशय में आ विराजता है और उस जन्तु को आकर मिल जाता है। इन दोनों की क्रिया से गर्भाशय में बड़ा द्रव पदार्थ निर्माण होता है। यह द्रव पदार्थ स्वयं पकने के मुताबिक पकता रहता है। इसी का माँस पिंड बनता है और बढ़ने लगता है। ५ मास के बाद उस गर्भ को स्वयंभूगति प्राप्त होती है और हलचल भी प्रारंभ होती है। इस प्रकार वह गर्भ सारे पेट में घूमने लगता है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि "क्या उस गर्भ को घूमने की इच्छा होती है अथवा माता की इच्छानुसार वह गर्भ घूमता है?" नहीं इन दोनों की इच्छा के बिना भी यह कार्य होता है। इसी हलचल को स्वयंभूगति कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से दो बातें सिद्ध होती हैं-१- जिस प्रकार उपर्युक्त जन्तु की हलचल शुरू होती है, उसी प्रकार उस महाब्रह्म की भी भयंकर वेग से आगे पीछे to and fro हलचल शुरू थी। २- स्त्री का गर्भाशय तथा उदर का Empty space पहले से ही तैयार रहने पर भी वह लिमिटेड होता है, किन्तु महाब्रह्म के विषय में अनलिमिटेड होता है।

आकाश का जैसे जैसे प्रसरण होता गया, वैसे वैसे उस स्वयंभू शक्ति में स्वयंभू गति निर्माण होती गयी। और जब इस शक्ति गति का आकाश सें संघर्ष शुरू हुआ तब वायु प्रकट हुआ। इसे स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं-जिस दिन वायु बिलकुल न बही हो उस दिन भी रेलगाड़ी से प्रवास करनेवाले यात्री को ट्रेन में बैठे बैठे इस बात का अनुभव हो जाता है कि ट्रेन की खिड़कियों में से हवा बड़े जोरों से भीतर प्रवेश कर रही है। यद्यपि उस समय वायु की गति अत्यन्त मंद होती है फिर भी ट्रेन का हवा से जो तीव्र संघर्ष जारी रहता है, उसी से वायु की वृद्धि होकर वह भीतर जोरों से प्रवेश करती है। उस अपरम्पार शक्ति के अत्यन्त तीव्रता से डुलने के कारण आकाश और वायु की उत्पत्ति हुई। महाब्रह्म और आकाश

से वायु का अत्यंत जोरदार संघर्ष शुरू होते ही तेजयुक्त बिन्दु का प्रादुर्भाव हुआ और उसी समय "नाद" की भी उत्पत्ति हुई। इसे स्पष्ट करने के लिए ही हम ट्रेन का उदाहरण अपने सामने रख सकते हैं - किसी उँचे स्थान के किनारे से जब ट्रेन अपनी पूरी शक्ति से चलती है तब पटरी और चक्कों के बीच से चिनगारियाँ निकलती हुई दीख पड़ती हैं। इन चिनगारियाँ और उपर्युक्त बिन्दु में केवल इतना ही भेद है कि बिन्दु यह अत्यन्त शीतल, दाहकपन से रहित है। यह गतिमान और मनमोहक होता है। इसलिए इसे अग्नि नहीं कहा जा सकता। किन्तु ट्रेन और पटरी के बीच जो चिनगारियाँ उड़ती हैं वह अग्नि है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि बिन्दु के समूह से तेज तथा बिन्दु से ही अणुरेणु भी उत्पन्न हुए। यहाँ हम सृष्टि Nature अर्थात सृष्टि का नियम बतला देना चाहते हैं कि सृष्टि में जो भी चीज निर्माण होती है उसकी अमर्याद वृद्धि प्रारम्भ होती है। कुछ काल के बाद वृध्दि स्थगित होती है। ठीक यही प्रकृति का नियम उपर्युक्त तेज और बिन्दु तथा अणुरेणु को भी लागू होता है।

महाब्रह्म+वायु+तेज=तेजमें आर्द्रता निर्माण हुई (आर्द्रता का अर्थ पानी नहीं है।)

वायु+तेज+आर्द्रता -सूक्ष्मातिसूक्षम अणुरेणु उत्पन्न हुए।

बिन्दु और नाद इन दोनों ने अपना अलग-अलग संसार चालू रखा। हठ योगशास्त्र का अभ्यास करते समय बिन्दु और नाद का अनुभव आता है इसे ही "सर्वम् बिन्दुमय जगत्" ऐसा सूत्र है। नाद का अनुभव "अनाहत" ध्वनि के रूप में आता है। इस में दस नाद हैं। आकाश और वायु इन दोनों के संघर्ष से नाद उत्पन्न हुआ। तेज में प्रकाश नहीं था। इस महाब्रह्म के समय तक अंधकार नहीं था और प्रकाश भी नहीं था। उस समय सूर्योदंय के पूर्व के जिस काल को हम "पंच पंच उषःकाल" कहते हैं वह उषःकाल की अवस्था थी।

अव्यक्त पंचमहाभूतों का निर्माण इस प्रकार हुआ-जैसा कि उपर हम ने बतलाया है । निर्माण काल के बाद आकाश और वायु की अमर्याद वृध्दि हुई । तद्नुसार तेज, आर्द्रता और अणुरेणु की भी खूब वृद्धि हुई । हमारे ख्याल से इसी समय महाब्रह्म के ऊपर का आवरण फट गया होगा । बिना किसी आवरण से शक्ति का अनुभव नहीं हो सकता ।

आकाश की भयंकर वृद्धि हो जाने से अंधकार निर्माण हुआ कारण आकाश में स्वाभाविक ही अंधकार है ।

वायु की भयंकर वृद्धि के कारण हवा निर्माण हुई । तेज की इतनी अधिक वृद्धि हुई कि वह बिना शक्ति का परब्रह्म हो गया और झट अग्नि उत्पन्न हुअी ।

आर्द्रता की भयंकर वृद्धि के कारण जल की उत्पत्ति हुई । अणुरेणु की भयंकर वृद्धि के कारण पृथ्वी निर्माण हुई और पृथ्वी अंधकार में डूब गयी।

अब इसी समय दूसरी ओर क्या हुआ यह भी देखेंगे -

तेज की भयंकर वृद्धि के कारण जब सारे पदार्थ व्याप्त हो रहे थे उसी तेज ने महाब्रह्म को निगल लिया । निगलते ही शक्ति युक्त परब्रह्म निर्माण हुआ, फिर भी महाब्रह्म किंचित शेष रह ही गया । इसी शक्ति से यह प्रकाश युक्त भयंकर तेजस्वी, जन्म-मृत्यु रहित, अत्यन्त मोहक, सुंदर और आनंद युक्त सारी चराचर सृष्टि में व्याप रहा है ।

इस परब्रह्म से रवि-चन्द्र निर्माण हो कर रात और दिन का विभाजन हुआ ।

परब्रह्म+नाद+सृष्टि, इन के संयोग से चित्त-दूसरों की संवेदना जिस के कारण जानी जाती है-ऐसी एक स्वसंवेद्य स्थिति निर्माण हुई अर्थात ''चित्'' निमार्ण हुआ । यही स्वरूप आनंदयुक्त है ।

यह परब्रह्म है इसी को बाद में ''एकोऽहम् बहुस्याम'' ऐसी कामवासना उत्पन्न हुई । अर्थात बाह्य शक्ति की उसे आवश्यकता महसूस हुई ।

परब्रह्म महाब्रह्म से निर्माण होकर किस प्रकार सदा के लिए रहा इसे स्पष्ट करने के लिए नीचे एक संक्षिप्त वंशावली देते हैं ।

महाब्रह्म

|

स्फुरना + डुलना = आकाश

|

आकाश + अत्यंत वेगसे डुलना = हवा

|

हवा+ आकाश = अत्यंत वेगसे
चलना + नाद और बिंदु
तेज का निर्माण होना
Cosmic Rays

|

बिंदु या तेज +हवा = आर्द्रता
(यह पानी नहीं है। कला)
आर्द्रता + बिन्दु=अणुरेणु

तेज	अणुरेणु
परब्रह्म - रवि सत्	पंचमहाभूत, दृश्य तम शनि "म"
प्रकृति-चन्द्र	सूक्ष्म पंच तन्मात्रा
महत-(बुद्धि) बुध	आकाश नील, गुरु दत्त
चित्त-मंगल	वायु हरा, बुध, गणेश
अहंकार-गुरु	अग्नि रवि,लाल, मारुति
मन-चन्द्र	जल चन्द्र,सफेद,देवी
पंचज्ञानेन्द्रिय, -पचंकर्मेंद्रिय	पृथ्वी पीला,शनि,काली

सत्व-अ-रवि	रज-उ-चन्द्र	स्थूल पंच तन्मात्रा
।		।
स्त्रोत्र-मंगल	वाक-बुध	आकाश का गुण-शब्द गुरु
।		।
त्वक- बुध	पाणी-गुरु	वायु का गुण-स्पर्श बुध
।		।
चक्षु-रवी	पाद-मंगल	अग्नि का गुण-रूप रवि
।		।
रसना-चन्द्र	गुद-शनि	जल का गुण-रस चन्द्र
।		।
घ्राण-शुक्र	उपस्थ-शुक्र	पृथ्वी का गुण-गंध शनि

दृश्य सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बिन्दु है। और बिन्दु से अणुरेणु, अणुरेणु से सृष्टि और सृष्टि से मानवीय शरीर की उत्पत्ति होती है।

बिन्दुका कोष्टक

अव्यक्त {

८ बिन्दु=१सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेणु
८ सू.सू. रेणु = १सूक्ष्म रेणु
८ सूक्ष्म रेणु-१रेणु
८ रेणु =१ सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु
८ सू. सू. परमाणु =१ सूक्ष्म परमाणु
८ सू. परमाणु=१ परम अणु
3 परम अणु=१ त्रसरेणु
९ त्रसरेण =१ सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु, यहाँसे दृश्य

दृश्य

८ सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु = १ सू. अणु
८ सू. अणु = १ अणु

ऊपर दिये गए सब कोष्टकों से निकला हुआ परिणाम-

निसर्ग-यदृच्छा

प्राणी-मनुष्य	मनुष्येतर जीवजंतु	स्थावर जंगमात्मक पदार्थ अणुरेणुसह
ईश्वर अवस्था-जागृत	स्वप्न	सुषुप्ति
इन्द्रिय-सेन्द्रिय	सेन्द्रिय	निरीन्द्रिय

प्राचीन वेदान्त के पंचिकरण में मन की दशेन्द्रिय में गणना की गई है । इस मत से मैं सहमत नहीं हूँ । कारण यह है कि ये दशेन्द्रिय दृश्य हैं । उंगली रखकर बता सकते हैं । उदाहरणार्थ = रसना क्या है और कहाँ है इस को तुम अपनी जीभ पर उंगली रखकर बता सकते हो । इस प्रकार से तुम मन कहां है और किस प्रकार का है और क्या है यह दृश्य रीति से बताने में असमर्थ हो । इसीलिये मन की दशेन्द्रिये में गणना करना यह मैं अनुचित समझता हूँ । इसलिये मैने मन को दशेन्द्रियो में से निकाल कर अलग रख दिया है । आगे दिया हुआ कोष्टक देखिये -

परब्रह्म	दृश्य पंचमहाभूत
प्रकृति	आकाश
महत	वायु
चित्	अग्नि
अहंकार	जल
मन	पृथ्वी
	शरीर
	पंचज्ञानेन्द्रिय । पंचकर्मेन्द्रिय

इस प्रकार महाब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण इस ग्रंथ में किया किन्तु जिन पाठकों को इस के अतिरिक्त अधिक जानकारी प्राप्त करनी हो वे 'पंचिकरण' देखें। हम ने जिस प्रकार महाब्रह्म का वर्णन किया है ठीक इसी प्रकार श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भी वर्णन किया गया है।

ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्षामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।

अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नसदुच्यते ।। श्लोक १२ अ. १३-

अर्थ-जिसे जानने से अमृत अर्थात मोक्ष मिलता है वह मै तुझ से कहता हूँ। वह अनादि (सबके) उस ओरका शाश्वत महाब्रह्म है। इसे सत् और असत कुछ भी नहीं कहते।

तैत्तिरीय ब्राह्मण पाठ में "नासदीय सूक्त" आया हुआ है। कुछ उपनिषदों में और कुछ आरण्य कों में (बृहत आरण्यक तथा अन्य कुछ ग्रंथों में भी) इस महाब्रह्म का वर्णन आया हुआ है।

अब तक महाब्रह्म से परब्रह्म की उत्पत्ति का विवेचन किया गया। अब तक जितने भी संत महात्मा हो गये हैं वे सब इसी परब्रह्म में विलीन हो चुके हैं। भविष्य में भी जितने भी महात्मा गण निर्माण होंगे वे भी इसी में विलीन होंगे। महाब्रह्म तक सहसा कोई भी नहीं पहुँचता। इस पद की यात्रा करनेवालों में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत समर्थ स्वामी रामदास जी का नाम अग्रगण्य है। अतः स्वामी रामदास जी की योग्यता महान थी यह स्वयं सिद्ध हो जाता है। स्वामी रामदास जी ने महाब्रह्म अर्थात मूलारम्भ देखा था और इसलिए आप ने अपने ("मनाचे श्लोक") मन के पहले श्लोक में मूलारम्भ शब्द का प्रयोग किया है। यदि आप ने मूलारम्भ न देखा होता तो कदापि मूलारम्भ शब्द न लिखते ! "आत्मा; परब्रह्म अथवा परमात्मा" आदि शब्द लिखते। स्वामी रामदास हनुमान जी के अवतार थे और भगवान मारुति तो स्वयं महाब्रह्म हैं। अतएव स्वामी जी ने महाब्रह्म दर्शक "मूलारम्भ" शब्द का प्रयोग किया है और यही सत्य भी है।

* * *

परिच्छेद पाँचवा

माया (चन्द्र Universal Mother)

''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।। ''
''त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरि भिःसर्व मिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।। ''

अर्थात, यह अलौकिक अर्थात अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो जो पुरुष मुझ को ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को उल्लंघित कर जाते हैं, अर्थात संसार से पार हो जाते हैं। गुणों के कार्यरूप सात्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकार के भावों से अर्थात रागद्वेषादि विकारों से और सम्पूर्ण विषयों से यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिये इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी तत्व को नहीं जानता ।

जिस को गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करना है, उसे गृहिणी की आवश्यकता का अनुभव होता है । पुरुष ने अपने रहने के लिये मकान बांधा और उस में वह निवास करने लगा । उसने विवाह किया और अपनी पत्नी को गृह स्वामिनी बनाया । स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा है-''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनानेन कौन्तेय जगपरिवर्तते ।।'' अर्थात, ''हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और यह ऊपर कहे हुए हेतु से ही यह संसार आवागमन रूपी चक्र में घूमता है ।'' माया एक बड़ी ही अजीब शक्ति है । अदृश्य का दृश्य होना और दृश्य का अदृश्य होना इसी को माया कहते हैं । मेरी समझ में माया का स्वरूप लोहचुम्बक की उस आकर्षण शक्ति के समान है जो लोहे को खींचती तो है ही परन्तु आंखो को दिखलाई नहीं देती । लोहचुम्बक में लोहा और लोहचुम्बक ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ मौजूद हैं । इसी तरह पुरुष

व स्त्री दोनों एक ही तत्त्व से बने हुए हैं। जिस सप्तरसात्मक धातु से पुरुष का शरीर बना हुआ है उसी सप्तरसात्मक धातु से स्त्री का भी शरीर बना हुआ है। स्त्री और पुरुष को मन,बुद्धि,चित्त, अहंकार तथा आत्मा समान दिये गये हैं। इतना होते हुए भी दोनों के शारीरिक गुणधर्म भिन्न-भिन्न हैं। यदि स्त्री को लोह चुम्बक कहा जाये तो हम पुरुष को लोह कह सकते हैं। स्त्री में एक ऐसी महान आकर्षण शक्ति होती है कि जिस के बल पर वह पुरुष को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर लेती है। दोनों में एक ही शारीरिक तत्त्व वर्तमान होते हुए भी एक भोक्ता है और दूसरा भोग्य है। इसी क्रिया को मैं माया कहता हूँ। यह कार्य किस प्रकार से होता है यह हमें दिखाई नहीं देता। इस कार्य का हेतु सृष्टि का विस्तार तथा पालन अबाधित रूप से जारी रखना है। यह एक ऐसी क्रिया है कि जो बाल्यकाल अथवा वृद्धावस्था में नहीं की जा सकती। वह तो केवल युवावस्था में ही हो सकती है। इस से एक बात सिद्ध होती है कि इस क्रिया का काल सीमित है- कुछ काल तक ही यह क्रिया हो सकती है और कुछ काल तक नहीं हो सकती। माया का भी यह एक लक्षण है। माया इस सृष्टि का पालन व संवर्धन करनेवाली, दृश्यादृश्य होने वाली, स्वयं प्रकाशित न होकर ब्रह्म से प्रकाशित होने वाली, ब्रह्म को अपने वश में रखने वाली, मोह में फंसाने वाली, सदा भ्रम में डालने वाली,स्वकर्तव्य दक्ष, दयाशील होते हुए भी ममत्त्वहीन है। जिसकी कतृत्व शक्ति का आदि अंत नहीं और जो वेश्यासदृश है (सत्यानृताच परुषा प्रियवादीनीच। हिंम्रा दयालुरपिचार्थ परावदान्याः। नित्यम व्यथा प्रचुर नित्य धनागमाच वारांगनव नृपनाति अनेक रूपाः।।) माया के गुणधर्म चन्द्र में भी पाये जाते हैं। एक आँग्ल महिला Bassie Leo अपने ग्रंथमें लिखती है -

The Moon although apparently a barren and exhautsed world, presides over brith and death, being concerned with the shaping and moulding of the forms which we inhabit in the lower worlds. Astrologically, the

moon has rule over all the instincts in the animal kingdom. and in the human family the Moon influences the brain cells, causing fancies, notions,vague and undefined imaginings. It is concerned with collecting and relfecting, causing speculations, opinions and changes in the human mind, in which the intellect is but a reflection and often a distortion of impressions, unreasoned sentiments and apprehensions. In a world the Moon represents the personality of each individual the fleeting, transitory and impermanent bundle of inconsistexcies bound to either in the physical body and expressed through the brain cells in the various faculties of the head. It is the representative of the one life on earth,known as the personal during which time the individual ray shines through the personal or mask for the purpose of gleaning and gathering objective experiences.

By moulding the forms through which all life on our physical globe is manifested she brings all things to fruition, being the great Shakti of the God Saturn, Goddess of the deva kingdom, ruling the lower astral and physical world.

In conclusion we may note that the Moon has a light and a dark side, one half being turned to the Sun, the other away from it, She has also a good and evil influence upon huminity, There are secrets connected with the Moon that none save an adept may fully understand, but for all practical purpose she may be considered as the vehicle of prana. and a collector of all forces that sustain and nourish animal life, for without her etheric moulds life cannot be made manifest in the form. But she is also the goddess of death as well as life, and in a minor reflective manner she is also the three in one on the form side namely the collector of the cells and molecules of mater, their preserver and their dissolver. Influence of Planets by Bassie Leo. Page 15-17-18

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि माया और चन्द्र का स्वरूप एक ही है ।

संसार में अमरत्व की कल्पना किस प्रकार निर्माण हुई ?

भारतवर्ष में प्राचीन काल में हिरण्यकश्यपु नामक एक शिवोपासक तेजस्वी योगेश्वर हो गये हैं । इन्हें अमर बनने की इच्छा थी । और इसी-लिए हिरण्यकश्यपु ने भगवान शंकर की कठिन तपश्चर्या प्रारंभ की । भगवान भोलेशंकर प्रसन्न हुए और भक्त की इच्छा पूर्ण करने के हेतु से बोले कि हे वत्स, इच्छित वर माँगों ! हिरण्यकश्यपु ने जब अमर बनने की इच्छा व्यक्त की तब विश्वनाथ शंकर जी ने कहा कि , भक्तराज, शरीरधारी प्राणियों के लिए यह अवस्था अत्यन्त दुःसाध्य है । सृष्टि यह मृत्युग्रस्त है अतएव यहाँ के प्राणी अमरत्व नहीं प्राप्त कर सकते । हिरण्यकश्यपु ने अपनी वाक्य रचना बदलकर पुनः भगवान शंकर से वही वर मांगा - हे नाथ ! देव,दानव, मानव तथा स्थावर जंगम जीव जंतुओं से मेरी मृत्यु न हो । न मैं दिन में मरूँ और न तो रात को । न घर में और न घर के बाहर मेरी मृत्यु हो । भगवान् शंकर ने तथास्तु कहा और हिरण्यकश्यपु उस दिन से स्वयं को अमर समझने लगा । इस के पश्चात कथा का विस्तार तथा अन्त किस प्रकार हुआ यह प्रत्येक पाठक जानते है । उपर्युक्त उदाहरण देकर हम अपने पाठकों का ध्यान ''अमररत्व'' की ओर आकर्षित करना चाहते हैं । यह अमरत्व की भावना किस प्रकार निर्माण हुई यह बड़ा ही मनोरंजक विषय है ।

यहाँ हम अति प्राचीन काल की एक कथा सुनाते हैं । इसका निश्चित काल मान अब तक ज्ञात नहीं हो सका । कथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कुछ भी प्रमाण मिलते है उस से ये प्रकट होता हैं कि जब मानव प्राणी का जन्म हुआ था तब मानव पूर्ण अज्ञानी तथा नग्नावस्था में विहरता था ।

उस सयम मनापुर नामक एक मायावी असुर निर्माण हुआ । यह बड़ा ही प्रतापी, भयंकर तेजस्वी,अंहकारी, निडर, तमोगुणी और मृत्युरहित था । जैसे - जैसे वह बड़ा होने लगा वैसे-वैसे सृष्टि में भयंकर विप्लव मचाने लगा ।

यह राक्षस देव, दानव तथा मानवों से लड़ने लगा। देवता और मानवों की स्त्रियां तथा लड़कियों को भगाना, उन की सम्पत्ति को लूटना, लोगों की हत्या करना आदि आजकल के सीमाप्रांतीय गुंन्डो के समान नीच कर्म करने लगा। मनासुर के कई उत्पातों ने जनता को आपत्ति में झोंक दिया। भय से लोग कांपने लगे। उस समय उन्हें अपनी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं दीखता था। चूंकि वह राक्षस अमर था इसलिए देवता और मानव उस से युद्ध नहीं कर सकते थे। अन्त में विवश हो कर देवताओं ने अपना एक शिष्टमंडल भगवान शंकर के पास भेजा। (जैसा आजकल जनता का शिष्टमंडल सरकार के पास जाता है।) शिष्टमंडल की दलीलों को सुनकर भगवान शंकर ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि हम आप के कष्ट निवारण करने का उपाय अवश्य ढूंढ निकालेंगे। भगवान शंकर से आश्वासन पाकर देवता गण अपने-अपने स्थान के लिए बिदा हुए। देवताओं के कष्टों का निवारण करने के हेतु से भगवान शंकर बहुत कुछ सोचते रहे किन्तु उन्हें कोई भी उचित मार्ग न सूझ सका। अतएव वे सीधे भगवान महाबीर के पास गये। महाबीर जी की स्तुति करते हुए कहने लगे कि " हे भगवान ! आप ने ही प्रकृति तथा पुरुष को निर्माण किया है। आप अज और अमर हैं। इस चराचर में आप के समान शक्तिशाली कोई भी नहीं है। आप स्वयंभू शक्तिशाली हैं। शंकर जी के स्तुतिपरक वचनों को सुन कर महाबीर जी मुस्कुराते हुए बोले, देवश्रेष्ठ शंकर जी, आप बड़े ही चिंताशील जान पड़ते हैं। कहिए, आप की चिन्ता का कारण निःसंकोच बतलाइए। अपनी चिन्ता का कारण व्यक्त करते हुए शंकर जी बोले - हे प्रभो! पृथ्वी पर एक मनासुर नामक असुर अपनी प्रबल शक्ति के कारण बड़ा ही उत्पात मचा रहा है। भूमंडल उस के अत्याचार से काँप रहा है। उस के नाश का कोई भी उपाय हमें दीख नहीं रहा है। अतएव हम बड़े ही चिंतित हैं। कृपा कर आप इस चिंता के निवारण का उपाय बतलाइये। भगवान महाबीर ने कहा- हे शंकर जी ,मैं उस के कृत्यों से अनभिज्ञ नहीं हूँ। उस के नाश का शीघ्र ही उपाय किया जायगा। आप निश्चिन्त रहें। भगवान महाबीर से आश्वासन पा कर शंकर जी अपने धाम की ओर चले गये।

शंकर जी के चले जाने के बाद महाबीर जी ने इस विषय पर बहुत कुछ सोचा और वे अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे कि मनासुर का नाश केवल स्त्री के द्वारा ही हो सकता है। महाबीर जी ने अपनी पूँछ से कहा 'हे काली तुम्हें मनासुर से युद्ध कर उसे मारना है अतएव तैयार हो जाओ देवी ने कहा-हे प्रभो, मनासुर बड़ा ही मायावी अष्टसिद्धि को प्राप्त और बड़ा ही चंचल है। वह एक स्थान पर कदापि नहीं रहता, उसे अमरत्व भी प्राप्त है ऐसी अवस्था में उस की मृत्यु किस प्रकार हो सकेगी ? मनासुर के नाश का उपाय देवी से महाबीर जी कह ही रहे थे कि शंकर जी वहाँ आ विराजे। नीचे का अति गूढ़ , परम और चरम कल्याणकारी संवाद शंकर जी को सुनने का बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ। देवी और महाबीर जी का संवाद प्रारम्भ हुआ। महाबीर जी ने कहा, "हे देवी, तुम जिस स्थान पर हमेशा बैठती हो वहाँ से हट कर अपना मुँह उपर की ओर कर दो। तुम्हें एक विवर दिखाई देगा। इसी में प्रवेश करो। वहाँ प्रवेश करने पर तुम मनासुर को देख सकोगी किन्तु मनासुर तुम्हें न देख सकेगा। मनासुर एक स्थान पर नहीं रहता, उसके छः दुर्ग हैं। ये बड़े ही दुर्गम दुर्ग हैं जिनके भीतर मनासुर रहा करता है। इन में से जो पहिला दुर्ग है उस के चार मजबूत परकोट हैं। इस दुर्ग में चारों ओर से दरवाजे हैं। प्रत्येक दरवाजे पर कड़ा पहरा रहता है। मनासुर पूर्व दरवाजे में रहा करता है; वह बड़ी ही सावधानी से रहा करता है। अतएव तुम पश्चिम दरवाजे से भीतर प्रवेश करो। यहाँ यदि वह न मिले तो उस के रहने का रंगमहल तोड़फोड़ कर नष्ट कर देना। इस के आगे दूसरा दुर्ग है। यह बड़ा ही विचित्र है। इस के भी छः परकोट हैं। चार दिशाओं पर चार और वायव्य तथा आग्नेय दिशा में दो इस प्रकार कुल छः दरवाजे इस दुर्ग के हैं। प्रत्येक दरवाजे पर भयंकर असुर पहारा देते हैं। पूर्व दरवाजे पर "काम" दक्षिण दरवाजे पर "क्रोध", पश्चिम दरवाजे पर "लोभ ,, उत्तर के दरवाजे पर "मोहासुर,, आग्नेय दरवाजे पर "मद,, और वायव्य दरवाजे पर "मत्सर" नामक असुर पहरा देते हैं। यह सभी पहरेदार असुर बड़े ही भयंकर तथा जल्दी वश में न होनेवाले हैं। यहाँ तुझे मनासुर नहीं मिला तो ये दुर्ग तहस नसह कर आगे बढ़ना इस के आगे तीसरा दुर्ग है। इस

दुर्ग में प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। यह दस मजबूत परकोटों से घिरा हुआ है। और इसके चारों ओर से अग्नि की लपटें निकला करती हैं। इस दुर्ग में देव, दानव तथा मानवों में से कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। इस दुर्ग में भी हे देवी, तुम पश्चिम मार्ग से ही प्रवेश करो।''भगवान् महाबीर से इस दुर्ग का वर्णन सुन कर देवी ने तुरन्त उस में प्रवेश किया। दुर्ग संरक्षण सेनापति देवी को देखते ही पूर्ण सहायता देने के लिए तैयार हो गया। उसने बड़ी ही नम्रता के साथ देवी को भीतर का रास्ता बतला दिया। सहसा इसी दरवाजे पर मनासुर से देवी की मुठभेड़ हो गयी। मनासुर ने अपने महल में बैठे बैठे देवी के अति भयंकर क्रोधी स्वरूप को देखा। देखतेही वह युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ। देवी ने तीन दिन युद्ध किया किन्तु मनासुर न मरा और न ही देवी की शरण में आया। अन्त में देवी थक गयी। भगवान् महाबीरजी ने देवी की यह अवस्था देखी तो उन्हें ऐसा जान पड़ा कि देवी को और भी कुछ सहारे की आवश्यकता है। भागवान् महाबीर ने देवी से उस राक्षस के विषय में पूछा तब देवी ने उत्तर में निवेदन किया कि हे देव, यह राक्षस बड़ा ही मायावी है। यह अमर है अतः इसे जीतना बड़ा ही दुर्गम है। मेरे विचार से यह जब तक शरण नहीं आता तब तक कोई भी काम सिद्ध नहीं हो सकेगा। भगवान् महाबीरजी ने देवी को सहारे के लिए विवेक और भक्ति नामक दो अस्त्र प्रदान किये। इन अस्त्रों कों पा कर देवी पुनः युद्ध के लिए तैयार हो गयी। महाबीर इन दोनों का युद्ध देखते रहे। उपर्युक्त दो नये अस्त्रों का प्रयोग करते ही मनासुर नौ दो ग्याराह हो गया। अंत मे विवश हो कर उसे देवी की शरण लेनी पड़ी। शरण में आये हुए मनासुर को देख कर देवी ने कहा कि हे राक्षस, तेरे अस्वित्व को सदा के लिए नष्ट कर देना चाहिए, किन्तु यह काम मेरा नहीं है, अतएव तू भगवान् महाबीर के पास चल।

मनासुर भगवान् महाबीर के समक्ष उपस्थित किया गया। भगवान् की क्रोधकारी आखों से मानो अग्नि की लपटें निकल रहीं थी। इस भयंकर रूप को देख कर मनासुर घबड़ाकर काँपता हुआ भगवान के चरणों मे गिर पड़ा। उस उदन्ड राक्षस की ओर देख कर भगवान् महाबीर जी ने कहा - हे

राक्षस, तुम बड़े ही मायावी, निडर और दुष्ट हो। पृथ्वी पर तुमने अपने अत्याचारों से लोगों को घोर कष्टों में झोंक दिया है। तुम इस बात को बिलकुल भूल गये हो कि तुम्हारा शासक जो सर्वशक्तिमान ईश्वर है, वह सर्वत्र विराजमान है। तुम्हारी उद्दण्डता को देख कर तुम को उचित दण्ड अवश्य देना चाहिए। महाबीर जी के कड़े रुख को देख कर मनासुर घबराया और स्तुति करता हुआ चरणों पर गिर पड़ा। दीनदयालु महाबीर ने मनासुर के भयभीत पश्चात्तापयुत्त्क अंतःकरण को देखा। उन्हें उस राक्षस पर दया आ गयी। मनासुर से भगवान् ने कहा कि हे असुर, आज से तुम भ्रूमध्य में रहो। जो मानव दानव तथा देव ईश्वर का स्मरण न करेगा, उसे कष्ट दे कर ईश्वर की याद दिलाते रहना। समीप ही हाथ जोड़े हुए देवी खड़ी थी। देवी की ओर देख कर महाबीर जी ने कहा कि हे देवी मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अतएव इच्छित वर माँगो। देवी ने पति दर्शन की इच्छा व्यक्त की।

देवी की पति दर्शन की लालसा पूर्ण करने के हेतु से महाबीर जी ने कहा, हे देवी, तुम्हें पति दर्शन के लिए इस से भी आगे बढ़ना होगा। इस के आगे एक चौथा दुर्ग है। इस के चारों ओर से खून की नदियाँ बहती हैं। इस दुर्ग के बड़े बारह परकोट हैं। इस दुर्ग के भीतर भयंकर नाद सुनने में आता है। इसी स्थान पर बड़े जोरों से आँधी चला करती है। इस आँधी में मार्ग बिलकुल नहीं दीखता। इस दुर्गम दुर्ग को तोड़ फोड़ कर तुम्हें आगे बढ़ना होगा।

इस के बाद तुम्हें सोलह परकोटों से घिरा हुआ एक पाचवाँ दुर्ग मिलेगा। यह आकाश में स्थित है। इसे भी तुम्हें नष्ट करना होगा। इस के आगे एक चमत्कारिक छठा दुर्ग मिलेगा। यह दुर्ग आकाश में झूलता रहता है। इस दुर्ग को सर्वप्रथम स्थिर करना होगा। इस के बाद सूक्ष्म रूप धारण कर हे देवी, तुम्हें उस दुर्ग में प्रवेश करना होगा। दुर्ग के स्थिर होते ही उस दुर्ग के भीतर तुम्हें पतिदेव का पता लगेगा। वहाँ एक अद्भुत समुद्र में दिव्य मंच पर तुम्हारे पतिदेव विश्राम कर रहे हैं। वहाँ समीप में ही एक अमृत कुंड है। देवी, इस युद्ध में तुम्हें बड़े-बड़े कष्टों का

सामना करना पड़ा है। अतः पति के समीप जाने के पूर्व तुम्हें उस कुंड से अमृत प्राशन कर लेना चाहिए। भगवान महाबीर जी से मार्ग की समूची जानकारी प्राप्त करने पर देवी पति दर्शन के लिए चल पड़ी। मार्ग के कठिन दुर्गों को नष्ट करने पर उसे पतिदेव के दर्शन हुए। झट पतिदेव को गाढ़ आलिंगन दिया। पति के दर्शन पाते ही देवी एकदम समाधिस्थ हो गयी। कुछ समय के बाद जब समाधि भंग हुई तो प्रसन्नवदना देवी ने अपने पति से पूछा-हे नाथ, क्या इस संसार में कोई व्यक्ति अमर हो सकता है? पतिदेव ने कहा, हे प्रिये, इस संसार में महाबीर जी के अतिरिक्त कोई भी अमर नहीं है। संसार में जिन का जन्म हुआ है उन्हें एक दिन अवश्य मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है।

उपर्युक्त कथा से यह जाना जा सकता है कि मनासुर भगवान् के शरण जाते ही अमर हो गया। और तभी से असुरों में ''अमरत्व'' की भावना निर्माण हो गयी और इस अमरत्व की कल्पना पर चन्द्रमा का असर होता है।

अगले परिच्छेद में ''वैराग्ये'' के विषय में विचार करेंगे।

* * *

परिच्छेद छठवाँ

वैराग्य (शनि) लय

मनुष्य के मन पर जन्म-जन्मांतर से एक विशिष्ट प्रकार का संस्कार होता आया है। मोह व लोभ के कारण वह गृहस्थ्य जीवन बिताना चाहता है तथा जायदाद, बाल बच्चों आदि की इच्छा करता है। इस इच्छा का त्याग करना अति दुस्तर है। इसी विचार-प्रणाली के कारण जन्मजन्मांतरित इच्छा दिल में रह जाती है। जन्म-मरण के चक्र का मूल इसी इच्छा में है। सभी प्रकार की इच्छाओं का त्याग करना ही वेन्दान्त में सब से महत्त्व की बात है। ये त्याग तीन प्रकार के होते है :-

(१) किसी भी वस्तु का त्याग विचार पूर्वक अपनी इच्छा से एवं आत्म संयम से करना और त्याग करते समय अपने शरीर, मन व आत्मा को या किसी अन्य व्यक्ति के मन या शरीर को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना। इस प्रकार का वैराग्य श्रेष्ठ श्रेणी का होता है।

(२) शरीर, मन और आत्मा को आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक इन त्रिविधतापों से पीड़ा पहुँचती है। ये ताप असह्य होने के कारण जब वासना का त्याग बलपूर्वक किया जाता है तब वह त्याग अधूरा ही रह जाता है जो कि गुरु के ज्ञानोपदेश से पूर्ण होता है। इस प्रकार का त्याग द्वितीय श्रेणी का है और वर्तमान जन्म स्व प्रयत्नों पर निर्भर है।

(३) कनक व कामिनी की अभिलाषा मन में रखना किन्तु वह पूरी न होना। इसे हम ''अभाव-वैराग्य'' कहते हैं। जिसे परमार्थ मार्गका अनुसरण करना है उसे चाहिये कि वह वैराग्य का अभ्यास करे। मनुष्य के मन में वैराग्य-भाव जगाने का कार्य शनि का है। मनुष्य को त्रिविधतापों से संत्रस्त कर वे आप ही उसे भगवान की याद दिलाते हैं।

The Saturn

He is pre-eminently The Reaper, and all experiences that fall under Saturn's sway are deeply engraven upon the soul. Of him it may be said, He bringeth all humanity to their knees, he is the chastener, the subduer, and scourgeth every mother's son that he receiveth.

He causes the rain of tears which, falling from a heart oppressed by the bitterness of grief or anguish(let it take what form it may), at least thrusts the soul from the external conditions of everyday life into its own innermost sanctuary, in which it seeks to solve the mystery and purpose of life.

The power of sympathy is evolved by Saturn through the exprience of pain; thus moral growth with its accompanying conscientiousness, is due to his influence; for every painful experience that the soul undergoes is but the slow producer of greater rectitude and morality in the future. Saturn is the great planet of perfectness. In his sight there is nothing small nor is there anything great; he waits with patience for the perfecting of man's inner growth. He tests and tries each human heart, and thus has been called the great Tempter: but without that temptation the soul could never become firm, sure or mighty, and it has been said that when the soul is strong enough to resist the temptation that Saturn throws across its path the god himself rejoiceth.

In studying the influence of Saturn we meet with many paradoxes. It causes very great pride, and so, by the pain of a fall, produces the virtue humility. It has within it a dual nature. Truth and Delusion, the genuine and the counterfeit, yet ever gives that inner reality which alone makes self-consciousness possible.

If able to deceive others, itself it cannot deceive; if critical with others it is also self-critical, for it is seeking the truth. Thus the pain, and the darkness, and of times the poverty of the life is the means by which the animal nature is subdued, chastened and purified. For Saturn rules as king over the senses, and if the scope of his influence be merely justice and truth, rather than love faith or devotion, nevertheless it gives that genuineness and absence of artificiality which prevent hypocrisy and self-deception.

Saturn gives the power to concentrate, to reflect, to meditate. And if he causes experience that are painful rather that pleasurable yet when we remember that wisdom is born of pain, then shall we look with different eyes upon the mission of Saturn, the Subduer, who if a saturn taskmaster is yet a friend in disguise. His mission is to draw the soul by means of matter out of matter, by means of sorrow out of sorrow, by means of pain to that Peace which passeth all unerstanding. He causes the soul to become self-reliant to dare to stand alone by the bracing influences of trouble and sorrow leaving to the other Sons of the Father the shedding forth of joy, bliss and pleasure. A powerful influence indeed is his, deep silent, strong, clam and gentle, taking the soul in to the darkness where alone can be heard the still small voice of the Divine.

But Saturn, mighty and profound Minister of the Darkness, works with a deeper love to chasten and to subdue to awaken the sleeping Inner one because he knows that in the hour of the deepest woe he is bringing the light of the Father near to soul.

शनि का स्वरूप इस प्रकार का है। मनुष्य को भगवान् की याद दिलाना एक कठिन कार्य है, इसीलिये शनि मनुष्य मात्र को विविध आपदाओं, विपदाओं से जर्जर कर देते हैं। इस की प्रतिक्रिया मे यही होती है कि मनुष्य के मन में वैराग्य भाव उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार मनुष्य का संत्रस्त हृदय परमेश्वर की शरण लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि शनि दयाशील, करूणानिधि और मनुष्य को मनुष्यत्व प्राप्त कराने वाले हैं। सारे ग्रहों मे शनि समान कोई भी दूसरा ग्रह ऐसा नहीं है जो कि मनुष्य को वैराग्य के प्रति ले जाता है।

अगले परिच्छेदमें ''मोक्ष'' के विषयमें विचार करेंगे।

* * *

परिच्छेद सातवाँ

मोक्ष (ज्ञान) राहू

'नही मोक्षस्य वासोऽस्ति नग्रामान्तरमेववा ।
अज्ञानहृदयग्रंथिनाशो स मोक्ष इति स्मृताः ॥'

शिव जी प्रभु श्रीरामचन्द्र जी से कहते है कि मोक्ष की कोई ऐसी बस्ती नहीं हैं कि एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान में जा सके; जिस तरह लोग एक गाँव को छोड़ कर दूसरे ग्राम में जाते हैं ।

आत्मा जीव स्वभाव से कहता है- 'यह घर मेरा है, ये बाल बच्चे मेरे हैं, यह औरत मेरी है' । माया के मोहवश हो कर आत्मा जीवस्वरूप होता है । इस अज्ञान रूपी अंधः कार को दूर कर 'मैं ही आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ', ईश्वर हूँ' इस प्रकार का ज्ञान आत्मा को दे कर उस में स्वरूप जागृत कराना ही मोक्ष कहलाता है ।

मनुष्य मात्र की आत्मा पर अनेक जन्म-जन्मान्तर से एक विशिष्ट प्रकार का संस्कार होता आया है । जब सृष्टि में मनुष्य का जन्म हुआ तब वह स्त्री के आधीन हुआ और माया मोह के वशीभूत हो कर अपना मूल स्वरूप भूल गया एवं प्रापंचिक बातों में आसक्त हो गया । इस का परिणाम यह हुआ कि उस के मन में यह अभिमान जागृत हुआ कि 'यह सारा प्रपंच मेरा है, घरबार और बाल बच्चे मेरे हैं, मैं ही मालिक़ हूँ, मैं ही सब कुछ हूँ ।'कई जन्मों के कारण इस अभिमान की जड़ मनुष्य के मन में इतनी पक्की हो गयी है कि उस को निर्मूल करना बड़ा ही कठिन है । महाराष्ट्र के सुपरिचित स्वामी श्री समर्थ रामदास जी ने अपने 'मनाचे श्लोक (मनके श्लोक)'में लिखा है -'**जेणें मक्षिका भक्षिली जाणिवेची ।तया भोजनाची**

रुची प्राप्त कैची ।।अहंभाव ज्या मानसीचा विरेना । तया ज्ञान हे अन्न पोटी जिरेना ।।'

इस श्लोक का भावार्थ है यह कि जिस प्रकार से भोजन के साथ पेट में मक्खी जाने के कारण अन्न नहीं पचता उसी प्रकार मन में अहंभाव उत्पन्न होने के कारण ज्ञान रूपी अन्न भी नहीं पच पाता । मनुष्य स्वभाव ही ऐसा है कि सारे प्रपंच का त्याग करने के लिये पर्याप्त मनोबल उस के पास नहीं होता । ऐसी अवस्था में उस के मन में से अहंभाव कैसे जा सकते हैं ? यही कारण है कि भगवान् ने सांसरिक जीवन दुखमय बना दिया है ताकि मानव प्राणी ठोकरें खा-खाकर आखिर में उस की शरण में आये । एक आंग्ल महिला लिखती हैं -

When a great sorrow falls upon one; when the face that lightened all the world lies cold in death and life seems now to have no longer any attraction; then, driven in upon itself, unable to find any comfort in the outside world,despairing soul is led to seek, perhaps for the first time, the hidden God within Standing amidst the ruins of the life and surveying the scene of hopeless desolation, it is led to ask-what does it all mean? What is purpose of life? What am I hear for? CAN there really be a GOD at all... That man or woman has begun a search for the self, has touched the reality of his or her own nature and that is the moment of the Soul's awakening

Planetery Influence

by Bassie Leo

इस प्रकार आत्मज्ञान (Self-realization) प्राप्त होने पर मनुष्य सर्व प्रकार के सांसारिक दुःखों तथा झंझटों से विमुक्त हो जाता है । इसी को

'मोक्ष प्राप्त करना कहते हैं। जिस प्रकार से किसी भी सरकारी कर्मचारी को सरकारी नौकरी पूरी करने के बाद पेन्शन मिलती है उसी प्रकार सांसारिक नौकरी पूरी करने के उपरान्त मनुष्य को ईश्वर मोक्ष रूपी पेन्शन देता है। राहू मोक्ष का अधिकारी ग्रह है। पाश्चात्य ज्योतिषियों के मत से अधिकारी ग्रह हर्षल है; परन्तु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ।

अगले परिच्छेद में 'पुनर्जन्म और पूर्वजन्म' के विषय में चर्चा करेंगे।

* * *

परिच्छेद आठवाँ

पूर्वजन्म-पुनर्जन्म (शनि और चन्द्र)

"I (writer Alen Leo) belive that character is destiny and that we, in our Past Lives, have woven the web of destiny by our own thinking, and thus today are weaving the web of our future horoscope. All sin is a result of ignorance or non-knowledge, therefore to know ourselves is to become wise and thus to master fate, All fate, good or evil, is made originally by our thoughts and actions and has its roots in our character, therefore I believe that character is destiny and that during this life we must work to develop our characters. In the far future we are destined to take an active part in the management of the world's evolution, and to this end we should fit ourselves, for eventually we must become perfect.

Key to your own nativity-

page 232-39 by Alen Leo

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म एक विवादास्पद प्रश्न है और इस का अभी तक कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका है। इस वाद में दो पक्ष हैं - एक पक्ष पूर्वजन्म मानता है और दूसरा इस पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं। पूर्वजन्म को मानने वाले अपने कथन की पुष्टि के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण पेश नहीं कर सकते; ग्रन्थों के आधार पर ही वे पूर्वजन्म को सिद्ध करने की चेष्टा करते है। परन्तु इस से विरुद्ध पक्ष का समाधान नहीं हो

पाता है । मेरी समझ में पूर्वजन्म का ज्ञान अतीन्द्रिय तथा योगबल युक्त बुद्धि ज्ञान की सहायता से हुआ है । इसीलिये पूर्वजन्म का पुरस्कार करने वाला पक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण (eye witness) दे कर अपने कथन की पुष्टि करने में असमर्थ होता है । मैं तो पूर्वजन्म व पुनर्जन्म को मानने वाला हूँ; अतएव जन्म परम्परा को सिद्ध करने की चेष्टा करूंगा । परन्तु इसके पहले जन्म परम्परा कैसे निर्माण होती है, किन साधनों से निर्माण होती है आदि बातों का विचार करना ठीक होगा ।

जो लोग यह मानते हैं कि मानव-प्राणी को जन्म परम्परा भोगनी ही पड़ती है , वे लोग यह भी मानते हैं कि जन्म परम्परा का कारण वासना है । अब यह देखना है कि वासना कैसे पैदा होती है? वासना उत्पन्न होती है आशा से, आशा निर्माण होती है इच्छा से, इच्छा पैदा होती है कल्पना से और कल्पना पैदा होती है नेत्र से, संकल्प विकल्प मन से और वासना जीवात्मा से पैदा होती है ।

कल्पना

यह वह शक्ति है जो अंतःकरण में ऐसी वस्तुओं के स्वरूप उपस्थित करती है जो उस समय इंद्रियों के सन्मुख उपस्थित नहीं होती ।

-हिन्दी शब्दसागर, भाग १ ला, पृष्ठ ५०३

कल्पना (Idea) (इस पर चन्द्रमाा असर होता है) आप ने समुद्र या नदी देखी होगी । समुद्र के पानी की लहरें किनारों पर सावेग आ कर टकराती हैं और फेनिल-से तुषार-कण ऊपर की ओर उड़ते हुए दिखाई देते हैं । हमारे मन-रूपी समुद्र में भी इसी तरह विचार की तरंगे उठती हैं और विलीन होती हैं । इस को हम कल्पना कहते हैं । कभी-कभी यह कल्पना लघु लहरों के समान क्षणभंगुर भी होती है । उदाहरण के लिए 'अ' मार्ग में किसी कमनीय युवती के सौन्दर्य की मनोहारिता देख कर लुब्ध हो जाता है जिस के कारण उस के हृदय में विचार तरंगे उठती हैं ! कुछ समय के बाद अन्य कार्यों की झंझटों मे फंसने पर वह यह घटना भूल जाता है । ऊपर की कल्पना नेत्र से हुई ।

इच्छा

एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिस से किसी प्रकार के सुख की संभावना होती है। वेदान्त और सांख्य में इच्छा को मन का धर्म माना गया है। पर न्याय और वैशेषिक में इसे आत्मा का व्यापार माना गया है।

-**हिन्दी शब्दसागर**, भाग १ला, पृष्ठ २८५

इच्छा (Desire) (इस पर मंगल का असर होता है।) उपरोक्त उदाहरण का विस्तार करने से हम देखते हैं कि यदि 'अ' की नजरों में वह युवती निरन्तर आये तो 'अ' के मन की प्रवृत्ति उस युवती को पाने की अभिलाषा की ओर सावेग बढ़ती है। इसी को हम इच्छा या अभिलाषा कहते हैं। इस तरह कल्पना का रूपान्तर इच्छा में होता है।

आशा

अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय।

-**हिन्दी शब्दसागर**, भाग १ला, पृष्ठ २६९

आशा (To Covet) (इस पर गुरु का असर होता है।) उपरोक्त उदाहरण में हम यह देखते हैं कि 'अ' के मन में उस युवती को पाने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होती है। फिर वह उस युवती का रात दिन चिन्तन करने लगता हैं; लेकिन उसे अपनाने के लिये तनिक भी प्रयत्न नहीं करता।

वासना

किसी पूर्व स्थिति के जमे प्रभाव से उत्पन्न मानसिक दशा।

भावना संस्कार स्मृति हेतु

-**हिन्दी शब्दसागर**, भाग ६वाँ, पृष्ठ ३१२७

वासना (To long for) (इस पर शनि का प्रभाव होता है।) क्रमशः उस का हृदय उस स्त्री की केवल चिन्ता में ही सन्तोष न मान कर उसे पाने की चेष्टा भी करता है लेकिन उसकी लाख कोशिशें बेकार हो जाती

हैं। बेचारा कामज्वर से पीड़ित होता है। दुनिया की कोई भी बातें उसे दिलचस्प नहीं मालूम पड़तीं। रात दिन उस का दिल खोया-सा रहता है। आखिर परिणाम यह होता है कि बेचारा उस स्त्री को पाने की वासना ले कर ही आखिर साँस छोड़ता है। इस जन्म में उस स्त्री को पाने की विफल वासना अति प्रबल होने के कारण वह दूसरा जन्म लेता है और उस स्त्री को प्राप्त करता है। बलवती वासना का यही प्रभाव है। इसी वासना के कारण जन्म-मरण की परम्परा बँध-सी जाती है।

वासना का प्रभाव कितना प्रबल होता है यह सिद्ध करने के लिए मैं एक उदाहरण देता हूँ :- पुरुष और स्त्री समाज में एक विशिष्ट प्रकार की क्रिया अखंडित रीति से हजारों सालों से चली आ रही है। वह क्रिया है स्त्री का पुरुष होना और पुरुष का स्त्री होना। यह क्रिया बिना शस्त्रक्रिया (Operation) से हो रही है। इस बात का प्रमाण देने के लिये हम क्लीब पुरुष या स्त्री (Eunuch) का उदाहरण देते हैं। ये कैसे पैदा होते हैं, किसलिए पैदा होते हैं, इस में उन के माता पिता का कुछ दोष होता है अथवा नहीं ? आदि बातों का सूक्ष्म विचार करना जरूरी है। हमारे वेदान्तों में लिखा है कि यदि स्त्री और पुरुष के रज और वीर्य दोनों सम प्रमाण में गर्भाशय में प्रवेश करें तो क्लीब पैदा होते हैं। भोजवैद्य ने अपने ग्रंथ में हिजड़े कैसे पैदा होते हैं, यह दिया है -

"अयुग्मे स्त्री पुमान्युग्मे सन्ध्या यां तु नपुंसकम्।
शुक्राधिकत्वात्पुरुषः प्रमदो रजसोधिकात् ॥
शुक्र शोणितयोः साम्यात् तृतीया प्रकृति भवेत् ॥"

हम इन विचारों से सहमत नहीं हैं क्यों कि इस क्लीब के अन्य भाई या बहन पूर्णतः स्त्री या पुरुष होते है। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि माता के मन में किसी प्रकार का भय या आशंका होने से क्लीब पैदा होते है। इस मत के भी हम अनुकूल नहीं हैं। शरीर शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो दोनों माता-पिता में कुछ भी दोष नहीं है। ऐसा जान पड़ता है। फिर दोष किस का है ? पुनर्जन्म लेने वाले क्लीब का ही है।

अब हम क्लीब कैसे पैदा होते हैं इस का विचार करेंगे ।

किसी भी पूर्व पौरुषत्व को लेकर पुरुष देह में पैदा हुए । पुरुष का भावात्मक या धनात्मक (Positive) गुणधर्म है स्त्री को भोगना । पुरुष का स्त्री को भोगना तथा स्त्री का पुरुष को भोग देना ये दोनों गुणधर्म भावात्मक होते हैं । दूसरी एक बात निश्चित हो जाती है कि पुरुष का पौरुषत्व तथा स्त्री का स्त्रीत्व दोनों भावनात्मक हैं । ठीक इस के विपरीत पुरुष में स्त्री के गुणधर्म तथा स्त्री में पुरुष के गुणधर्म पाया जाना अभावात्मक या ऋणात्मक स्वभाव (Negative) के अन्तर्गत आता है । जब कोई भी पुरुष या स्त्री अपने भावात्मक स्वभाव को भूल कर अभावात्मक स्वभाव का हमेशा विचार करे तो उस का अर्थ यही होगा कि वह (पुरुष या स्त्री) अभावात्मक गुणधर्म की ओर बढ़ रहे हैं । कोई भी विवाहित पुरुष अपनी पत्नी से वार्तालाप करते समय यदि हमेशा यही कहे कि 'स्त्री का जन्म बहुत ही अच्छा होता है; किसी भी बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं होती' आदि - तो एक अवस्था ऐसी आती है कि स्त्री के जन्म पाने की अभिलाषा उस के हृदय में अपना पक्का घर बना लेती है । अपने जीवन के अन्त तक यदि उस के विचार इसी दिशा में बहते रहें तो मृत्यु के बाद वह स्त्री जन्म लेने के लिए जो पथ है उस का अनुसरण करने लगता है । फिर वह भविष्य में क्रमशः क्लीब का जन्म लेता है । क्लीब के जन्म का इतिहास इस प्रकार का है । इसी तरह फिर इच्छा, आशा इस क्रम से बढ़ते-बढ़ते उस में स्त्री जन्म लेने की प्रबल वासना पैदा होती है और अन्त में वह पूर्ण-रूपेण स्त्री जन्म लेता है । पूर्ण स्त्रीत्व को प्राप्त होते तक की अवधि में कई प्रकार के क्लीब के जन्म ऐसे पुरुष को लेने पड़ते हैं ।

(१) स्त्री-जन्म पाने की तीव्र अभिलाषा ले कर ही मृत्यु होने के बाद पुरुष पुनः पुरुष का जन्म लेता है । विवाह बद्ध हो कर स्त्री सें संभोग करता है । लेकिन स्त्री-संभोग से उसे आनन्द नहीं होता । उस का मन पुरुष संभोग के लिये लालायित रहता है । पुरुष संभोग (Sodomy) की यह इच्छा दिन प्रति दिन तीव्रतर होती जाती है । इस इच्छा की प्रबलता का अर्थ है कि पुरुषत्व के भावात्मक गुणधर्मों के एक कदम नीचे आता है । इस प्रकार के

पुरुष में पुरुष-बीजकोष (Male Overies) कम ताकतवर होते हैं और स्त्री बीजकोष (Female Overies) अधिक ताकतवर होते हैं। इस तरह की इच्छा रखते हुए उस की मृत्यु होती है।

(२) उपरिनिर्दिष्ट इच्छा ले कर ही पुनः वह पुरुष देह में जन्म लेता है और विवाह करता है। उस के मन में पुरुष-संभोग की इच्छा प्रबल होने के कारण तथा पुरुष-बीजकोष कम ताकतवर होने के कारण वह अपनी स्त्री को न तो संभोग सुख ही दे सकता है। न तो स्वयं ही संतुष्ट होता है। बल्कि कोई अन्य पुरुष उस की स्त्री से संभोग करे तो उस को देख कर ही उसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है। इस जन्म में पुरुष संभोग की इच्छा अधूरी ही रह जाती है और इसीलिये क्रमशः उग्र स्वरूप धारण करती जाती है। यह दूसरी अवस्था भावात्मक स्वभाव के एक कदम नीचे की है।

(३) इस अवस्था में वह फिर से पुरुष-देह में जन्म लेता है और विवाह करता है। लेकिन स्त्री को संभोग सुख पूर्णतः नहीं दे सकता इसीलिये अपने घर में ही किसी दूसरे युवक को अपनी स्त्री की संभोग इच्छा पूरी करने के लिए रख लेता है। रात्रि के समय एक ही शैय्या पर संभोग क्रिया चलती है जिसे देख कर वह मन ही मन आनन्द का अनुभव करता है। इस जन्म में उस की इच्छा 'आशा' में परिणत होती है। वह उस युवक को आलिंगन देता है, उस की गोद में बैठता है और पुरुष संभोग की उस की इच्छा भी अंशतः पूरी होती है। यह तीसरी अवस्था भावनात्मक स्वभाव (Positive Nature) के एक कदम नीचे की है।

(४) इस अवस्था में वह फिर से पुरुष देह धारण कर जन्म लेता है। परन्तु इस जन्म में उस का विवाह नहीं हो पाता, अतः उस का स्त्री से सम्बन्ध छूट जाता है। दिन भर और रात के दस बजे तक तो वह पूर्ण पुरुष-सा व्यवहार करता है किन्तु रात्रि के दस बजे के बाद वह निरुपयोगी बन जाता है और उसे पुरुष संभोग की आवश्यकता का अनुभव होता है। उस के शरीर में स्त्री की कोमलता व नाजनखरे आने लगते हैं। नितम्ब - भाग पुष्ट बनने लगता है। लिंग लम्बाई में केवल २ या २॥ अंगुली का ही होता है

वक्षस्थल उन्नत से जान पड़ते हैं और आवाज में स्त्री की मृदुता आ जाती है। पुरुष-बीजकोष (Male ovaries) बहुत ही कम ताकतवर होते हैं और स्त्री-बीजकोष (Famale overies) की ताकत बढ़ती जाती है। इस जन्म से शरीर में क्रमशः परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जाता है। यह चौथी अवस्था है और भावात्मक स्वभाव से एक कदम निम्न श्रेणी की है।

(५) इस अवस्था में वह फिर से पुरुष देह ले कर पैदा होता है। इस प्रकार के क्लीव सर्वसाधारण लोगों में काफी मशहूर होते है। इन के मूछें तो होती हैं किंतु स्त्री समान विपुल केशसंभार भी होता है तथा इन की चाल व नजाकत स्त्री की सी होती है। इन्हें हँसी, दिल्लगी और छेड़छाड़ बहुत प्रिय होती है। मनचले नौजवानों की टोली के सदैव साथ रहने में इन्हें बहुत आनन्द आता है। कभी-कभी स्त्री वेश धारण करने का इन्हें शौक होता है। इस प्रकार से स्त्री के संपूर्ण गुणधर्म इन में धीरे-धीरे आने लगते हैं (This is the bridge between male and female birth)। यह पाँचवी अवस्था होती है। जिस में वे भावात्मक स्वभाव का पूर्ण त्याग कर देता है। अभी तक ऐसी अवस्था थी कि देह पुरुष का होता था और विचार स्त्री के समान होते थे। उसी तरह मुख नीचे की ओर था किन्तु अब इस जन्म से मुँह स्त्री सदृश ऊपर की ओर हो जाता है। इस जन्म से पुरुष-संभोग की इच्छा तीव्रतर होती जाती है।

(६) इस अवस्थामें वह 'अर्धनारीनटेश्वर' - आधा शरीर स्त्री का व आधा पुरुष का - इस रूप में पैदा होता है। साड़ी पहिनने लगता है, लम्बे बाल रखता है। वक्षस्थल उन्नत होता है। लिंग लम्बाई में छोटा होता है। मूछे साफ करता है। शरीर में मृदुता व नाज नजाकत आ जाती है। आवाज स्त्री की सी जान पड़ती है। इस तरह पूर्ण स्त्री के लक्षण इस प्रकार के क्लीब में धीरे-धीरे आने लगते हैं। यह छठवीं अवस्था है जिस में वह स्त्री जन्म पाने के मार्ग की ओर एक कदम और आगे बढ़ता है। पुरूष संभोग की इच्छा अति तीव्र होती है। स्त्री-बीजकोष (Female ovaries) की ताकत बहुत ही बढ़ जाती है।

(७) इस अवस्थां में आधा पुरुष और आधी स्त्री का रूप ले कर वह पैदा होता है और उस में सम्पूर्ण स्त्री के गुणधर्म पाये जाते हैं। गांभीर्य आने लगता है तथा शरीर में मृदुता व खूबसूरती आने लगती है। वक्षस्थल स्पष्टतया उन्नत जान पड़ता है। मूंछों का लोप होता है और नयन तेजस्वी दिखाई देते हैं। गर्भाशय भी उत्पन्न होता है परन्तु उस में आकर्षण शक्ति नहीं होती। ऋतुस्त्राव भी शुरू हो जाता है। स्तनों मे दूध नहीं होता। पुरुष की गुप्तेंद्रिय भी लुप्त हो जाती है; केवल मूत्र द्वार बच जाता है। यह सातवीं अवस्था है और अभावात्मक स्वभाव (Negative Nature) की ओर यह दो कदम आगे बढ़ गई है। इस अवस्था में भी पुरूष संभोग की लालसा प्रबल रहती है।

(८) इस अवस्था में पुरुष का स्वरूप अदृश्य होकर उसकी जगह स्त्री का स्वरूप प्राप्त होता है जो कि सम्पूर्ण स्त्री का-सा प्रतीत होता है। स्तन का पूरा-पूरा विकास होता है लेकिन उस में दूध नहीं पैदा होता। योनि का भी पूर्ण विकास होता है। गर्भाशय की पूर्ण वृद्धि होती है लेकिन उस में आकर्षण शक्ति उत्पन्न नहीं होती जिस के कारण गर्भोत्पादक जन्तु नहीं रह पाते। नयन बहुत ही तेजस्वी होते हैं। सारे अवयवों का सम्पूर्णतया विकास होता है। फिर वह स्त्री विवाह कर लेती है। पुरूष-संभोग की इच्छा प्रबल बनी रहने के कारण एक पुरूष से संभोग की प्यास तृप्त नहीं होती इसलिये एक रात्रि में अनेक पुरुषों के साथ संभोग करने में उसे बहुत आनन्द आता है। इस के कारण शरीर में से एक विशिष्ट दुर्गंध आने लगती है। कभी-कभी मेंढो पर उलटे बाल होते हैं। कई पुरुषों से संभोग सुख लूटते-लूटते आयु के पैंतालीस साल बीत जाते हैं। फिर अन्य स्त्रियों के बाल-बच्चों को देख कर उस के भी हृदय में सन्तान की अभिलाषा जागृत होती है। यह आठवीं अवस्था है और अभावात्मक स्वभाव की ओर एक कदम आगे बढ़ गई है।

(९) इस अवस्था में सम्पूर्ण स्त्री-रूप प्राप्त होता है। जीवन के अन्त तक सन्तान की लालसा तीव्र बनी रहने के कारण वह पूर्णरूपेण प्रबल होती है किन्तु दैवी, दानवी व मानवी प्रयत्न करने पर भी सन्तान प्राप्त

कर ने की अभिलाषा पूरी नहीं हो पाती क्यों कि गर्भोत्पादक जन्तु निर्माण होते हैं किन्तु गर्भधारण करनेकी शक्ति उन में नहीं होती । अधिक पुरूष संभोग करने की इच्छा लुप्त होती है । इस के बाद सम्पूर्ण स्त्री का जन्म होता है । इस जन्म में स्त्री योनि के भावनात्मक स्वभाव (Positive nature of the female sex) का सम्पूर्ण विकास होता है । बाद में वह किसी पुरूष से विवाह कर लेती है और उसे सन्तान पैदा होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरुष को क्रम-क्रमसे स्त्री जन्म प्राप्त होता है । इसी रीति से स्त्री को भी क्रमानुसार पुरुष जन्म प्राप्त होता है । वात्सायन ने अपने कामसूत्र में क्लीब के दो प्रकार बतलाये गए हैं- " स्त्री रूपिणी पुरुषरूपिणी द्वेच" । इसके सिवाय एक तीसरे प्रकार के क्लीब होते हैं जिन्हें स्त्री और पुरुष दोनों की गुह्येन्द्रियाँ होतीं हैं । इन्हें अंग्रेजी में (Hermaphrodite) कहते हैं । मुसलमान समाज में कृत्रिम (Castrated) क्लीब (मेहरे) होते है ।

उपरोक्त विस्तृत चर्चा के कारण पाठकों को यह विदित हुआ होगा कि मनुष्य के हृदय में किस तरह क्रम-क्रम से कल्पना से इच्छा, इच्छा से आशा और आशा से वासना निर्माण होती है और इसी वासना के कारण किस प्रकार से जन्म परम्परा उत्पन्न होती है । जो पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के खिलाफ हैं, उनसे मेरा सवाल यही है कि क्लीब के जन्म का कारण क्या है, और पुरुष देह में सम्पूर्ण स्त्री के गुणधर्म पाये जाने का क्या कारण है?

शनि पूर्वजन्म का दिग्दर्शक है और चन्द्र पुनर्जन्म का ।

आगामी परिच्छेद में " द्वैताद्वैत विचार" के बारे में कुछ चर्चा करेंगे ।

* * *

परिच्छेद नववाँ

द्वैताद्वैत विचार (रवि-चंद्र युति और प्रतियोग)

"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्वयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥

अर्थात् " प्रकृति अर्थात मेरी त्रिगुणमयी माया और परमात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक संपूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान" ।

द्वैतवाद और अद्वैतवाद पर इस देश में काफी चर्वित-चर्वण हुआ है और फलतः कई पंथ बने हैं । कोई अद्वैतवादी हैं तो काई द्वैतवादी । इसकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाला परमेश्वर एक है या दो यह वाद किस प्रकार से प्रारम्भ हुआ यह दिग्दर्शित करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं । किसी गाँव मे एक बहुत ही अमीर आदमी रहता था। उस के एक पत्नी थी और एक लड़का । उस के घर में कई लोग आते-जाते थे । एक दिन एक आदमी उस के यहाँ जाकर देखता है कि घर में लड़का व उसकी माँ उपस्थित हैं । उसने विचार किया कि जब लड़का आँखों के सामने आता है तब उसकी माँ का अस्तित्व भी जान पड़ता है । घरबार चलाने के लिए पत्नी और लड़के की आवश्यता होती है । लड़के का अस्तित्व माँ-बाप के अस्तित्वो को सिद्ध करता है । इस प्रकार के विचार उस आदमी के मन में आये जिसका प्रतिबिम्ब, "ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं । जीवो ब्रह्म सनातनः" इस श्लोक में पड़ा हुआ है । यहाँ से ही द्वैतवाद का प्रारम्भ हुआ है । एक दूसरा आदमी उस अमीर के घर उस से मिलने के लिये गया तो उस ने भी लड़के को तथा उस की माँ को देखा । उस के भी मन में विचारों को गति मिली । वह अमीर के घर गया तो किस लिए गया? यदि वह घर के मालिक से मिलने गया तो फिर गृहस्वामिनी का विचार करना क्या युक्तिसंगत है ? सच पूछा

जाय तो घरका मालिक और उसकी पत्नी दोंनो एक ही हैं। इस तरह के विचार उस के मन में उठते रहे और उस ने अपने विचारों को "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। जीवो ब्रह्मैव नापरः" इस श्लोक में प्रकट किया जिस का अर्थ है ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या, ब्रह्म के सिवाय कोई दूसरा जीव नहीं है। वैसे देखा जाय तो दोनों का ही कहना कुछ अंश में सत्य ही है क्यों कि दोनों यह मानते हैं कि ब्रह्म सत्य है। विवादग्रस्त प्रश्न तो यह है कि माया सत्य है या असत्य, जीव सत्य है अथवा असत्य ? इस को स्पष्ट करने के लिए हम उदाहरण देते हैः —

आप ने ड़ीजलैन्टर्न या फिलिप्स का इलेक्ट्रिक बल्ब देखा ही होगा। जरा सोचिये तो लैन्टर्न प्रकाश के लिए है या प्रकाश लैन्टर्न के लिए है ? इस का स्पष्ट उत्तर यही है कि लैन्टर्न प्रकाश के लिए है न कि प्रकाश लैन्टर्न के लिए। इस प्रकार हम देखते है कि इस में 'प्रकाश' ही प्रधान है न कि लैन्टर्न। अब यहाँ निम्न प्रश्न उपस्थित होते है :-- (१) लैन्टर्न सत्य या असत्य ? (२) लैन्टर्न प्रथम या प्रकाश प्रथम ? लैन्टर्न का जो टिन का भाग चर्मचक्षुगोचर होता है वही मुझे सत्य जान पड़ता है।

मानवी शरीर के टुकड़े बना कर यदि उन को खूब पीसा जाये तो उन के Atom (अणु) और ions प्राप्त होते हैं। इन Atoms और ions `को पीसने से अन्त में केवल बिन्दु रह जाता है। सर ऑलीव्हर लॉज ने अपने ग्रंथमे होमिओपैथिक तत्त्व पर विचार प्रदर्शित करते हुए कहा है,"That the ultimate divisibility of matter does not stop at the atom but the atoms can be and are divisible even under influence of different coloured light and the fragments become electrons an ions which are radio-active and are basis of electric energy and as the number of broken atoms is increased the dynamic energy will be increased" हमारे वेदान्त में लिखा हैं- "**सर्व बिन्दुमय जगत।**" भूमिति शास्त्र (geometry) का पहला सिद्धांत है- Point has got no magnitude" बिन्दु ब्रह्म का एक हिस्सा है जो

कि तेजस्वी, प्रकाशमान और गतिमान होता है । इस सृष्टि में परिवर्तन होते-होते जब अन्त में वह बिन्दुमय हो जाती हैं तब हम उसे महाप्रलय कहते है । उदाहरण के लिए अपने शरीर को देखिये । अपना शरीर पैदा होता है और बाद में नष्ट हो जाता है ।

हम एक और उदाहरण देते हैं । आप ने किटसन लाईट का लैम्प देखा ही होगा । इस का प्रकाश अति शान्त तथा तेज होता है । इस के सम्मुख एक छोटा सा हैण्ड-लैम्प (Hand-lamp) लाकर रख दीजिये । अब आप क्या देखते हैं किं हैन्ड लैम्प का प्रकाश किटसन लाईट के प्रकाश में विलीन हो गया है । यद्यपि हैण्ड लैम्प के प्रकाश का कोई स्वतंत्र अस्तित्व जान नहीं पड़ता तो भी प्रकाश वहाँ खेलता ही रहता है । हैन्ड लैम्प को किसी दूसरे कमरे में ले जाकर रखने से कमरा प्रकाशमान हो जाता है । इसी प्रकार जीव और परमात्मा की भेंट होने पर जीव परमात्मा में उसी तरह विलीन होता है जिस तरह हैन्ड लैम्प का प्रकाश किटसन लाईट के प्रकाश में । यहाँ इस बात का ध्यान रहे कि जिस प्रकार हैण्ड लैम्प का प्रकाश किटसन लाईट के प्रकाश में विलीन हो कर भी अपना अस्तित्व खो नहीं देता उसी तरह परमात्मा में विलीन होने पर भी जीव अपना जीवत्व खो नहीं देता । अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हैण्ड लैम्प के प्रकाश को किटसन लाईट के प्रकाश में चिरविलीन करने के लिए किन साधनों से काम लिया जा सकता है ? इस के लिए एक ही सरल मार्ग है और वह यह है कि या तो बत्ती बुझा देना या हैन्ड लैम्प को पूरी तरह से नष्ट कर देना । आत्मज्ञान के द्वारा ब्रह्मस्थिति व विदेही स्थिति प्राप्त होने पर भी हम देखते हैं कि आत्मा परमात्मा में पूर्णतः विलीन नहीं होने पाती जिस का कारण शरीर का अस्तित्व होता है । इस अस्तित्व को पूर्णतः मिटा देने पर आत्मा परमात्मा में पूर्णतः विलीन होता है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि लैन्टर्न प्रथम या प्रकाश ? वैसे देखा जाय तो लैन्टर्न पहले बनाया जाता है, फिर उस में तेल डाल कर जलाया जाता है और उस से प्रकाश उत्पन्न होता है । इस दृष्टि से लैन्टर्न ही प्रथम है ऐसा कहा जा सकता है । यही द्वैतवाद है । हम एक और उदाहरण

देते हैं :- कोई भी नव विवाहित युवक और युवती जब रात्रि के समय अपने कमरे में परस्पर प्रगाढ़ आलिंगन करते हैं; तब उन के मन की क्या अवस्था होती है ? दोनों के मन एक हो जाते है । वाणी मौन हो जाती है और श्वास से श्वास मिलते हैं । इस समय पत्नी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता । वस्तुतः स्त्री और पुरुष दोनों के गुणधर्म भिन्न-भिन्न होते हैं । पुरुष भोक्ता है और स्त्री भोग्य है । इतना होते हुए भी रात्रि एकान्त में जब दोनों परस्पर मिलते हैं तब उनका स्वरूप अभिन्न-सा जान पड़ता है । स्त्री माया है, अतः माया का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । इस का कारण यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों के शरीर, आत्मा व मन एक ही तत्व के बने हुए हैं । यही अद्वैतवाद है । इस सृष्टि की उत्पत्ति का मूलभूत आधार बिन्दु है । कई बिन्दुओं को मिल कर परमाणु से परमाणु बनता है और अणुरेणु परमाणु से पदार्थ निर्माण होता है । हमारे मांसपिंड से बने हुए शरीर का मूलभूत आधार रज और वीर्य के दो बिन्दु है । उसी प्रकार इस सृष्टि की उत्पत्ति दो बिन्दुओं से हुई है । गर्भाशय में बिन्दु प्रवेश करने के बाद उस से मांसपिंड बनता है और प्रति माह बढ़ता जाता है । मेरी ऐसी धारणा है कि गर्भ बढ़ने की क्रिया के पीछे चैतन्यशक्ति या परमात्मा है । सृष्टि निर्माण होने के पहले पुरुष की उत्पत्ति हुई है और इस पुरुष के वीर्य के कुछ बिन्दुओं से सृष्टि निर्माण हुई है । इसको स्पष्ट करने के लिए मैं एक लौकिक दृष्टांत देता हूँ । मेरा जन्म इस घर में हुआ है । युवावस्था प्राप्त होने पर मैंने विवाह कर लिया और दांपत्य जीवन बिताना शुरू कर दिया । युवावस्था तक साथ दे कर मेरी पत्नी मेरी वृद्धावस्था में मुझे छोड़कर चली जाती है । मैं पहले जैसा अकेला था, वैसा ही अब भी रह गया हूँ । मेरी स्त्री मेरी युवावस्था और वृद्धावस्था के बीच में मेरे जीवन में आई और कुछ काल तक जीवन का साथ देकर चल बसी । इसी प्रकार सब से पहले ब्रह्म ही था और अंत में वह अकेला ही रहनेवाला है । यथा वृक्ष निर्माण होने के लिए सर्वप्रथम जमीन में फल के बीज डालते हैं । बाद में वृक्ष बढ़ता है और उस को फल आते हैं । यहाँ पर हम यह देखते हैं कि आदि और अन्त में 'फल' ही है । वृक्ष कुछ काल तक अदृश्य हो जाता है किन्तु फल दृश्य ही रहता है । इसी तरह माया और जीव ब्रह्म के बीच

में होते हैं। इस का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इस सृष्टि में जो सत्य हैं ऐसा हमें भास होता है उस का कारण हमारे चर्मचक्षु हैं ज्ञान दृष्टि से देखने से सभी बातें असत्य जान पड़ती हैं। इसीलिए आद्य आचार्य शंकराचार्य जी ने सृष्टि का ज्ञान दृष्टि से अवलोकन कर लिखा है- **''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।''** एक दूसरे द्वैतवादी आचार्य ने चर्मचक्षु से सृष्टि का अवलोकन कर लिखा है **''ब्रह्म सत्यं जगत सत्यं,जीवो ब्रह्म सनातनः''**। माना कि माया स्वतंत्र है पर वह परब्रह्म से प्रकाशित है। जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है इस का एक ठोस उदाहरण देता हूँ।

जीवात्मा और परमात्मा एक ही स्वरूप हैं और एक रूप है ऐसा रह कर जीवात्मा परमात्मा से अलग है ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा क्यों प्रतीत होता है इस का मैं एक उदाहरण देता हूँ। आप ने बरफ देखा है। यह क्या चीज है? यह पानी से बनती है। यह दो प्रकारसे बनती है। एक नैसर्गिक और दूसरे कृत्रिम। नैसर्गिक बरफ हिमालय के पहाड़ों पर बनता है और कभी-कभी आकाश से जलधारा वर्षा होती है उस वक्त जल धारा में से बरफ गिरती है। दूसरे कृत्रिम बरफ जल को यंत्र से बहुत ठंडी हवा बना कर उस ठंडी हवा से बरफ बनाते है। इन दोनों प्रकार की बरफ संस्कार से होती है। प्रथम प्रकार मे नैसर्गिक संस्कार उन पर होता है और दूसरे प्रकार मे बरफ यांत्रिकी संस्कार से बनती है। इस में महत्व की बात तो है संस्कार होने की। बरफ यह पानी की चीज होते हुए भी पानी से अलग मालूम होती है। आप एक कांच का गिलास ले लीजिये। उस में पानी भर लें और उस पानी में बरफ का टुकड़ा डाल दीजिये और ध्यान से देखिए कि पानी में वह बरफ का टुकडा नहीं डूबता। पाठक गण! आप थोड़ा सा विचार करके देखिये कि बरफ असली पानी की होते हुए भी पानी में डूबता नहीं, पानी से अलग है ऐसी नजर आती है कि बरफ संस्कार से बनती हैं। इनमें प्रधान लक्षण ''संस्कार'' है और आप विचार करें तो यह मालूम हो जाता है कि असली पानी की बनी हुई चीज पानी में डूबती नहीं वस्तुतः पानी और बरफ दोनों एक ही चीज है। एक ही चीज होकर भी

अलग सी मालूम होती है। ऐसा ही जीवात्मा परमात्मा का अंश रह कर भी हमें अलग मालूम होता है। परमात्मा में डूबता नहीं लेकिन परमात्मा और जीवात्मा एक ही हैं फिर भी बरफ के मुताबिक जीवात्मा है। कारण यह है कि अनेक जन्म जन्मान्तरों का बरफ की तरह इस पर कल्पना वासना के "**संस्कार**"का असर रहता है, इसलिए जीवात्मा और परमात्मा हमें अलग मालूम होता है। इसी कारणं भारतवर्ष में अज्ञान मूल कारण होने से द्वैताद्वैत का झगड़ा शुरू हो गया लेकिन सारा संसार एक रहने से अद्वैत सिद्ध है यह स्पष्टतया मालूम होता है।

एक बार प्रभु रामचंद्र जी ने श्री हनुमान जी से पूछा-हे पवनसुत "आप कौन हैं ?" हनुमान जी ने उत्तर दिया "देह दृष्टया तु दासोऽहं। जीव दृष्टया त्वदंश के। आत्मदृष्टया त्वमेवाहम्। इति निश्चितम् मतमुत्तम्।" हमारा हिन्दू वेदान्त केसरी भी यही गर्जना कर रहा है कि अद्वैत ही सत्य है और तुम ब्रह्म हो।

खगोलशास्त्र द्वारा (Astronomically) यह बात सिद्ध हो चुकी है कि चन्द्र की उत्पत्ति रवि से हुई है। रवि चंद्र युति अमावस्या अद्वैत के निदर्शक हैं एवं रविचंद्र प्रतियोग पूर्णिमा द्वैत के।

अगले परिच्छेद में हम "**ग्रहयोनि भेदाध्याय**" की चर्चा करेंगे।

* * *

परिच्छेद दसवाँ

ग्रहयोनि भेदाध्याय

रवि (Prajapathis Marichi) (Universal Father)- यह काल पुरुष की आत्मा है । सर्व चराचर वस्तुओं में तथा अणुरेणु परमाणु से भी परमाणु में (Electrons और ions से भी) भरा हुआ है । स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि का आधार है । अचिंत्य, अगोचर, वर्ण अत्यंत तेजस्वी ''सूर्य कोटि समप्रभः'', शान्त, नींबू के वर्ण के सदृश, पुरुष तत्व, इस सृष्टि को गति देनेवाला, ब्रह्मपति, उत्पत्तिकर्ता, बीज ।

रवि में दो प्रकार का तेज होता है- एक दृश्य और दूसरा अदृश्य । प्रातःकाल से लेकर संध्याकाल तक अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक हमें जो तेज दिखाई देता है व हमारे शरीर को जिस की ऊष्णता जान पड़ती है वह रवि का पहले प्रकार का दृश्य तेज है । रवि का दूसरा तेज अदृश्य है और भासमान नहीं है । हमारे हिन्दू धर्म ने इस अदृश्य तेज को देखने के लिए वेदान्त एवं योगमार्ग दर्शाया है । पाश्चात्य देशों मे इस तेजको देखने के लिए कोई भी मार्ग नहीं बतलाया गया । सन १९०० ईसवी में हॉलैन्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. हेस (Dr. Hess) महोदय को प्रयोग के सिलसिले में यह ज्ञात हुआ कि आकाश से किरणें आती हैं ।१९१० साल तक इस दिशा में अधिक खोज करने पर उसने यह सिद्ध किया कि ये किरणें (Cosmic rays) रवि से आती हैं । परन्तु अमेरिका के जगप्रसिद्ध नोबेल प्राईज प्राप्त महान वैज्ञानिक तथा खगोलतज्ञ डॉ. मिलीकन (Dr. Milikan) ने डॉ. हेस के सिद्धान्त का खन्डन करते हुए अपने The natural History of the Cosmic Rays नामक ग्रन्थ में यह कहा है कि ''जब यह तेज रवि से आता है तब फिर रात के समय नहीं आना चाहिये । जब यह तेज

रात्रि को भी दिखाई देता है तो यह अवश्य ही किसी दूसरे स्थान से आता है। यह स्थान आकाशगंगा है '' परन्तु डॉक्टर साहब यहाँ इस बात को भूलते हैं कि रात्रि को रवि नष्ट नहीं होता बल्कि कहीं अदृश्य हो जाता है। यह तेज परब्रह्म है जिस के जानने में पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी तक असफल रहे है।"Alvidas" नामक ज्योतिषी ने अपने "Esoteric Astrology" नामक ग्रन्थ में लिखा है। "Inner rays of Sun we cannot see by our naked eyes"

चन्द्रअत्रि (Atri, Universal Mother) प्राचीन शास्त्रकारों ने काल पुरुष के राज्य में चंद्र को रानी का पद दिया हैं वेदान्त में माया परब्रह्म की पत्नी मानी गई है। स्त्री स्वयं प्रकाशी न हो कर पर प्रकाशी होती है। पति से प्रकाश और तेज लेकर दूसरों को प्रकाश देती है। चंद्र की क्षय व वृद्धि, उसी तरह एक दिन का पूर्ण होना और एक दिन सम्पूर्ण अस्त होना दृश्य सृष्टि में ही जान पड़ते हैं। चंद्र अत्यंत चंचल और जीव सृष्टि का पालन करनेवाला ग्रह है। चन्द्र को वेदान्त में माया कहते हैं। यह ग्रह मन भी कहलाता है। स्त्री तत्व का ग्रह है और रजोगुणी है।

मंगल (Kritu ऋतु) शास्त्रकारों ने मंगल को कालपुरुष के राज्य में सेनानायक के अधिकार दिये हैं। सेनानायक राष्ट्र की शक्ति का आधार होता है। मानव प्राणी के शरीर में भी ताकत होती है जिस से वह निरोगी, दीर्घायुषी तथा निर्भय होता है। जिस प्रकार से मनुष्य के शरीर में शक्ति होती है उसी प्रकार से इस दृश्यमान सृष्टि में भी अपूर्व शक्ति होती है। शक्ति के बिना अखिल सृष्टि हलचल नहीं कर सकती। इस का अर्थ यही है कि जहाँ शक्ति होती है वहाँ मंगल का अस्तित्व होता है। मंगल पुरुष तत्व सत्त्वगुण माना गया है। आसन, प्राणायाम, मुद्रादि करने के लिए इस शक्ति का काफी उपयोग होता है। मंगल मानव-प्राणी का मंगल करनेवाला होता है।

Desire causes all manifestation for without desire no manifestation in matter would be possible. The centre of desire is generation. Mars has been called the planet of generation, the god of Life as expressed in matter

and it is exactly this same generative force upturned which is the creative process of spiritual life.

Mars mighty god of generation, mighty monarch of power! Life that is mortal, and life that is immoratal, are not they both brought about by Desire!

But in the physical world Mars typifies the great principal of desire and it is mainly from his kingdom the elemental essence is drawn that builds up the desire-body sometimes called the 'astral' body, which we each use.

The moving energy and force of the world is brought about by Mars. He is the god of Action, Life and Motion, as distinguished from reflection, thought of reflection thought or stillness. He is particulary the agent for transmitting animal life, being the god of generation; while the instinctual consciousness, as manifested apart from any of the processes of thought comes particularly under his vibration, thus force, emotion and movement are all martial attributes.

That positive will, giving the power of leadersip and rulerlship which must be at the head of things, comes through Mars; that superb courage which can face death with impunity, that fears no foe, that ever goes forward, self-reliant, independent, confident, is given by Mars.

It is by desire we rise, it is by desire we go forward; indeed, evolution would not be possible at all without the infulence of desire; it is for those who are students of the mystical side of Astrology, to be careful what they desire for desire brings about its own fulfilment.

बुध (Vastistha) - प्राचीन शास्त्रारकारों ने कालपुरुष के राज्य में बुध को युवराज पद पर नियुक्त किया है। रवि और चंद्र के बीच यह स्थिति

होता है। पूर्वजन्मों के कर्मों को पुनर्जन्म में भोगने के लिए शरीर तैयार करता है। "बुद्धिकर्मानुसारिणी" योगी के हृदय में इस का निश्चयात्मक निवास होता है। इस बुद्धि के प्रभाव से मनुष्य ईश्वर पद को पाता है। पुरुष तत्त्व नपुंसक नहीं।

गुरु (आंगिरस)- शास्त्रकारों ने काल पुरुष के राज्य में गुरु को मंत्रीपद दिया है। गुरु शब्द का अर्थ इस प्रकार का है-गु=अँधेरा (अज्ञान) रू = प्रकाश (ज्ञान)। जिस तरह सूरज अंधेरा विच्छिन्न कर प्रकाश फैलाता है, उसी तरह गुरु हमारे हृदय से अज्ञान दूर कर ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाते हैं। माया और ब्रह्म इन कें मध्य में इस की स्थिति है। मनुष्य प्राणी के मन में विवेक रूप में निवास करता है। अविद्या अस्मिता इत्यादि से वेष्टित है। गुरु विज्ञानमय कोष का अधिकारी है। पुरूषतत्व, यह ग्रह सम्पति देनेवाला नहीं है।

शुक्र (भृगु) - शास्त्रकारों ने कालपुरुष के राज्य में शुक्र को मंत्रीपद पर नियुक्त किया है। परंतु वेदान्त शास्त्र में योगियों के लिए यह ग्रह विघ्नकर्ता माना गया है। जब योगी प्रत्याहार की अवस्था को प्राप्त होता है तब यह ग्रह योगी को अष्ट सिद्धि या स्त्री के भुलावें में डाल कर योगविन्मुख कर उन सांसारिक झगड़ों मे फँसाना चाहता है लेकिन यदि योगी सिद्धि या स्त्री के मोहजाल में फंसने से खुद को बचा लेता है तो यही ग्रह योग का सच्चा आनन्द देनेवाला होता है। शुक्र ध्यानावस्था का कारक है तथा आनन्द कोष का अधिकारी है। शुक्र का मूलस्वरूप योगी, तपस्वी, ज्ञानी, विषय त्यागी, आनन्दस्वरूप तथा राजयोगी है। उसे स्त्री स्वरूप माना गया है।

शनि (नारद) - शास्त्रकारों ने काल पुरुष के राज्य में शनि को दास नियुक्त किया है। फिर योगी के हृदय में विवेक को रूपमें रह कर सब मोहजाल से दूर रखनेवाला अदृश्य गुरु है। रात्रिके अँधेरे में दूरबीन के जरिये आकाश की ओर दृष्टि डालने से यह ग्रह ईश्वर के लिंगके समान दृग्गोचर होता है। यद्यपि शनि को रवि का पुत्र माना गया है; उस में रवि के गुणधर्म विद्यमान नहीं है। केवल एक ही साधर्म्य है, वह यह कि जिस प्रकार रवि

मंगल आदि ग्रह उपग्रह हैं, उसी प्रकार शनि के भी नौ उपग्रह हैं। शनि को काल, यम शंकर आदि नाम दिये गयें हैं। सृष्टि का प्रलय कारक, नई सृष्टि निर्माण करनेवाला रुद्र है। जिस प्रकार से रवि उत्पत्ति कर्त्ता है और चन्द्र सृष्टि का पालन कर्ता उसी तरह शनि संहारकर्ता है। पुरुषतत्व का ग्रह है, नपुंसक नही।

राहू - (पुलस्त्य) प्राचीन शास्त्रकारों ने कालपुरुष के राज्य में राहू को कोई भी स्थान नहीं दिया हैं। परन्तु आचार्य वराहमिहिर के बाद जो आचार्य हुए हैं उन्हों ने इस विषय की ओर कुछ ध्यान दिया है। हमने राहू को कालपुरुष के राज्य में बड़े ही महत्व का स्थान दिया है। वेदान्त मे ॐ (ओंकार) में जो सिर पर अर्धमात्रा है वही मेरी राय में राहू का स्थान है। सृष्टि में प्रकृति और पुरुष दोनों निर्माण होने के पहले "जो कुछ नहीं है वह महाब्रह्म" इस महाब्रह्म से प्रकृति और पुरुष निर्माण हुए। जब कभी अर्धचन्द्राकृति चन्द्र ग्रहण होता है। तब हमें जो ग्रहण दिखाई देता है वह अर्धमात्रा के समान होता है। इस का अर्थ यही है कि रवि और चंद्र दोनों को निर्माण कर्ता राहू है। यथा-

श्री मंत्रेश्वर जी ने अपनी 'फलदीपिका' में प्रस्तुत ग्रह का स्वरूप स्त्री स्वरूप बतलाया है और श्री विलियम लिलि (William Lily) ने इसे पुरुष ग्रह माना है । हम भी इसे पुरुषग्रह मानते हैं।

नेपच्यून-- यह एक बिल्कुल ही नया ग्रह है। इस के स्वरूप का सम्पूर्ण आविष्कार पाश्चात्त्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। मेरी समझ में यह ग्रह अति मोहक, गोलाकर, स्त्रीसदृश, मृदु शरीर, नेत्र मदान्ध, मुख पर गूढ़ हास्य, वाणी में मिठास एवं गति वृषभ के समान होती है आचार्य वराहमिहिर ने अपने 'बृहज्जातक' में वृषभ राशि का जो वर्णन किया है वह इस ग्रह को लागू होता है। प्रस्तुत ग्रह लिंग, शरीर और मन पर अधिक प्रभाव डालता है।

The best looking specimens have better proportions clear complexious, dimples instead of wrinkles and a golden glems as of sunshine in their hair but actual

beauty among the sons and daughters of Neptune is very rare.

नेपच्यून संसार का नाश करने का प्रयत्न करता है और स्त्री सुख नहीं देता ।

मैने यहाँ हर्षल के गुणधर्म अनुभव के अभाव में नहीं दियें हैं ।

ग्रहों का मूल नैसर्गिक स्वभाव

रवि-अति तेजस्वी, अति ऊष्ण तेज बाहर फेंकता है । इस तेज में सभी दबते हैं । जैसे तेज बाहर फेंकता है वैसे ही त्यागी होता है । इसलिए रवि में आकुंचन और प्रसारण (Contraction and expansion) दोनों ही गुणधर्म मौजूद होते हैं । आकाश में रवि का उदयास्त का कार्य प्रतिदिन नियमपूर्वक चल रहा है । कर्मयोगी अर्थात् कर्म के फल की अपेक्षा या अभिलाषा मन में नहीं रखता । धैर्यशाली, उच्च विचारों और भावनाओं से भरा हुआ स्पष्ट और निर्भीक वक्ता, यशस्वी, गंभीर, अपने बुद्धिसामर्थ्य से दूसरों का पराभव करनेवाला, सामाजिक कार्यों में निपुण निःस्वार्थी, लोकहितदक्ष, दिखने में कठोर किन्तु हितैषी, ऐहिक और प्रापंचिक बातों के प्रति उदासीन, परोपकारी मर्मज्ञ स्थिर, कल्पक, दूरदर्शी, व्यवहारचतुर, आचारशुद्ध सुधारक (Reformer); हृदय दया और प्रेम से ओतप्रोत होता है - माया मोह के परे, ये सब रवि के नैसर्गिक स्वभाव गुणधर्म हैं । रवि के अमल में पैदा होनेवाले साधु सत्पुरुषों ने कोई भी पंथ नहीं चलाया है बल्कि जंगल में डेरा डाल कर एकान्त कुटीर में जीवन बिताया है और मुश्किल से एकाध शिष्य बनाकर स्वयं समाधिस्थ हुए हैं ।

चन्द्र - शुक्ल प्रतिपदा से ले कर पूर्णिमा तक चन्द्र एक-एक कला से बढ़ता जाता है यहाँ तक कि पूर्णिमा को सोलहों कलाओं से परिपूर्ण होता है । इसी तरह कृष्ण प्रतिपदा से ले कर अमावस्या तक चन्द्र एक-एक कला से क्षीण होता जाता है यहाँ तक कि अमावस्या को पूर्णरूपेण अदृश्य रहता है । शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अष्टमी तक चन्द्र अति तेजस्वी दिखाई देता है; अष्टमी से ले कर कृष्ण द्वितीया तक थोड़ा निष्प्रभ होता

है। पूर्णिमा का पूर्णबिम्ब होते हुए भी चन्द निष्प्रभ दिखलाई देता है। कृष्ण द्वितीया से अमावास्या तक पुनः थोड़ा-थोड़ा तेजस्वी दिखाई देता है।

पालन (Preserve) और नाश (Dissolve) ये दोनों गुणधर्म इस ग्रह में पाये जाते हैं। माया, मोह, चंचलता,अविचार, विलासवृत्ति, द्रव्याभिलाषा, प्रापंचिक आसक्ति, आत्मविश्वास, स्त्री लम्पट, कर्तृत्वहीन, स्वार्थी, अस्थिरता, कल्पनाएँ, ऊंची किन्तु व्यवहार में ला सकने में असमर्थ, अविश्वसनीय (Unreliable),मृदु, सौम्य व मीठी वाणी, बर्ताव मनःपूर्त समाचरेत्, अनियमित, उदार, अपनी डींग हांकनेवाला, बेपरवाह, कोई भी कार्य अधूरा करना, आदि इस ग्रह के नैसर्गिक स्वभाव हैं। जिन साधुसत्पुरुषो पर चन्द्रका प्रभाव रहता है वे बहुत ही दयालु, सेवातत्पर,परोपकारी व प्रेमी होते है। ये कुछ क्षुद्र सिद्धियाँ प्राप्त कर मठ बाँधकर अपनी शिष्य परम्परा बढ़ाते हैं। कालान्तर से ये कनक और कामिनी के मोहजल मे फँसकर 'अतो भ्रष्टः। ततो भ्रष्टः' होते हैं। रवि, शनि, राहू इन के प्रभाव में जो सत्पुरुष पैदा होते हैं वे ही परमार्थ मार्ग में पूर्णत्व को पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। चन्द्र·बुध, गुरु, शुक्र, इन ग्रहों के प्रभाव में जो जन्म ले कर परमार्थ मार्ग की ओर जाते हैं वे कनक और कामिनी के मोहजाल में फँसकर परमार्थ मार्ग से च्युत होते हैं। पूर्णावस्था को पहुँचने के पहले ही वृद्धावस्था में अधःपतन होता है। स्वर्गीय श्रीमंत नारायण महाराज केडगाँवकर और हुबली के स्वर्गीय सिद्धारूढ़ स्वामी महाराज।

मंगल- शास्त्रकारों ने इस ग्रह का वर्णन अग्नि के समान उष्ण व रूक्ष ऐसा किया है। इसीलिए इस का स्वभाव उग्र, क्रोधी, साहसी, मनःपूतं समाचरेत्' दुराग्रही, दुनिया में न किसी की परवाह करता है, न किसी से दबता है। दीर्घ प्रयत्नवादी, उदार, द्रव्य की अभिलाषा बिल्कुल नहीं होती। बल्कि द्रव्य मन चाहे खर्च करता है। अधिक सहनशीलता, धर्म से प्रेम नहीं होता, व्यवहार में सच्चा, साफ दिल किन्तु बर्ताव में कड़ा, वाणी में कटुता, त्यागी निष्कपट, अनाथों का संरक्षण करनेवाला, स्नेह के योग्य, परोपकारी, संस्थाओं का स्थापन करना आदि इस ग्रह के नैसर्गिक स्वभाव हैं। इस ग्रह के प्रभाव में जो साधु

सत्पुरुष जन्म लेते हैं वे क्रोधी, अभिशाप देने वाले होते हैं। लोग इन से बहुत ही डरते हैं। लेकिन लोग यह नहीं जानते कि यद्यपि इन का बर्ताव तीखा होता है तो भी इनके हृदय में सारी मनुष्य जाति का कल्याण करने की प्रबल भावना होती है। ये आपदाओं व विपदाओं में लोगों की सहायता करने में तत्पर अपने प्राणों का मोल देकर अबलाओं के शील का संरक्षण करने वाले और स्वदेशाभिमानी होते हैं। इस ग्रह के प्रभाव से महाराष्ट्र के महान सत्पुरुष श्री समर्थ रामदास, बंगाल के स्वामी विवेकानन्द, पंजाब के गुरु नानक, बंदाबीरं बैरागी, गुरु तेजसिंह, गुरु गोविंदसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती, कलकत्ता के बाबा भारती, स्वामी सत्यदेव, स्वामी श्रद्धानन्द और- ब्रह्मीभूत विद्यानंद महाराज बेलापूरकर आदि पैदा हुए हैं।

बुध- सब ग्रहों मे यह ग्रह छोटा माना गया है। अपनी बुद्धि पर इस का अमल होता है। अँग्रेज लोग इसको 'Winged messenger of the God कहते हैं। उन्हों ने इस का स्वरूप इस प्रकार का दिया है :- "एक नन्हा २-३ वर्ष का मनोहर बालक है और उस को दो पंख हैं। उस के पास एक देवता बैठा है जिस के कान में वह परमेश्वर का संदेश कह रहा है। उस के हाथ में धनुष्यबाण है।"

आप ने रेडियो सुना ही होगा? दिल्ली या बम्बई में गवैया माइक्रोफोन के सामने बैठ कर गाता है। और आप अपने कमरे में बैठे-बैठे उस का गीत सुनते हैं। आकाश में विद्युत्कण (Electrons) होते हैं जो गतिशील होते हैं। उन प्रवाहों में (currents) आवाज ग्रहण कर वह आवाज दुनिया के हर एक कोने में पहुँचाने की शक्ति होती है। पुराणों में "आकाशवाणी" का उल्लेख पाया जाता है। सिद्ध पुरुष तपोबल के द्वारा शरीर और वाणी में विद्युत शक्ति उत्पन्न कर उस का तेज बढ़ाते थे। ऐसे सिद्ध पुरुष अपनी कुटिया में बैठे-बैठे आपस में वार्तालाप कर सकते थे। इन के मुख से जो वाणी आवाज के रूप से निकलती थी वह आकाश में बिजली के प्रवाह में मिल कर ईप्सित स्थान पर पहुँचती थी और फिर उस का परिस्फोट होता था। इस

आकाशवाणी में और आधुनिकं रेडियो में कोई अन्तर नहीं है। बुध आकाश में बिजली के प्रवाह से सन्देश पहुँचाने का कार्य करता है। आकाश में दूरबीन लगा कर बुध को देखने से हमें दिखाई देता है कि चन्द्र की तरह बुध की भी कलाएँ होती हैं जिनकी क्षय और वृद्धि होती है। मनुष्यों में भी किसी की बुद्धि प्रखर होती है और किसी की क्षीण। जितनी अधिक कलाओं से मनुष्य युक्त होता है उतनी ही उस की बुद्धि भी चंचल और कुशाग्र होती है। इस ग्रह के नैसर्गिक स्वभाव निम्नलिखित हैं - सदा प्रफुल्लित, मुख पर हास्य,विनोदयुक्त वचन, वाक्चतुर, सदा आनंदी, उत्साही, व्यवहारकुशल और सरल, चालाक, बुद्धिमान, स्वभाव से शान्त, सौम्य किन्तु अहंकारी, दूसरों पर विश्वास रखनेवाले, घरबार की ओर से उदासीन, अध्यात्म की ओर विशेष झुकाव। इस ग्रह के प्रभाव से जो साधु सत्पुरुष जन्म लेते हैं वे पहले क्षुद्र सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और लोंगो को फंसाकर पैसे इकठ्ठा करते हैं और खा-पीकर मौज उड़ाते हैं । वाक्प्रचार होने के कारण वेदान्त पर प्रवचन और भाषण देते रहते हैं। ये नाममात्र के ही गुरु होते है।ये शिष्य बनाते जरूर हैं किन्तु इन से किसी का भी कल्याण नहीं हो पाता।

गुरु- सब ग्रहों में गुरु बड़ा ग्रह है। यही कारण है कि श्रेष्ठ व ज्ञानी इस अर्थ में हमेशा गुरु शब्द का प्रयोग किया जाता है। गुरु शब्द में दो अक्षर है एक "गु" और दूसरा"रु"। "गु" का अर्थ है अँधेरा या अज्ञान और"रु" का अर्थ है प्रकाश या ज्ञान, गुरु उसे कहते हैं जो कि हृदयस्थ ईश्वर के विषय में हमारा अज्ञान दूर कर हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं, किस जगह जानेवालें हैं तथा हमारे कर्तव्य कर्म क्या हैं आदि प्रश्नों पर प्रकाश डालता है। अंग्रेजी में गुरु को Divin Mother या Higher Moon कहते हैं। स्कूल कॉलेज में पढ़ाने वाले अध्यापकों की भी 'गुरु' कहा जाता है। लेकिन ये लोग ऐहिक विषय का ज्ञान प्रदान करते है। सद्गुरु उन्हें गुह्य गूढ ज्ञान प्रदान करते हैं। इन का शिष्यों पर जो प्रेम होता है। वह निष्काम होता है। इसीलिए गुरु के प्रेम को सबसे महत्व का स्थान है। गुरु का अपने शिष्यों पर किस प्रकार का प्रेम होना चाहिये इस विषय पर स्वामी विवेकानन्द जी ने ""My Master" नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसे हर एक को पढ़ना चाहिये।

इस ग्रह का नैसर्गिक स्वभाव परमेश्वर विषयक ज्ञान देना है। शिक्षक और प्राध्यापक भी इसी ग्रह के प्रभाव में आते है। बाहर से रुक्ष किन्तु भीतर से अतिकोमल, बाहरी रहनसहन मामूली किन्तु बुद्धि कुशाग्र, दिखनें में नास्तिक किन्तु ह्रदय भक्तिरस से पूर्ण, पैसै के लिए हाथ फैलाने वाले किन्तु पूर्ण निर्लोभी, संसार में व्यावहारिक, जीवन में विचित्र बर्ताव लेकिन व्यवहार कुशल, जितना विषयी उतना ही विरागी; इस प्रकार के परस्पर विरोधी स्वभाव गुण इस ग्रह में पाये जाते है।

गुरु की आवश्यकता क्यों प्रतीत होती है और 'गुरुकृपा' इस का क्या अर्थ होता है? तपोबल के कारण प्राप्त हुए आत्मिक बल से इन में एक प्रकार की विद्युत शक्ति उत्पन्न होती है। यह शक्ति इन के हाथों में खेलती रहती है। गुरु का वरदहस्त याने क्या? आत्मज्ञान की खोज में कोई किसी देवस्थान में ईश सेवा करते रहते हैं। परन्तु वह देवता उसे प्रत्यक्ष दर्शन न दे कर किसी सत्पुरुष को आदेश देता है कि "मैं मेरे सेवक को भेज रहा हूँ उसको तू ज्ञान दे"। जब गुरू को ऐसे सेवक को ज्ञान देना पडता है तब वह उस के सिर पर अपना वरदहस्त रखता है और कानों में ॐ 'तत्सत' कहता हैं। हम ने ऊपर बतलाया है कि गुरु के हाथ में एक विशिष्ट प्रकार की विद्युत् शक्ति खेलती है। ऐसा हाथ उस के सिर पर रखने से गुरु के हाथ में जो विद्युत्शक्ति होती है उस का धक्का उस शिष्य की सुप्तावस्था में पड़ी हुयी कुंडलिनी को लगता है और वह जाग उठती है। उस कुंडलिनी से ज्ञान प्रवाह शुरू हो कर उस शिष्य के सिर मे आता है और वह प्रवाह सिर मे आने पर शिष्य को 'तू ही परब्रह्म हैं' इस का ज्ञान करा देना पड़ता है। अपने आत्मबल के द्वारा सद्गुरु शिष्य को यह ज्ञान करा देते हैं। यह कार्य हम स्वयं नही कर सकते इसीलिए सद्गुरु की आवश्यकता प्रतीत होती है। सिर पर वरदहस्त रख कर कुंडलिनी को जगाना और आत्मज्ञान का परिचय करा देना इसी को 'गुरुकृपा' कहते है।

इस ग्रह का रंग पीला होता है इसलिए इस ग्रह के प्रभाव में जन्म लेने वाले अधिकांश पीले वर्ण के होते हैं, शारीरिक दृष्टि से सुदृढ, मृदु स्वभाव वाले व ज्ञानी होते है। ये लोग ज्ञान का प्रसार करने वाले, भक्तिपंथ

चलानेवाले व हजारों शिष्य बनाकर भक्तिमार्ग पर लगानेवाले होते हैं । इस ग्रह के अमल में स्वामी रामतीर्थ, चंडीदास, महाराष्ट्र के साधु सन्त, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, जनार्दन स्वामी, निवृत्तिनाथ, बरार के गुलाबराव महाराज, कबीर कमाल, गदग के शरीफ साहेब, सिशुनाळकर आदि अनेक साधु-संन्तोनें जन्म लिया है ।

शुक्र- यह ग्रह आकाश में अति तेजस्वी दिखाई देने वाला छोटा ग्रह हैं । पुराणों में इसे दैत्यों का गुरु माना गया है । इसे संजीवनी विद्या विदित थी और यह ज्ञानी है । ज्योतिषशास्त्र में इसे स्त्री ग्रह माना गया है और निसर्ग कुंडली में धन और सप्तम इन दोनों मारक स्थानों का अधिपति माना गया है । इसीलिए ज्ञान प्राप्ति के बाद यदि किसी का भय होता है तो स्त्री का, क्यों कि स्त्री साधु, सत्पुरुष,महात्माओं को परमार्थ मार्ग से विचलित कर फिर से माया मोह में फँसाने वाली होंती है । लेकिन स्त्री परमेश्वर का मार्ग बता कर ईश्वर का दर्शन कराने वाली भी होती है । स्त्री के ही कारण मनुष्य के हृदय में वैराग्य भावना जाग्रत होती है और वह परमार्थ मार्ग की ओर जाता है । इसीलिए हम देखते हैं कि इस ग्रह में तारक-मारक दोनों गुणधर्म मौजूद हैं । स्त्री सुख देना या न देना इसकी इच्छा पर निर्भर हैं । इसीलिए कन्या, धनु और मीन लग्न के लोग ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह सकते हैं, दूसरे लग्न के नहीं । इस ग्रह के अमल में जन्म लेने वाले मनुष्य, साधु,सत्पुरुष और ज्ञानी होते हैं और सिद्धि के चमत्कार दिखाने वाले होते हैं । इस ग्रह के प्रभाव में जन्म पाये हुए सत्पुरुष काशी के सुप्रसिद्ध स्वामी तैलंग, शिरडी के साईबाब, स्वर्गीय श्रीमंत नारायण महाराज, उपासनी बाबा, हाल में मद्रास प्रांत के रमण महर्षि आदि हैं । ये लोग सिद्धि के चमत्कार दिखलाकर जन समुदाय जमा करते हैं । और बहुत सा पैसा कमाते हैं । इन से लोगों का न तो आत्मकल्याण ही हुआ है और न तो इन्होने शिष्य व पंथ ही बढ़ाया है या ज्ञानोपदेश दिया है न ही भक्तिमार्ग बतलाया है । इन के स्वयं समाधिस्थ होने के बाद इन की गद्दी के लिए शिष्यगणों में बहुत झगड़े मचते हैं । मेरी राय में ये लोग निरुपद्रवी होते हैं क्योंकि इन से लोगों का कल्याण नहीं हुआ हैं ।

शनि - सब ग्रहो में शनि का स्थान अध्यात्म शास्त्र में विशेष महत्वपूर्ण है। मानव प्राणी जब दाम्पत्य जीवन मे प्रवेश कर माया मोह के जंजाल में फँसे जाने के कारण ईश्वर का स्मरण नहीं करता तब यह ग्रह आधिभौतिक ओर आधिदैविक इन दो साधनों से मनुष्य को विविध और विपुल आपदाओं से पीड़ित कर उसे ईश्वर की याद दिलाता है। यदि मानवी जीवन दुःख क्लेश आपदाओं, विपदाओं से शुरु से ही भरा हुआ न होता तो मनुष्य शायद ही परमेश्वर का स्मरण करता। इसीलिए हम देखते हैं कि मनुष्य पर विपदाओं की बौछार करना और इस प्रकार से ईश्वर की याद दिलाना, माया मोह के परे रहना, वैराग्य परिपूर्ण होना और एकांत जीवन बिताना आदि इस ग्रह के नैसर्गिक स्वभाव हैं। यह ग्रह थोड़ा क्रोधी व पूर्ण निर्लोभी, अचूक पंथ बताने वाला, शिष्य को योग्य गुरु के आधीन कर अध्यात्म ज्ञान का अभ्यास पूर्ण होते तक शिष्य पर कड़ी नजर रखने वाला होता है। इस ग्रह के प्रभाव से पैदा हुए महात्मा तथा सत्पुरुष स्वभाव से क्रोधी, एकान्त प्रिय, शिष्यों पर अलौकिक प्रेम करने वाले, किसी एक शिष्य को ही आत्मज्ञान देने वाले होते हैं। इन के पास केवल वे ही शिष्य अन्त तक टिकते हैं जिन को आत्मज्ञान प्राप्ति की तीव्र इच्छा होती है और जिन का हृदय वैराग्य भावनाओं से भरा हुआ होता है। यह ग्रह मनुष्य को बहुत पीड़ा पहुँचाता है और अनेक प्रकार की आपदाओं से संत्रस्त करता है। यही कारण है कि शनि को कई लोग निष्ठुर, दयाहीन और पाप फल देने वाला मानते हैं। लेकिन जब उसकी कृपादृष्टि होती हैं तब यह ऐहिक सुख देता है। सब से विशेष बात ये है कि यह ग्रह ईश्वर के बारे में ज्ञान प्रदान करता है। मेरी राय में शनि शुभ ग्रह है। इस ग्रह के अमल में श्रीमत् टेम्बे महाराज, श्री ब्रह्मचैतन्य गोंदावलेकर महाराज, अक्कलकोट के स्वामी महाराज, काशी के किला रामनगर में रहने वाले कुत्ताबाबा, नागपुर के ताजुद्दीनबाबा, कोल्हापुर के दत्त महाराज आदि महापुरुषों ने जन्म लिया है।

राहू- यह ग्रह धनद्रव्य का बना हुआ नहीं है बल्कि पूर्ण अदृश्य है। यह ग्रह केवल ग्रहण के समय दिखाई देता है। इस ग्रह के नैसर्गिक स्वभाव निम्नलिखित हैं- शरीर से पूर्ण अनासक्ति रखना और विदेही स्थिति में

जा कर मोक्ष प्राप्त करना । यह ग्रह त्रिगुण (सत्व,रज,तम) के परे जाता है अर्थात् विचार शक्ति और क्रिया स्थगित हो जाती है; केवल शरीर के नित्य नैमित्तिक व्यवहार चालू रहते हैं । इस का दुनिया को कुछ भी उपयोग नहीं हो पाता, लेकिन निचले दर्जे में याने तुरीयावस्था में भक्तियोगी होता है । इस ग्रह के प्रभाव से पैदा हुए साधुओं तथा महापुरुषों का बर्ताव बड़ा ही बेढंगा होता है । निजाम स्टेट में येलेगांव के निवासी तुकामाई, समर्थ रामदास के प्रशिष्य थे किन्तु अर्धनारीनटेश्वर के समान रहा करते । इन के पास हमेशा कुत्ते का बच्चा रहा करता था और इन के हाथ में बड़ी भारी चिलम रहा करती थी । लोग उन्हें हनुमान जी का अवतार मानते थे । आप पूर्णावस्था और विदेही स्थिति को पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष थे । सातारा प्रान्त में तासगांव नामक गाँव मे कई साल पहले महादुबुवा नामक एक नग्न महापुरुष रहा करते थे । आप हमेशा गाँव के कूड़े कचरें में लेटे पड़े रहते थे और मुँह से 'सांभारभात' इस तरह चौबीस घन्टे रट लगाया करते थे । बहते हुए गन्दे पानी में लेट कर नहा लिया करते थे । उन का इस तरह का बड़ा ही बेढंगा बर्ताव था; किन्तु आप बड़े ज्ञानी पुरुष थे । अपनी सारी जिन्दगी में इन दोनों महापुरुषों ने केवल एक एक ही शिष्य तैयार किया है । इस कोटि के महात्मा बहुत ही बिरले होते हैं, किन्तु भक्तियोगी इसी ग्रह के प्रभाव से जन्म लेते हैं । यथा-सन्त तुलसीदास, तुकाराम, नामदेव, भगवान रामकृष्ण परमहंस, गौरांगप्रभु, मीराबाई, गजानन महाराज शेगांवकर, भक्त सूरदास, डाक्काकी श्री मां. आनंदमयी देवी आदि ।

अगले परिच्छेद में "**ग्रहों के कारकत्व**" का विचार करेंगे ।

* * *

परिच्छेद ग्यारहवाँ

कारकत्व

रवि- ब्रह्म, विराट, उत्पत्ति, सत्व, अकार, भूतात्मा, प्राणवायु, सलोकतामुक्ति, वैखरीवाणी, स्थूल शरीर,विश्व, अष्टांग, योगसाधन में का यम, तेज, अंतःकरण, व्यान, ऋग्वेद, महिमा सिद्धि, ईशीत्व, महालिंग, परमात्मा, मणिपुरचक्र, सर्वसाक्षी, परब्रह्मरूप, ह पुरुषतत्व, बिंदु, अद्वैत,सूर्यभेदन, उज्जायीमुद्रा, सूर्यनाडी, (पिंगला) ह (सूर्य) सत्, चित्, आनंद, शब्दब्रह्म मेरुदंड,(Spinal cord), गायन का स्वर-मध्यम, चक्षुस, नाथपंथ, शिवोपासक, पिता से प्राप्त, अस्थि, शिरा, मज्जा, भुवन, ज्ञान, सूर्ये मयंमात । अधिदेवता- शिव । प्रत्यधिदेवता-अग्नितेज ।

चंद्र- (मन)- प्रकृति, रज, नियम, इडा,ठ (चंद्र) प्रपंचासक्ति, वैष्णव, अज्ञान, आवरण, सीत्कारी, सीतली, पवनयोग, रेचक,उकार,द्वैत,आध्यात्मिक दुखः लधिमा, विष्णु, विकरण- अपने देह बिना वहाँ कार्य करना, समीपता, मध्यमा वाणी, तैजस, कंठ, समानवायु, मनोमय कोश, शीतल. गुरु, यजुर्वेद, चंद्रामृत,(अमरवारुणी) माता से -प्राप्त-त्वचा,रोम मांस, रक्त, विशुद्ध चक्र, गायन का स्वर=निषाद, ठ (चंद्र) चंद्रेतारा व्यूह ज्ञानम् । अधिदेवता= उमा प्रत्याधिदेवता- जल Cerebrospinalfluid

इंद्रियजय होने से शरीर रूपलावण्य, बल वज्र के समान शरीर बनता है, इस प्रकार की शरीर संपत्ति बहुत अच्छी होती है, जब शरीर सुदृढ हो तब मन पर विजय प्राप्त करना बहुत ही आसान होता है । ततो मनो जवित्वम् विवरण भावः प्रधानश्च । जब मन की जय होती है तब अपने शरीर को अपने मन की गति प्राप्त होती है । इस का फल यह होता है कि योगी को जिस स्थल पर जाने की इच्छा हो वहाँ शरीर जाता है ।

मंगल - स्वयंभूलिंग, तामस अहंकार तम,आसनों का अभ्यास, नाद प्राणायम, रसना, क्रोध, गाणपत्य, भैरवोपासना, बलभीमोपासना, गीरिगुसाई

पुरीगुसा, मुद्रकाई,अभ्यास, शाक्तमतवादी, भस्त्रिका, भ्रामरी, महामुद्रादि अस्तये, स्मशान, व प्रसूतवैराग्य, आधिभौतिक कारण शरीर, मैथुनक्रिया, नाद-समुद्रमेघ, भेरी झर्झरी, अनाहतचक्र, गायन का स्वर गांधार, बलेषु हस्ति बलाद्रीनि पंचाग्निसाधन, अनाहत ध्वनि अन्नमयकोश, अधिदेवता=स्कंद=प्रत्यधिदेवता=पृथ्वीके साथ सूर्य के अभिमुख जा रहे हैं ।

बुध (जीवात्मा)- चित्त, वायु, परोक्षज्ञान, अभाव वैराग्य, त्वक, जिव्हा, वाणी, शब्द, बुद्धि उदान धारणा, मुमुक्षुत्व, लिंगशरीर (सूक्ष्मशरीर), नाद-मर्दल, शंख, अणिमा (सिद्धि), प्राकाम्य, मूलाधारचक्र, गायन का स्वर धैवत, प्राणमयकोश, Cerebellum. Pitiutury Body अधिदेवता-नारायण प्रत्याधिदेवता-विष्णु ।

गुरु (ज्ञानाहंकार)- आज्ञाचक्र, ज्ञान, सूक्ष्माहंकार प्रत्याहार विवेक, आकाश, सुषुप्ति, ज्ञानयोग, सद्गुरु ज्ञानमद, दत्तउपासना, अपरोक्षज्ञान, आत्मसाक्षात्कार, अपरिग्रह, क्रियायोग, आत्मानात्माविवेक विचार, सिद्धांत वाक्यश्रवण, विज्ञानमयकोश, गरिमा, संन्यासमार्ग, नादघंटा काहल, चित, अमृतत्व, कृपालुत्व, सूक्ष्मवेद, सगुण, ज्ञान, ज्ञानात्मा, कैवल्यदीक्षा, गायन का स्वर-ऋषभ, Cerebrum अधिदेवता-ब्रह्म प्रत्यधिदेवता-इंद्र

शुक्र- ध्यान महामोह, राजयोग, अष्टसिद्धि, काम, देवी उपासना, मंत्रयोग, ब्रह्मचर्य, आनंदमयकोष, भक्तियोग, वशित्वसिद्धि, रज, नाद-किंकणी मुरली, वीणा, व भ्रमर, परकायाप्रवेश, क्षुद्रसिद्धि, स्वाधिष्ठान चक्र, गायन का स्वर-पंचम अधिदेवता-इंद्र प्रत्याधिदेवता-चंद्र, Thyroid Gland पर रवि और शुक्र का अमल होता है ।

शनि- तूर्या, सविकल्पसमाधि, संप्रज्ञात, सृष्टि का प्रलय, त्रिकास्थि Vertebral Column कुंभक, लययोग, नागा बाबाजी पंथ, प्लाविनी, अपानवायु, परमहंसयति, निर्वासना, कर्मयोग, रुद्र, अपरवैराग्य, संहार, लय, मकार, शुद्धात्मा, सरुपतामुक्ति, पश्यंतिवाणी, कारणदेह, जागृत,(मोक्षमार्ग में), सुषुप्ति (प्रपंच में), पृथ्वी, प्राज्ञ. आनंद, सामवेद, अघोरपंथ, संस्कार साक्षात्कारणात्पर्व जाति ज्ञानम् । सहस्रारचक्र सुषुम्नानाड़ी-शांभवी, मध्य-

मार्ग, ब्रह्मरंध्र महापथ, स्मशान, शून्यपदवी नाम से प्रसिद्ध है । गायन का स्वर-दोनों षडज, अधिदेवता,-यम प्रत्यधिदेवता-प्रजापति ।

राहू - असंप्रज्ञात समाधि (निर्विकल्प) भक्तियोग, कुंडलिनी, पराभक्ति, अनासक्तयोग, अर्धमात्रा ँ निरंकुशातृप्ति, मारुती उपासना, परवैराग्य, परावाणी, मूलप्रकृति, सर्वसाक्षी, महानआत्मा, ज्ञानशक्ति, शुद्धसत्वगुण ईश्वरप्रत्यगात्माअभिमानी, स्वप्रकाशस्थान, सायुज्यतामुक्ति, महाकारणदेह, तुर्यातीतअवस्था, मूर्द्धास्थान, ब्रहरंध्रचक्र, अथर्वणवेद शिव-स्वरूप, पिंडब्रह्मांडपूर्ण, कुंडलिनी चक्र; खड़जस्वर= Filum Terminale अधिदेवता= काल प्रत्यधिदेवता = सर्प ।

कायरूप संयमात्तद् ग्राह्यशक्तिस्तम्मेचक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् । केतु = अधिदेवता- चित्रगुप्त, प्रत्यधिदेवता-ब्रह्म ।

नेपच्यून- स्वप्न में दृष्टांत; उपासना, भक्ति, अंतर्ज्ञान, साक्षात्कार अदृश्य सुष्टि में का अपनी आँखों को दिखाई देनेवाला दृश्य (Vision) स्फूर्ति, अंतरेद्रिंय दृष्टि, अपने विचार दूसरे के ह्रदय में निर्माण करना, भूत, प्रेत पिशाच्च, देवता आदि का दर्शन होना और इन का शरीर में संचार होना मानवी समाज पर विशुद्ध और सात्विक प्रेम करना, विश्वबंधुत्व, तूर्यावस्था Pariatal eye, canalis Centralis, Pineal Gland (Body) प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम् ।। इस कारकत्वका उपयोग ज्योतिषी अपने बुद्धिबल से करें यह प्रार्थना है ।

* * *

परिच्छेद बारहवाँ

मेषादि राशियों का वेदान्त की दृष्टि से विचार

वेदकाल से एक बात निश्चित हो चुकी है कि रात्रि के समय आकाश की ओर नजर डालनें से कई नक्षत्र देखने में आते हैं। इन नक्षत्रों के विषय में हमारे भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ज्ञान प्राप्त किया गया है। प्राचीन समय से ही इन नक्षत्रों को अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि नाम दिये गये है। इन नक्षत्रों के समूह को राशि कहते हैं इसी के विषय में हमें मेष आदि राशियों का क्रम से विचार करना है।

मेष- (स्वामी मंगल) पहले इस राशि का वर्णन दिया जाता है। यह आद्यराशि है। पहले पहले जब मनुष्य पैदा हुए तब नंगे घूमा करते थे। उन का कोई घरबार न था; स्त्री-पुरुष मिल कर एक झुंड में वृक्ष के नीचे या किसी गुफा में रहा करते थे और कन्दमूल फल तथा झाडों के पत्ते व पशु पक्षियों का मांस खा कर अपना उदर निर्वाह करते थे जब कभी कामेच्छा पैदा होती थी, तब किसी भी स्त्री से अपनी इच्छा पूर्ण कर लिया करते थे। इस समय विवाह संस्था अस्तित्व मे न थी। इसीलिए कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से अपनी भोगलालसा पूरी कर लेता था। उस समय मानवप्राणी का जीवन केवल खाना पीना और स्त्री को भोगना ही था। सुख दुःख के विचार उन में नहीं थे। ये झुण्ड आपस में स्त्री के लिए लड़ते थे। इसी तरह कुछ काल व्यतीत होने पर स्त्री के मन में लज्जा का प्रादुर्भाव हुआ। अब आमतौर से भोगलालसा पूरी करना असभ्य-सा जान पड़ने लगा। इसीलिए उन्हें झाड की पत्तियाँ लकड़ियाँ और घासफूस की सहायता से झोपड़ियाँ बाँधने की कल्पना सूझी। इस प्रकार से जब स्त्री को गुप्तरीति से भोगना प्रारम्भ हुआ तब जिन को स्त्री नही थी, उन के दिल में ईर्ष्या उत्पन्न हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री के लिए पुरुषों में झगड़े होने लगे। मानवप्राणी की इस अवस्था पर मेष राशि का अमल था। काम

में लज्जा, लज्जा से क्रोध और क्रोध से मारपीट यह गुणधर्म निर्माण हुए। यह मेष राशि के गुणधर्म हैं। मेष (ram) के चार पैर, दो सींग, एक पूँछ, लम्बा मुँह और शरीर पर सघन बाल होते हैं। इस का प्रधान लक्षण है जमीन पर खाद्य पदार्थ ढूँढते हुए आगे चलना। जब वह भेड़ी के पीछे जाता है तब दूसरे भेड़ों को पास में आने से रोकता है और पास आने पर उन से लड़ता भी है। बकरे बहुत ही कामी होते है; यहाँ तक कि बचपन में ही अंडु आना किये हुए (castrated) बकरे भी मादी के पीछे लगते हैं। किन्तु मादी कामी नहीं होती। केवल गर्भ रहतें समय (Mating Time) वह नर को भोग देती है; अन्य समय नर को अपने पास आने से इन्कार करती है।

प्राचीन आचार्यों ने इस राशि के निम्नलिखित लक्षण बतलाये है;- चर, अग्नितत्व, चतुष्पाद, दिन में बार-बार, स्थलान्तर करना, रुक्ष मौज उड़ाना चालचलन में बेढंगापन, झगड़ालू, भावात्मक (Positive) राशि, निर्जल भूमितलस्थ, मध्य रात्रि को अंधस्थिति, रजोगुणी, तेज, अल्प प्रसव विषम राशि,न्हस्वदेही, पुरुष राशि,पुरुषतत्व, (Male factors are predominent), पूर्व दिशा, पशुराशि, निवासस्थान- घास के जंगल, खेती, बनप्रदेश,मुख्य तत्व-आशा, उम्मीद, हृदय के विचार लोगों के सामने प्रकट करने की चेष्टा करना, (He wants to come in public eye) रत्न-याकू त (एक प्रकार का पत्थर),(Amcthyst) रंग- रक्तवर्ण, धातु- लोहा,शारीरिक दृश्य-अत्यन्त चंचल, मानसिक स्वभाव- साहस , इस राशि के प्रधान लक्षण, युद्ध करना जननेता Public Leader हो कर मार्गदर्शन करने की आकांक्षाएँ रखना। इस राशि का मूल स्वभाव- सत्यवादित्व,अपने से बड़ों कि आज्ञा पालना। इस राशि का अमल मस्तक पर है।

इस राशि में काम क्रोध और लड़ना ये गुण प्रधान होते हैं, जिन में प्रधान गुण काम है। वह मनुष्य के मन में दिन रात प्रबल रहता है। यही कारण है कि इस लग्न का मनुष्य सम्पूर्ण योगीश्वर नहीं हो सकता। अष्टांग योगसाधन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम इन चार अंगोंका वह अभ्यास कर सकता है, किन्तु जब वह प्रत्याहार की अवस्था में पहुँचता है

तब स्त्री के वशीभूत हो कर योगभ्रष्ट होता है । इस का कारण यह है कि ये न केवल बुद्धि में ही चंचल होते है । बल्कि शरीर से भी चंचल होते है । योग के लिए बुद्धि स्थिर होनी चाहिये । इसीलिए ये योगाभ्यास के पात्र नहीं होते । हाँ, सौभाग्य से यदि कोई अवतारी पुरुष मिल जाय, तो गुरु पदेश से ये ज्ञानयोगी हो जाते हैं । भक्ति पूजन भजनादि में इन का मन आनन्द का अनुभव करता है । इस राशि में सांसारिक आसक्ति नहीं होती । मेष राशि कुटुंबपति है ।

वृषभ राशि (स्वामी शुक्र)- राशिचक्र में यह दूसरी राशि है । मेष राशि के बारें में बतलाते समय हम ने मनुष्य जाति की प्रगति मैथुन कर्म गुप्तरीति से करने के लिए झोपड़ी बाँधने तक किस प्रकार हुई, यह दिग्दर्शित किया है । आगे चलकर मनुष्य समाज ने प्रगति का एक कदम और आगे बढ़ाया । वह किसानी कर शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगा । उस को ढूंढते ढूंढ़ते कुछ धातुएँ मिलीं जिन का उपयोग खेतीवारी के लिए उपकरणों-सा किया जाने लगा । इस समय आपस के झगड़े काफी प्रमाण में बन्द हो चुके थे । वर्षा ऋतु में खेती की देखभाल करना और स्त्री के साथ आनन्द पूर्वक जीवन बिताना यही मानव-प्राणी का जीवन क्रम हो यही गया । धीरे धीरे मनुष्य में अहंभाव पैदा हुआ । यह घर मेरा है, 'यह खेत मेरा है' । इस अहंकार के कारण हृदय में लोभ उत्पन्न हुआ । अभी तक विवाह संस्था अस्तित्व में नहीं आ सकी थी, अतएव सुखदुःख के विचारों से मनुष्य-समाज अनभिज्ञ था । किसी भी स्त्री के पास जाकर मनुष्य अपनी भोगलालसा पूरी कर लिया करता था । मेष राशि में जिस प्रकार काम और क्रोध उत्पन्न हुए, उसी तरह इस राशि में स्वार्थ और लोभ उत्पन्न हुए । यह सुखाभिलाषी व शान्तिप्रिय राशि हे । मीण राशि ध्येयवादी (Idealistic) व वृषभ राशि व्यावहारिक (Practical) है । मेष राशि के लोग किसी भी कल्पना को मानने के लिए सहसा तैयार हो जाते हैं । ठीक इस के विपरीत वृषभ राशि होती है । किसी भी कल्पना को प्रत्यक्ष कृति में लाये बिना इस राशि के लोग विश्वास रखने के लिए तैयार नहीं होते । किसी भी कार्य में दूसरों को आगे कर आप पीछे रह कर व्यवहारिक व्यवस्था देखनेवाली यह राशि है ।

इस समय मनुष्य समाज पर वृषभ राशि का अमल था। मिथुन राशि के अमल तक मातृ सत्ताक पद्धति (Matriarchal System) प्रचार में थी अर्थात् पुरुष स्त्री के अधीन था। इस राशि के अमल के अन्त तक स्त्री समाज की हालत बहुत ही खेद जनक और पशु समान थी। प्राचीन आचार्योंने इस राशि का वर्णन इस प्रकार किया है :-

स्थिर ठंढी, रुक्ष, उदासीन, वर्ण-नींबू के समान (पाश्चात्य शास्त्र कारों के अनुसार) अभावात्मक (Negative) राशि,भूमि राशि, जलाश्रयी, रजोगुणी, मध्यरात्रि के समय अंधस्थिति, बहुप्रसव, सम राशि, न्हस्वदेही, स्त्री राशि, स्त्री तत्व, दक्षिण-दिशा, पशु राशि। रहने की जगह गो शाला,जंगल; राशि का प्रधान तत्व-शान्ति। मूल स्वभाव-स्थितिस्थापकत्व। रत्न-माँस अँगेट (पन्ना) वर्ण नीला (हमारे प्राचीन आचार्यो ने इस का वर्णन "गौर" दिया है) धातु-ताम्र। शारीरिक दृश्य-जड़त्व। मानसिक दृश्य-स्थिरता। राशिका प्रधान धर्म-निर्माण करना, व्यवस्था करना राशि का-मूल स्वभाव (Inner Nature) प्रापंचिक व्यवस्था रखना। इस राशि का अमल कंठ और वाणी पर है।

यह राशि, विलास प्रिय, सुखाभिलाषी, व शारीरिक परिश्रमों से दूर भागने वाली होती है। इसलिए इस लग्न में जो जन्म लेते हैं वे योगी नहीं हो पाते; अधिक से अधिक राजनीतिज्ञ (Politician), नेता (Statesman) अथवा म्युनिसिपल मेम्बर हो पाते है। जब प्रापंचिक झगड़ो में दुस्सह कष्ट प्राप्त होता है तब ये घरबार छोड़कर भाग जाते हैं और संन्यासी बनते हैं। परन्तु इन्हे ईश्वर-ज्ञान नहीं प्राप्त होता; केवल इधर उधर भटकते रहते हैं। जब त्रिविधताप दुःस्सह होता है तब आत्महत्या ही कर लेते हैं। इसलिए ये लोग योगी नहीं हो सकतें । इन की धार्मिक बुद्धि उत्तम होती है और वे कर्मकाण्ड भक्ति पूर्वक करते हैं। अष्टांग साधन की दूसरी सीढ़ी जिसे नियम कहते हैं उस का ठीक-ठीक पालन करते हैं। इस राशि में कभी कभी कोई दैवीगुणयुक्त व भक्तिमान पुरुष जन्म लेते हैं। इस राशि में सांसारिक आसक्ति अधिक होती है। यह राशि मेष राशि की पत्नी है।

मिथुन राशि (राशि बुध)- राशि चक्र में यह तीसरी राशि है। मिथुन, मेष (पिता) और वृषभ (माता) का पुत्र है इसीलिए इस में माता पिता के गुणधर्म उतर आये हैं। यही कारण है कि मिथुन राशि को द्विस्वभाव राशि कहा गया है। जब मेष और वृषभ राशियाँ एक स्थान पर आयीं तब वाणी उत्पन्न हुई और फलतः सुखदुःख के विचार उदित हुए। इस राशि का रूप वर्णन इस प्रकार का दिया हुआ है :- ''नृयुग्ममिथुलनं सगदंसवीणम्''। इस राशि में स्त्री व पुरुष दोनों एक ही स्थान पर आ गये हैं। वृषभ राशि के अन्त तक स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इन का न तो कोई संरक्षक ही था, न उन के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था ही रखी गई थी। एक स्त्री को दो चार पुरुषों को भोग देना पड़ता था और इसी लिए स्त्री को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। इस का कारण यह है कि स्त्री एक पुरुष निष्ठ होने के कारण दो पुरुषों से एक ही समय भोगानन्द नहीं पा सकती, इस के विपरीत पुरुष एक स्त्री निष्ठ न होने के कारण यह एक से अधिक स्त्रियों के भोग में आनन्द प्राप्त करता है। (Woman is quite monogamous so she cannot ejnoy two men at time but man is polygamous so he can enjoy two women at time) इस समय समाज में बहुपतित्व (Polyandry) बहुत प्रमाण में फैला हुआ था। यह स्थिति स्त्री समाज के लिए कष्ट प्रद थी। इसीलिए एक पत्नित्व का वैवाहिक बन्धन पुरुषों पर स्त्री समाज ने डाल दिया। इस प्रकार से विवाह-बंधन अस्तित्व में आया जिस का मुख्य श्रेय स्त्रियों को ही हैं, पुरुषों को नहीं। इसी समय से पितृ सत्ताक पद्धति (Patriarchal system) का आरम्भ हुआ। वाणी पैदा होने के बाद भाषाशास्त्र की दिशा में अनुसन्धान शुरू हुए। कई लोगों नें कलाकौशल्य और कारीगरी की और अपना ध्यान आकर्षित किया। इसी समय आयुर्वेद, गायन ओर ज्योतिष शास्त्रों का भी प्रादुर्भाव हुआ। कुछ दिनों के बाद लोगों ने कपास से कपड़े बुनना भी शुरू किया। इन सब विषयों में अनुसंधान भी होते रहे। इस समय मनुष्य समाज पर मिथुन राशि का अमल था। इस अमल के शुरू-शुरु में स्त्री के साथ सांसारिक जीवन बिताना प्रारंभ हुआ और फलस्वरुप स्त्री पर बाल-बच्चे संभालने की जिम्मेदारी आ पड़ी। इस जिम्मेदारी के कारण दाम्पत्य-जीवन में

झगड़े उपस्थित होने लगे और इस तरह प्रापंचिक जीवन दुस्तर, बोझिल और दुःखपूर्ण हो गया। इस का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य संसार के प्रति विरक्त होने लगा और सच्चा शान्ति का मार्ग ढूँढ़ने लगा। कभी-कभी- वेदान्त पठन मात्र से ही सच्ची शान्ति पाने का निष्फल प्रयत्न करने लगा। जिस प्रकार कामशास्त्र में ८४ आसन दिये हुए हैं, उसी तरह योगशास्त्र में भी ८४ आसन दिये गये हैं, जिन की क्रिया से मिथुन राशि भलीभांति परिचित हैं।इसी तरह श्रृंगार शास्त्र और योगशास्त्र के विषय में भी अनुसन्धान शुरू हो गये। इस राशि का अमल बाहु और स्कन्ध पर है।

प्राचीन आचार्यो नें इस राशि का वर्णन इस प्रकार किया है; द्विस्वभाव द्विदेह, वायुतत्त्व, मध्यान्ह में अन्धस्थिति, जलाश्रयी, सत्वगुणी, अल्पप्रसव, विषय राशि, द्विपद, मध्यम देही उष्ण, आर्द्र, रक्तिम, दिन की राशि, भावात्मक (Positive) राशि, पुरुष राशि, पुरुषतत्व, पश्चिम दिशा, वक्षस्थल, मनुष्य राशि, रहने की जगह-अखबार का दफ्तर, पोस्ट ऑफिस, टेलीग्राफ ऑफिस, बड़ी बड़ी फर्म में क्लर्क की जगह संस्कृत, कॉलेज, स्कूल, वेदशाला, ऑबझरवेटरी वेदशाला (Observatory) आदि। इस राशि का प्रधान तत्व-खुश दिल रहना, रुचि वैचित्र्य, रत्न, Beryel Aquamarine वर्ण- आर्यग्रन्थकारों की दृष्टि से फीका हरा और पाश्चात्य ग्रंन्थकारों की दृष्टि से पीला हलदी का रंग धातु-पारा; शारीरिक दृश्य-संकुचन और प्रसरण (Contraction and Expansion) **मानसिक** दृश्य-कभी उल्लसित व कभी दुःखित। राशिका मूल स्वभाव-कलाकार अन्वेषक (Inventor) और प्रेरक। इस राशि का अमल बाहु पर है।

इस राशि में एकाग्र चित्त करने का सामर्थ्य अवश्य है किन्तु शरीर की मृदुता के कारण योगाभ्यास के कष्ट सहन करने की शक्ति नहीं है। किन्तु दूसरे शास्त्रों का अभ्यास ठीक-ठीक करने की क्षमता होती है। प्रापंचिक जीवन में कितने भी विविध ताप हों, न तो इस राशि के लोग परमार्थ मार्ग की ओर जाते हैं और न अपना कष्ट किसी दूसरे को बतलाते हैं। फलतः इन्हें वैराग्य प्राप्त नहीं होता और इसीलिए योगी नहीं हो पाते इन से केवल वेदान्त की चर्चा, कथा, पुराण, संकीर्तन ही

होता है। ये लोग अपने गुरु पर भी विश्वास नहीं करते, अपने मन के अनुसार चलते हैं। इसी कारण परमार्थ मार्ग से वंचित रहते हैं। राशि चक्र में यह पहला कुटुम्ब (Family) है जो कि लोगों का संरक्षण करता है। इसीलिए यह राशि संरक्षण तथा पालन करने वाली राशि कहलाती है। मेष राशि पुलिस है क्योंकि यह संरक्षण करती है। वृषभ राशि अन्न पानी देकर जीवन की रक्षा करती है। मिथुन व्यावहारिक और प्रापंचिक ज्ञान देनेवाली राशि है।

कर्क (स्वामी चन्द्र Universal Mother) राशि चक्र में यह चौथी राशि है। यह राशि सृष्टि पर अधिकार चलाने वाली होने के कारण जगन्माता, काली, आदिमाता, जगदम्बा, जगज्जननी, माया आदि विविध नामों से पहिचानी जाती है। हम यह देख चुके हैं कि मिथुन राशि में विवाह-संस्था किस प्रकार से अस्तित्व में आई। विवाह संस्था के कारण धीरे-धीरे लोगों में यह भावना जागृत हुई कि 'यह घर मेरा है, ये बाल-बच्चे मेरे हैं। जहाँ-जहाँ देश और प्रान्त थे वहाँ लोगों को अपने देश और प्रान्त से भी ममत्व उत्पन्न हुआ। परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों के मन में अपने पति को राजा बनाने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। स्त्रियाँ बहुत ही धूर्त और राजनितिज्ञ होने के कारण अपने पति को राजा बनाने में सफल हुई और आप स्वयं राज्य का कारोबार सँभाल ने लगीं। धीरे-धीरे चातुर्वणाश्रम श्रम अस्तित्व में आये। पाठ-पठन, शम, दम, तप,शौच, शान्ति, क्षमा, सरलता, आत्मज्ञान, सृष्टि-ज्ञान, श्रद्धा, और यज्ञ करना आदि गुण कर्मों से जो युक्त होते थे वे ही बाह्मण कहलाते। शूरता, तेजस्विता, धारणाशक्ति, दक्षता, युद्धकला निपुणता,दानी और सत्ताधिकारी आदि गुणकर्मों से जो युक्त होते थे वे क्षत्रिय माने गये। कृषि मवेशियों कि देखभाल, वाणिज्य, व्यापार, उद्यम आदि गुण कर्मों से युक्त लोग वैश्य कहलाये जाने लगे और जो दूसरों की सेवा करने योग्य थे वे शूद्र हुए। इस प्रकार से चार वर्णाश्रम धर्म का निर्माण कर सामाजिक व्यवस्था की गई। इस तरह मेष ने क्षत्रिय, वृषभ ने वैश्य, मिथुन ने शूद्र और कर्क ने ब्राह्मण बनाये। अन्य देशों के साथ लड़कर वे देश अपने अधिकार में लाना

तथा सारे राज्य का कारोबार सँभालना आदि कार्य भी इन्हीं के जिम्मे सौंप दिये गये थे। इसी समय गणितशास्त्र (Mathematical Science) और नौविद्या (Art of Navigation) का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में मनुष्य समाज पर कर्क राशि का अमल था। इस प्रकार से सारे प्रपंच व संसार की व्यवस्था देखते-देखते, आपदा विपदाओं को तथा नाना प्रकार के कष्टों को झेलते हुए कर्क राशि जीवन से उब्र गयी और उसके मन में वैराग्य भाव जागृत हुआ। परिणाम यह हुआ कि वह वन में चली गई और वहाँ योगाभ्यास में संलग्न हुई।

प्राचीन आचार्यो ने कर्क राशि का वर्णन इस प्रकार दिया है :-चर, जलचर, बहुप्रसव, मूक राशि, ठंड, आर्द्र, कफात्मक। रंग-नारंगी (Scarlet) या हरा, रात की फलद्रूपता, अभावात्मक (Negative) बहुपाद मध्यान्ह के समय अन्धस्थिति, मध्यम देही, उत्तर दिशा, सत्वगुणी, कीट राशि। रहने की जगह-कुआँ, तालाब, नदी, समुद्र तथा जमीन में छिद्र (Hole) बना कर रहने वाली। वर्ण-आकाश के समान नीला अथवा जामुन के समान। प्रधानतत्व-क्षमा, शान्ति। हृदय में वास करने वाला गुण-सहानुभूति। रत्न-मॉस आगेट (पन्ना)। धातु-चांदी, शारीरिक लक्षण-नरम तथा मृदु, मानसिक लक्षण-कल्पना आभास। प्रधान लक्षण- भविष्य वादित्व। इस राशि का मूल स्वभाव- शक्तिमान सत्ताधिकारी।

मेरी राय में जब यह राशि दैवीगुणों से युक्त होगी तब दूसरों का कल्याण करने के लिए महान त्याग करेगी और जब आसुरी गुणों से युक्त होती है तब अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की हानि करेगी। इस राशि का अमल हृदय पर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस राशि में आपदाओं विपदाओं तथा नाना प्रकार के शारीरिक कष्टों को सहन करने की शक्ति है। प्रापंचिक बातों में आसक्ति किंतु बुद्धि स्थिर। योगाभ्यास के लिए बुद्धि स्थिर चाहिये। वेदान्त के लिए अनासक्ति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से इस राशि में योगी होने के गुणधर्म मौजूद हैं। त्याग व परोपकार वृत्ति होने के कारण साधु के योग्य गुणधर्म भी विद्यमान हैं। यही कारण है कि

इस लग्न के लोग प्रापंचिक जीवन बिताकर परमार्थ की ओर जाते है और योग ज्ञान प्राप्त कर किसी एक स्थान में अपना मठ बाँधते हैं तथा लोगों को ज्ञानोपदेश देते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु ये अपना कोई भी अधिकारी शिष्य नहीं बनाते जिस का परिणाम यह होता है कि इन के समाधिस्थ होने के पश्चात् मठ में अव्यवस्था मच जाती है। अपने जीवन के अन्त तक लोगों ने दिया हुआ लाखों-करोंडो पैसा इकट्ठा करते हैं; इस प्रकार इन के मठ में भी बड़ा भारी प्रपंच चालू रहता है, जिस के कारण कई झगड़े उपस्थित होते रहते हैं। अन्तर केवल यही है कि वहाँ उन की पत्नी,बाल बच्चे नहीं होते। इस प्रकार के दो प्रसिद्ध उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं- पजांब के महान भगवद्भक्त तुलसीदास जी हो गये हैं। यह सर्व विदित है कि तुलसीदास जी घरबार व पत्नी छोड़कर काशी में आये और अपनी ईश्वर भक्ति की लगन के कारण उन्हों ने प्रभु श्रीरामचंद्र जी का दर्शन किया था। बाद में वे लोगों को भगवद्भक्ति का उपदेश देते रहे। कभी-कभी अपनी सिद्धि का चमत्कार भी वे लोगों को दिखाते थे। इन चमत्कारों को देखकर भावुक लोग तुलसीदास जी की ओर आकर्षित हुए और उन के आश्रम में फलतः लोगों का प्रचंड मात्रा में ताँता लगा रहता था। इस का परिणाम यह हुआ कि तुलसीदास जी कें ध्यान, भजन, पूजन, आदि नित्य कर्मों में व्यत्यय आने-लगा। कुछ ही दिनों के बाद वे आश्रम की उलझनों और झगड़ों में फँस गये। काशी में एक और पंथ है जिस का नाम "अवघड़" है। इस पंथ के आद्य प्रवर्तक किनाराम बाबा जी तुलसीदास जी के समकालीन थे; आप एकनिष्ठ रामभक्त थे। किनाराम बाबा की निश्चल भक्ति का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है जिस से अल्पकाल में ही किनाराम बाबा की सर्वत्र ख्याति हो गयी और उन के आश्रम में लोगों की भीड़ एकत्रित होने लगी। आश्रम में बढ़ती हुई भीड़ के कारण भोजन-शयन आदि के प्रबन्ध में बाबा जी का सारा समय बीतने लगा। अब बाबाजी भजन, पूजन, ध्यान धारणा तथा समाधि आदि कुछ भी न कर पाते थे। सुनते हैं कि इन की भक्ति पर त्रिलोकीनाथ प्रभु राम पूर्ण रूप से रीझ गये थे। प्रत्यक्ष रूप में सीता, राम, लक्ष्मण और भक्तराज हनुमान इन के आश्रम में विराजमान रहते थे। स्वयं प्रभु राम,

आश्रम में अतिथियों के भोजन-शयन की व्यवस्था तथा अन्य सभी जिम्मेदारी के काम करते थे । लक्ष्मण जी बाजार से सौदा खरीदकर लाते थे । जगन्माता सीता जी रसोई पकाने में व्यस्त रहती थीं और भक्तराज हनुमान जी पानी भरना तथा लकड़ी फोड़ने का काम करते थे ।

जब किनाराम बाबा ने भगवान को कष्ट में देखा तो वे इन झंझटों से अलग होने की चेष्टा करने लगे । सायंकाल का समय था, कथा, पुराण तथा भजन आदि हो रहे थे । लाखों की संख्या में श्रोताओं की भीड़ लगी थी । इसी समय बाबा जी ने अपने शिष्य से कहा-बेटा, एक बोतल शराब और थोड़ा कलिया भी ले आओं । आज्ञा पाते ही शराब की बोतल और कलिया उपस्थित हो गयी । किनाराम बाबा ने लोंगो के देखते ही देखते कलिया सेवन कर'शराब को प्राशन किया । अभद्र चीजों को सेवन करते देख लोगों के मन में बाबा जी के विषय में घृणा उत्पन्न हो गयी । उन के शिष्यों को छोड़कर सभी लोग वहाँ से घृणा के भाव ले कर भाग गये । शराब पानी की वार्ता शीघ्रता से चारों ओर फैल गयी ओर बाबा किनाराम सर्वत्र बहिष्कृत माने जाने लगे ।

गुसाईं तुलसीदास जी के आश्रम में आज भंडारा था । नगर के सभी सन्त महात्माओं को नेवता दिया गया था । बाबा किनाराम समाज की ओर से बहिकृत कियें गये थे अतएव उन्हें तुलसीदास जी ने नेवता नहीं दिया था । भक्तराज हनुमान ने दो भक्तों के इस व्यवहार में अन्याय देखा । भगवान राम से शिकायत करने पर श्रीराम जी ने दोनों भक्तों के भावों की समरसता से हनुमान जी को परिचित कराया । किन्तु हनुमान जी का समाधान नहीं हुआ । वे इस में बाबा किनाराम का अपमान मानते थे ओर इसीलिए तुलसीदास जी को दंड देना चाहते थे । हनुमान जी के आग्रह पर यह काम लक्ष्मण पर सौंपा गया । तुलसीदास जी के आश्रम पर अतिथियों की भीड़ लगी और सब के सब भोजन के लिए बैठे । लक्ष्मण जी के श्राप के कारण भोज्य पदार्थों से विष्ठायुक्त दुर्गंध निकलने लगी । गुसाईं तुलसीदास जी बड़े लज्जित होकर असमंजस में पड़ गए । ध्यान लगा कर देखने के बाद उन्हें इस अनिष्ट का कारण समझ में आ गया । झट वे किनाराम बाबा की ओर दौड़े अनुनय विनय

करने पर बाबाजी ने कहा तुलसी हम तो भ्रष्ट हो चुके हैं। आप की सहायता एक भ्रष्ट व्यक्ति कभी भी नहीं कर सकेगा। विरांग युक्त वचन सुन कर तुलसीदास जी बड़े ही दुःखित हुए। बाबा किनाराम जी ने तुलसीदास जी की असहाय तथा दुःखमय अवस्था देखी तो उन के मन में करूणा का प्रादुर्भाव हो गया। असहाय तुलसी को बाबा जी ने अपने आश्रम के भीतर जाने की आज्ञा दी। भीतर पहुँचते ही तुलसीदास जी प्रभु राम के दर्शन पा कर कृतकृत्य हो गये। तुलसीदास जी ने देखा कि भगवान रामचंद्र जी सीतामाई तथा भ्राता लक्ष्मण के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। एक ओर कोने में हनुमान जी क्रोधित होकर वीरासन में बैठे हैं।

प्रभु के दर्शन पाते ही भक्तप्रवर तुलसीदास जी भगवान के चरणों पर गिर पड़े। चरणों पर गिरे हुए तुलसीदास जी को भगवान ने कहा-"तुलसी, तुम हनुमान जी के शरण जाओ। वे तुम्हारा काम पूरा कर देंगे"। आज्ञा पाते ही तुलसीदास जी क्रोधित हनुमान जी के चरणों पर जा गिरे। हनुमान जी ने क्रोधावेश में कहा-तुलसीदास तुम बड़े ही घमंडी हो; मेरे भक्त का अपमान करते हो। किनाराम को नेवता न देने से मैं तुम पर अप्रसन्न हूँ। हनुमान जी की ओर बड़े ही करुण भाव से भक्त तुलसीदास ने देखा और कहा, "प्रभो! लोक-लज्जा के कारण मैने बाबा जी को नेवता नहीं दिया है। यदि किनाराम जी को नेवता देता तो कोई भी भोजन न करेगा और समूचा भोजन व्यर्थ जायेगा। प्रभो, क्षमा कीजिये। भक्त किनाराम मेरे लिए बड़े ही पूज्य हैं।" तुलसीदास जी के व्यक्तिगत पवित्र भावों को देख कर हनुमान जी प्रसन्न हो गये। तुलसी के पूछने पर हनुमान जी ने कहा, भंडारा होने के पूर्व प्रसाद की एक थाली किनाराम जी के आश्रम में पहुँचा ने से तुम्हारा भंडारा सफल हो जायगा।

इधर लक्ष्मण जी के उःशाप से पूर्ववत अन्न में पवित्र सुगंध आने लग गयी। तुलसीदास जी प्रसाद की थाली ले कर बाबा जी के आश्रम में पहुँचे, उस समय उन दोनों में जो संभाषण हुआ वह नीचे दिया जाता है।

किनाराम बाबा ने तुलसीदास जी से पूछा- "क्यो गुसाईं जी, आप घर बार और पत्नी छोड़ कर काशी में किसलिए आये ?"

"प्रभु श्री रामचंद्र जी के दर्शन के लिए-"गुसाईं जी ने उत्तर दिया।

बाबा जी ने कहा- "आप को तो प्रभु रामचंद्र जी का दर्शन हो गया है।

किनाराम बाबा ने गुसाईं जी से फिर पूछा-"आप आश्रम के झंझटों मे फँसे रहने पर ईश्वर का ध्यान कितने घन्टे कर पाते हैं ?"

"बाबा जी, अब ध्यान पूजन, पठन, सब कुछ छूट गया है।" गुसाईं जी ने उत्तर दिया।

"तो फिर आप अपनी पत्नी को वपिस बुला कर यहाँ आश्रम में फिर से प्रपंच क्यों नहीं शुरू कर देते ?"

गुसाईं जी बड़े चतुर थे, बाबा जी के कहने का मतलब समझ गये और उसी दिन से आश्रम की सारी झंझटों से विमुक्त हो गये। इस के बाद आप ने रामायण लिखना शुरू किया तथा अन्य ग्रन्थ लिख कर अपना नाम अमर किया। (मैं जब १९१६-१७ में कुत्ताबाबा नामक अवघड़ पंथी योगी के साथ काशी के सामने किलाराम नगरी में रहा करता था तब उपरोक्त कथा हमेशा सुना करता था।)

दूसरा उदाहरण सिद्ध रूढ़ स्वामी का है। आप कर्नाटक प्रान्त के धारवाड़ जिले में हुबली नामक शहर में रहा करते थे। आप बड़े सिद्ध योगीश्वर और ज्ञानी पुरुष थे। आप ने अपनी उमर के ४० साल ब्रह्मचर्य में बिताकर योगाभ्यास और ईश्वर- ज्ञान प्राप्त किया था। हिन्दुस्थान में जगह-जगह परिभ्रमण करते हुए आप हुबली में जा कर बसे। आप के सिद्ध चमत्कार देख कर बहुत से लोग दिन प्रति दिन आने लगे। स्वामी जी उस समय लोगों को ज्ञानो पदेश दिया करते थे। उस समय स्वामी जी एक पेड़ के नीचे रहा करते थे। न आप के शरीर पर कोई वस्त्र ही था और न तो आप के पास सोने के लिए कोई बिस्तर ही था। आप की यह अवस्था देख कर लोगों ने आप के लिए मठ बांध दिया। बस, इसी समय से आप मठ के झंझटों में फँस गये। लोगों से मिले हुए धन से लाखों रुपये की इस्टेट बनाई और बड़े-बड़े मकान बाँध कर आप उन का किराया खाने लगे। धीरे-धीरे मठ में बैंक के समान ब्याज व्यवहार भी आप ने शुरू कर दिया। ये सब बातें धारवाड़

के जिला कोर्ट में दर्ज हैं। लोगों का कहना है कि उस प्रचंड सम्पति के लोभ में आ कर किसी ने आप को जहर पिला दिया। इस प्रकार आप का देहावसान होने के पश्चात् आप के शिष्यों में बड़े झगड़े उपस्थित हुए। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस ने बचपन में ही माता पिता और घरबार का त्याग कर दिया, परमेश्वर प्राप्ति कर ब्रह्मचर्य- जीवन बिताया, इस प्रकार जिस ने आधी उम्र व्यतीत कर दी, वही आगे चल कर मठ बाँधता है और सम्पत्ति के मोह में फँस कर योगभ्रष्ट हो कर ज्ञानभ्रष्ट हो जाता है।

इस राशि में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि मनुष्य जितना ही आगे बढ़ता है उतना ही वह पीछे आता है। इस लग्न के लोग बड़ी-बड़ी संस्थाएँ स्थापन करते हैं। परंतु ये संस्थाएँ उन व्यक्तियों के जीते रहने तक सुव्यवस्थित चलती हैं। किन्तु उन के देहावसान के पश्चात् बरबाद हो जाती है। स्वर्गीय महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी और बाबू अरविन्द घोष ये दो महापुरुष ऐसे हैं कि इस बात के अपवाद हैं। पंडित मालवीय जी का कर्क लग्न है। आप ने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रस्थापित कर अपना नाम अजरामर किया है। आपने लोगों से जो कुछ समय-समय पर धन इकठ्ठा किया है वह सब हिन्दू युनिवर्सिटी की उन्नति के लिए। आप का आचरण योगी के समान था।

दूसरा उदाहरण बाबू अरविन्द घोष का है। आप ने बचपन से ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड में वास किया था और अन्त में आप ने ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की अत्युच्च डिग्री (M.A.) प्राप्त की। वहाँ से लौट कर आप अपने देश में आये और बड़ोदा स्टेट में कुछ दिनों तक नौकरी की। इस के बाद आप कलकत्ता आये और 'कर्मयोगी' नामक पत्र शुरू किया। इस के बाद में माणि तल्ला बमकेस के सिलसिले में आप पर मुकदमा चला परन्तु निर्दोष छूट गये। इस के पश्चात् आप पाँडीचेरी में आये और वहाँ एक गिरीगव्हर में योगाभ्यास करते रहे। वहाँ उन्हों ने 'वेदान्त आर्य' नामक एक मासिक पत्रिका अँग्रेजी भाषा में शुरू की। भगवद् गीता में १० वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-"यद्यद्विभूति मत्सत्व श्रीमदूजित मेववा। तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंशसंभवम्।" (अर्थात् जो जो भी विभूतियुक्त अर्थात्

ऐश्वर्व युक्त एवं कान्तियुक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान) उपरोक्त कथन आप पर पूर्णतः लागू होता है ।

सिंह (स्वामी रवि Universal father) - राशि चक्र में यह पांचवी राशि है। जिस प्रकार से वन में सिंह पशुओं का राजा है उसी प्रकार मनुष्यों में सिंह राशि राजा है। कर्क राशि ने सिंह को राजा बनाया और आप स्वयं रानी बन बैठी। इस प्रकार दोनों ने मिल कर राज्य का कारोबार देखना शुरू कर दिया। बाद में मंत्रि मंडल नियुक्त किया गया। पहले फौजी विभाग (Military Department) खोला गया और बाद में पुलिस विभाग। लोग सुख शान्ति पूर्वक अपने-अपने व्यवहार करते थे और रात्रि को सुख से नींद लेते। इस समय मानव समाज पर सिंह राशि का अमल था। इस राशि का अमल कुक्षि और उदर पर है।

प्राचीन आचार्यों ने इस राशि का वर्णन इस प्रकार किया है -स्थिर, निर्जल, भूमितलस्थ, अल्पप्रसव, चतुष्पाद, ऊष्ण, रुक्ष, अति तेज दिन की अधिकारी, वन्ध्या, रंग हरा, या लाल, Positive राशि, विषम राशि, दीर्घदेही, पुरुष राशि, पुरुषतत्व, पूर्व दिशा रजोगुणी, पशुराशि अग्नितत्व। रहने की जगह घने जंगल और बड़ी कंदाराएँ, और ऊँचे महल, पिंड प्रकृति का तत्व-तेज। हृदय का तत्व- विश्वास रत्न- मणि और हीरा, रंग-संतरे के समान, धातु-सुवर्ण, राशि का प्रधान गुण-राजा या प्रेसिडेन्ट। शारीरिक दृश्य-अपना तेज प्रकट करना। मानसिक दृश्य-धारणा शक्ति (Retentive Power) मूल स्वभाव-मिलनसार वृत्ति। इस लग्न के लोग शारीरिक कष्ट से दूर रहना चाहते हैं। मजे से खाना, पीना और सोना इसी में अपने जीवन की इतिकर्तव्यता है ऐसी इन की धारणा होती है। ये लोग पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य कर्मों का फल चखते हैं। प्राथमिक जीवन में जब आपदाओं और विपदाओं का सामना करना पड़ता है तो ये परिस्थिति से दो-दो हाथ कर ही लेते हैं। संसार त्याग कर भाग चलने के लिए तैयार नहीं होते। यही कारण है कि ये लोग योगी नहीं हो पाते बल्कि राष्ट्राधिपति के योग्य होते है। पंडित जवाहरलाल

नेहरू सिंह लग्न होने के कारण दो बार राष्ट्राधिपति हो चुके हैं।

कन्या- राशि चक्र में कन्या राशि छटवीं है। सिंह राशि पति है, कर्क पत्नी और कन्या इन की लड़की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राशि चक्र में यह दूसरा परिवार (Family) है ओर इसे राजकीय कुटुम्ब कहते हैं।हम यह देख चुके हैं कि सिंह राशि में राज्य की प्रस्थापना हुई और उस समय कुछ विभाग (Department) भी खोले गये थे। इस के पश्चात् पब्लिक वर्कस् डिपार्टमेंट सेक्रेटेरिएट, जंगल विभाग, ज्योतिष तथा दर्शन शास्त्र, लॅन्ड रेवेन्यू कोड, विज्ञान, केमेस्ट्री, फिजिक्स और सर्व विभाग का प्रादुर्भाव हुआ। इस राशि में सिविल लॉ अस्तित्व में आया। व्यापार की उन्नति हुई, लेन देन के लिए मुद्रा का प्रचार हुआ, जमीनों की खरीदी और बिक्री के व्यवहार भी शुरू हुए और यह व्यवहार रजिस्टर कराने के लिये रजिस्ट्रेशन कोर्ट भी खोले गये। इसी समय से व्यापार और जमीन के लेन देन में लोगों में झगड़े होने लगे। इसी समय समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से चलने के लिए कुछ सामाजिक बंधन समाज पर डाले गये। इस राशि का अमल कमर पर है।

इस राशि में एक बड़ा ही विचित्र गुणधर्म होता है। इस लग्न के लोग या तो कई विवाह करते हैं, या आजन्म अविवाहित रहना पसन्द करते हैं। या तो व्यभिचारी होते हैं या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य जीवन बिताते हैं। ये वेदान्त के विषय में केवल बकवास ही करना जानते है। दूसरों पर विश्वास रखने की इच्छा नहीं होती, चिकित्सा बुद्धि अधिक होती है। नास्तिक होते हुए भी बहुत ढकोसले करते हैं। यही इस राशि का प्रकृति स्वभाव है। इस समय मानव समाज पर कन्या राशि का अमल था। इस राशि का प्राचीन आचार्यों ने जो वर्णन दिया है वह इस प्रकार का है।

द्विस्वभाव, ठंड उदासीन, वन्ध्या, रात्रि की अधिकारी, रंग नीला, काला, अभावात्मक (Negative) राशि पृथ्वीतत्व, जलाश्रयी द्विपाद अल्पप्रसवा, समराशि, दीर्घदेही; स्त्री राशि, स्त्रीत्व, दक्षिण दिशा, मध्यान्ह के समय अन्धस्थिति, तामसी स्वभाव, मनुष्य राशि। रहने की जगह-जंगल, स्त्रियों के

साथ क्रीड़ा करने का स्थान, **प्रकृति का मूल तत्व**-शुद्धता, **हृदय का मूल स्वभाव**-कर्तव्य, रंग-पीला, ज्यास्पर हायसिंथ धातु- पारा, **इस राशि का प्रधान गुण**- कारीगर या समालोचक, **शारीरिक दृश्य**- शारीरिक देखभाल करना, **मानसिक दृश्य**-विवेक, **राशि का मूल स्वभाव**-बहुत विचार करना।

इस लग्न के लोग शारीरिक सुख को अधिक महत्व देते हैं। इसलिए शारीरिक कष्ट नहीं उठाना चाहते। आपदाओं, विपदाओं सें संत्रस्त होकर भागना चाहते हैं। कहीं भी घूमना, खाना पीना और सोना यही इन का जीवन क्रम रहता है। न तो प्रपंच में ही इन का दिल लगता है न परमार्थ में ही, इसलिए इन्हें वैराग्य प्राप्त नहीं होता। वेदान्त पर चर्चा बहुत अच्छी तरह से करते हैं, ईश्वर की उपासना में भी ये दिलचस्पी लेते हैं, फिर भी ये योगी नहीं हो पाते। इन का मन ज्योतिष, उपासना तथा वेदान्त में अधिक रमता है।

इन का स्वभाव बड़ा ही अविश्वासी होता है, कारण ये बड़े ही चिकित्सक होते हैं।

तुला- (स्वामी शुक्र)- राशि चक्र में यह सातवीं राशि है इस राशि का बस्ती पर अमल होता है। हम यह देख चुके हैं कि कन्या राशि में व्यापार की उन्नति हुई और लेन देन के व्यवहार भी बढ़ने लगे थे। इन व्यवहारों में झगड़े उपस्थित होने लगे थे, जिन का फैसला करने के लिए अदालतें अस्तित्व में आईं। धीरे-धीरे लोगों ने कायदे व कानून सीखना शुरू किया, विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ, व्यापार में उन्नति होने लगी।

कायदा व कानून बनाकर स्त्री-पुरुष के सम्बंध दृढ़ किये गये। उसी तरह वैवाहिक बन्धन भी पक्का किया गया। इस राशि में स्त्री-शिक्षा (Women Education) का प्रारंभ हुआ। इस समय शिक्षा के दो प्रकार अस्तित्व में थे। पहला राजकीय और दूसरे वेदान्त, काव्य आदि से सम्बन्धित। पहले

प्रकार के उदाहरण नीचे दिये हुए हैं-छत्रपति श्री शिवाजी महाराज की राजमाता देवी जीजाबाई, पत्नी सईबाई, संभाजी महाराज की पत्नी येसुबाई, तंजावर की महारानी दीपाबाई, महारानी ताराबाई (Founder of The Kolhapur State), झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई, देवी अहिल्याबाई होलकर, उमाबाई दाभाडे, कनार्टक की वीर-वनिता कित्तूर चन्नमा, सावित्रीबाई थानेदारिन, बंगाल की रानी भवानी, मेवाड़ की महारानी कर्णावती, महारानी दुर्गावती, रानी कुरमदेवी, देवलदेवी, जवाहरदेवी, ऋग्वेद में विशपलाखेल नाम की स्त्री, विदुला आदि इन सब स्त्रियों ने राज्यशासन किया है। ये नारियाँ युद्ध कला निपुण थीं। सुलभा मैत्रेयी, गार्गी आदि स्त्रियाँ वेदान्त में प्रवीण थीं। महानुभाव-पंथीय महदांबिका, कमलांबा हिराम्बा, कल्याणदेवी, सीतादेवी, आदि स्त्रियों की गणना कवियित्रियों में थी। उसी तरह दरभंगा की महारानी लक्ष्मीदेवी बड़ी भारी पंडिता थी। इन्होंने एक स्मृति ग्रंथ लिखा है। ये सब दूसरे प्रकार की शिक्षा के उदाहरण हैं। इस समय मानव समाज पर तुला राशि का अमल था। प्राचीन आचार्यों ने इस राशि का वर्णन इस प्रकार दिया है

चर, उष्ण आर्द्र, आरक्त साम्पतिक, मनुष्य राशि, दिन की, रंग काला (Fast blue), भावात्मक (Positive) राशि, वायुतत्व, द्विपाद, निर्जल भूमितलस्थ साधारण प्रसव, वक्तृत्वकारक, विषम राशि, मध्यान्ह के पूर्व में बधिरस्थिति, दीर्घदेही पुरुष राशि, पुरुषतत्व, पश्चिम दिशा, रजोगुणी, पक्षीराशि। **रहने का स्थान**-बड़े बड़े बाजारों में, **वर्ण**-नीला। **रत्न** हीरा और ओपल। **धातु** तांबा, **राशि का प्रधानतत्व**-सौंदर्य। **आत्मा का प्रधान तत्व**-मिलनसार वृत्ति, **शारीरिक दृश्य**-समता, **मानसिक दृश्य**-समतोल वृत्ति (Balanced), **राशि का प्रधान गुणधर्म**- राजनीतिज्ञ, **मेरी राय में**- न्याय देना, इस राशि का अमल त्रिकास्थि पर हैं।

इस राशि में शारीरिक तपश्चर्या करने के योग्य गुणधर्म विद्यमान नहीं हैं। वेदान्त और योगाभ्यास में गुरु के उपदेशों पर विश्वास रखने की आवश्यकता होती है। परन्तु इस राशि में स्वयं विचार करने का तथा वाद-विवाद करने

का स्वभाव होने के कारण इस लग्न के लोग गुरु की बातों पर विश्वास रखने के लिए तैयार नहीं होते। "तपस्य फलमिच्छन्ति, तपनेच्छन्ति मानव" अर्थात् बिना तपश्चर्या के लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए ये योगी नहीं हो पाते, हाँ वेदान्त पर प्रवचन देने में जरूर निपुण होते हैं। यदि सौभाग्य से इन्हें कोई गुरु मिल जाय तो ये राजयोगी हो जाते हैं। यह राशि कुटुंबपति है एवं राशि चक्र में यह तीसरा कुटुम्ब है।

इस लग्न में स्वर्गीय पू. महात्माजी और बंगाल के सुप्रसिद्ध भगवान निमाई उर्फ गौरांगप्रभु पैदा हुए थे। फिर महात्मा जी शान्ति, त्याग और अहिंसा के लिए आमरण भरसक प्रयत्न करते रहे तथा उपवास द्वारा अपने शरीर को बहुत कष्ट देते थे। किन्तु वे योगी नहीं थे।

वृश्चिक (स्वामी मंगल)-राशि चक्र में वृश्चिक आठवीं राशि है। इस राशि में युद्ध करना तथा दूसरों पर अमल करना आदि गुणधर्म पाये जाते हैं। इस समय रसायन शास्त्र में प्रगति हुई, शारीरिक शास्त्र (Anatomy) व कुछ अन्य रसायन शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। औषधि विज्ञान (medical science) में अनुसन्धान होने लगे थे और इन्जेक्शन का आविष्कार किया गया था। अब मानव समाज प्रगति के पथ पर एक-एक कदम आगे बढ़ने लगा था। पति (तुला राशि) का संसार करते-करते वृश्चिक राशि ऊब गई, कई आपदाओं और विपदाओं का सामना किया, विविध कष्ट सहन किये, किन्तु उसे शान्ति-लाभ न हुआ। इस से हृदय में वैराग्य भाव जागृत हुए और वह जंगल में जा बसी। इस समय मानव समाज पर वृश्चिक राशि का अमल था। इस राशि का अमल गुदा और लिंग पर है।

इस राशि का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार किया है-स्थिर-ठंड रात्रि की राशि, कफात्मक, रंग-पीला, विष की राशि, Negative जलतत्व, जलचर, (मेरी राय में निर्जल भूमितलस्थ), बहुप्रसव मूक राशि, सम राशि, दोपहर के पहले बधिर, दीर्घ देही स्त्री राशि, स्त्रीत्व, उत्तर दिशा, तामसी, कटि राशि, **निवास स्थान**, पत्थर के नीचे, घर के कोने में **वर्ण**-काला और हरा मिश्रित, **राशि का प्रधान गुणधर्म**-न्याय, हृदय का तत्व-सत्ता

रत्न-टोपाझ मेलाचिट, धातु-फौलाद, शारीरिक दृश्य-क्रोध में जलना (To burn with fury) मानसिक दृश्य- निश्चय, निग्रह, राशि का प्रधान लक्षण-इन्स्पेक्टर और गवर्नर, राशि का मूल स्वभाव-कष्ट सहन करना हठ और निग्रह ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस राशि का मूल स्वभाव कष्ट उठाना है। शान्ति प्राप्त करने के लिए यह राशि जंगल में जा कर हठ योग का अभ्यास करती है । हठ योग के अभ्यास से आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता है । इस राशि के लोग आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धौती आदि शारीरिक व्यायाम कर कुंडलिनी को जगाते हैं । किन्तु इस से इन्हें आत्म ज्ञान नहीं मिलता । भगवद्गीता में ठीक ही कहा गया है -"मनुष्याणां सहस्रेषु : कश्चिद्यतति सिद्धये । यततां मपि सिद्धांना कश्चिन्मांवेत्ति तत्वतः ॥" अर्थात् हजारों लोग परमार्थ मार्ग का अवलंब करते हैं किन्तु उन में से विरला ही सिद्ध पुरुष होता है, ऐसे हजारों सिद्ध पुरुषों में कोई ही एकाध पुरुष मुझे जान पाता है ।

उपरोक्त विवेचन से एक बात सुस्पष्ट होती है कि कुण्डलिनी को जगाने (ऊर्ध्वगति देकर) एवं ब्रह्मरन्ध्र में उसे स्थिर करने के बाद ही योगी आत्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य होता है । इस राशि के योगी दाढ़ी, जटा बढ़ाते हैं, शरीर पर भस्म लगाते हैं और ध्यान लगा कर बैठते हैं किन्तु ये आत्मज्ञान पाने के पात्र नहीं होते ।

धनु राशि (स्वामी गुरु)- राशि चक्र में यह नववीं राशि है । मानव समाज शनैः शनैः शास्त्रों में प्रगति प्राप्त करता चला और P.h.D.D.Litt, D.Sc. L.L.D, M.D,D.S. ऐसी विशेष योग्यताएँ भी उस ने प्राप्त कीं । इस राशि में ज्ञान की परिणत अवस्था को मनुष्य प्राप्त होता है । वृश्चिक में हठयोग कर मानव प्राणी थक जाते हैं किन्तु कई जन्मों के उपरांत ही उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है ।"बहुना जन्म ना मन्ते ज्ञान वान्मां प्रपद्यते" वेदान्त के ज्ञानार्जन से ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है; हठयोग से नहीं । जब मानव प्राणी को हठयोग कर के ज्ञान प्राप्त नही हुआ तब उसे गुरु मिले और उन्हों ने "ॐ तत्सत्"

यह मंत्र दिया । प्राचीन काल में जब शास्त्रोंका अध्ययन कर लोग शास्त्र पारंगत होते थे तब उन्हें आचार्य, न्यायतीर्थ, तर्करत्न, पंचानन, आदि उपाधियाँ दी जाती थीं । यह राशि जंघा पर अमल करती है ।

इस राशि का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार से किया है- द्विस्वभाव, द्विपाद, निर्जल भूमितलस्थ, अग्नितत्व, उष्ण, रुक्ष, दिन की राशि, रंग-हरा और लाल मिश्रित Positive वन्ध्य (Barren) द्विशरीरी, विषम राशि, पुरुष राशि, पुरुषतत्व, दोपहर के बाद बधिरावस्था, राशि की संधि (Jount) में पंगु, मध्यमदेही पूर्व दिशा, सत्वगुणी, निवास स्थान, अश्व, गज, रथशाला, **प्रधानतत्व,-**ज्ञान, हृदय का **गुणधर्म-** कानून और आजादी । रत्न-कारबंकल टर्काइज, रंग-सफेद या नीला । **धातु-**टीन । **शारीरिक दृश्य-**भटकना । **मानसिक दृश्य-**नवनवोन्मेष शाली । **प्रधान लक्षण-**साधु या गवर्नर जनरल, **राशि का मूल स्वभाव** - ज्ञान और पशुवृत्ति ।

हम देखते है कि वृश्चिक राशि में हजारों मनुष्यों मे कोई एकाध ही मनुष्य परमेश्वर प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई एक पुरुष परमेश्वर के यथार्थ मर्म को जान पाता है । ऐसे लोग जो परमेश्वर प्राप्ति के यत्न करते हैं, सिद्धि प्राप्त करने के बाद भी कनक कामिनीकी वासना न मिटने के कारण पुनः प्रापंचिक उलझनों में उलझ जाते हैं जिस का नतीजा यह होता है कि वे योग भ्रष्ट होते हैं । इस तरह योग भ्रष्ट हुए पुरुष शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेते हैं 'शुचिनां श्रीमंता गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते' । इसका अर्थ यह होता है कि योग भ्रष्ट होने के बाद उन के मन में स्त्री भोग की लालसा अतृप्त रह जाती है और उसे पूर्ण करने के लिए वे ऐसे घर में जन्म लेते हैं । फिर बाल्य काल से ही स्त्रियों के साथ पशु के समान (He goat, male, dog a bull not castrated) बर्ताव करते हैं । पशुओं के समान कामी होकर अनेक स्त्रियों के पीछे लगते है । इस जन्म में इतना ही कार्य करते हैं और अन्त में देहावसान होने के बाद फिर से नया जन्म प्राप्त करते हैं ।अनेकों जन्मजन्मातर से ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न करते-करते थकते हैं; फिर भी उनके हृदय में ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा प्रज्वलित ही रहती है । इसी कारण वे अन्त में जन्मजात (Born) ज्ञानी

होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस राशि में दोंनो ही गुणधर्म (ज्ञान और पशुवृत्ति) विद्यमान हैं। इस राशि का पिंड स्वभाव जन्म जात होता है; कष्टसाध्य नहीं (Born not made)!

तुला राशि पति, वृश्चिक पत्नी और धनु पुत्र है। इसीलिए तुला राशि और वृश्चिक राशि के गुणधर्म धनु राशि में उत्तर गये हैं। विश्व कुटुम्ब में यह तीसरा कुटुम्ब है और यह कुटुम्ब परमार्थी होता है।

मकर राशि (स्वामी शानि) राशि चक्र में यह दसवीं राशि है। कर्क और सिंह इन दो राशियों ने राज्यों की स्थापना की; तो मकर राशि में साम्राज्य विस्तार की लालसा उत्पन्न हुई और उसने साम्राज्य बढ़ाना आरंभ किया। पाश्चात्य लेखक W.C.Taylor ने अपने Ancient History of Greece नामक ग्रंथ में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है। प्राचीन काल में हिन्दू लोग सारे संसार में बसे हुए थे। एक भी ऐसा प्रदेश बाकी न था जहाँ ये लोग न बसे हुए हों। फिर यह बड़े अचरज की बात है कि यदि इन्हें जलयान (Ship) मालूम न था, तो ये लोग समुद्र मार्ग से दूसरे देशों को किस प्रकार से गये ?

मानव-समाज के कल्याण के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ अस्तित्व में आईं, धर्म में पंथ निर्माण हुए लेकिन ये कलह के कारण हुए। कर्मकांड प्रचार में आया। ज्ञान का मार्ग अवरुद्ध हुआ। इसी समय एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया कि जिस ने पुनः कर्म योग का प्रचार किया। Elinor Kirk अपने ग्रंथ में लिखते हैं - "Best benefactor of the world come from this sign' विदेश से व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ने लगे यहाँ तक कि परराष्ट्र मंत्री (Foreign Minister) का ऑफिस खोला गया। राज्य में बहुत से सुधार किये गये। इस समय मानव समाज पर मकर राशि का प्रभाव था।

प्राचीन आचार्यों ने इस राशि का स्वरूप वर्णन इस प्रकार का किया है :- चर,ठंड,रुक्ष, रात्रि की राशि, उदासीन, रंग-काला या पीला, अभावात्मक (Negative) जल राशि, चतुष्पाद,जल चर, साधारण प्रसव राशि, समराशि, स्त्री राशि, स्त्री तत्व, मध्यान्ह के बाद बधिर। राशि की सन्धि में पंगु, मध्यम

देही, दक्षिण दिशा-जानु पर अमल करती है, तामसी, पशु राशि, (मेरी राय में यह किट राशि है । पाश्चात्य ज्योतिषी इसे भूमि राशि मानते हैं । आर्य ज्योतिष शास्त्र में इसे जल राशि माना गया है । मुझे यही ठीक जँचता हैं; पाश्चात्य मत से मैं सहमत नही हूँ । उसी तरह से पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्रकारों ने वृश्चिक राशि को जल राशि कहा है जो कि मेरी राय में भूमि राशि है) निवास स्थान-नदी और समुद्र, इस राशिका **प्रधान** तत्त्व-श्रद्धा, हृदय **का गुणधर्म**-He wants fineness in every thing (अर्थात् वह हर एक चीज में सुधार चाहता है) रत्न- आइंक्स मून स्टोन, रंग-हरा,धातु-शीसा **शारीरिक** दृश्य-स्पूर्तिप्रद, **मानसिक** दृश्य-एकाग्र चित्तवृत्ति,राशि का **प्रधान लक्षण**- परराष्ट्रीय वकील, राशिका **मूल स्वभाव**- हर एक कार्य में अग्रस्थान प्राप्त करना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस राशि में लोग किसी भी बात पर विश्वास नहीं रखना चाहते । इन के खाने के दाँत अलग होते हैं और दिखलाने के अलग । सुखासीन वृत्ति होने के कारण विपत्तियाँ आने पर घर में बैठे-बैठे आंसू ढालते हैं । घर छोड़ कर भागने की इच्छा नहीं होती बल्कि आत्महत्या के विचार मन में आते हैं । यही कारण है कि इस राशि में वैराग्य प्राप्त नहीं होता । ये लोग अति अहंकारी होते हैं ; खुद को महापंडित समझते हैं । इसी कारण ये योगी नहीं हो पाते और परमेश्वर प्राप्ति का मार्ग पाने में असफल रहते हैं । ये बहुत लोभी और स्वार्थी होते हैं । यह चर्चिल तथा दुर्योधन के से स्वभाव-वाले होते हैं । हाँ, यदि इन में दैवी गुणधर्म आ जायँ तो आधिभौतिक दृष्टि से संसार का कल्याण करते हैं अन्य था दुनिया का नाश करते हैं । ये लोग बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते और चमत्कार बतलाते, फिर पैसा,धन इकठ्ठा करते हैं । आत्मज्ञान से वंचित रहते हैं ।

कुंभ (स्वामी शनि)- राशि चक्र में यह ग्यारहवीं राशि है । मकर राशि के अन्त तक संसार में सारे क्षेत्र में उन्नति हो चुकी थी । सभी प्रकार के ज्ञान लोग प्राप्त कर चुक थे । वृश्चिक राशि में हठयोग और योग बल से सिद्धि, धनु राशि में ज्ञान, मकर में कर्मयोग, इन सब का संयोग राजयोग में होता है । इस राशि में यही राजयोग भोगता पड़ता है । अन्त में लोभ व मोह के वशीभूत

हो कर फिर से जन्म लेते हैं और सारा ज्ञान खो बैठते हैं एवं स्वार्थ मय हो कर अज्ञानियों की तरह बर्ताव करते हैं। मेरी राय में यह निष्क्रिय जड़ व उदासीन राशि है। इस समय मानव समाज पर कुंभ राशि का प्रभाव था।

प्राचीन आचार्यों ने इस राशि का वर्णन इस प्रकार किया है:-स्थिर, उष्ण,आर्द्र, दिन की राशि, रंग-आस्मानी (sky blue), भावात्मक (positive), द्विपाद, वायुतत्व, जलाश्रयी साधारण प्रसव राशि, विषम राशि, ऱ्हस्वदेही, पुरुष राशि, पुरुषतत्व, पिंडलियाँ तामसी, वक्तृत्त्व शाली, मनुष्य राशि, **रहने की जगह**-जल के समीप, **राशिका प्रधान तत्व**-सत्य, **हृदय का गुणधर्म**-अनु सन्धान करना। रत्न-नील और ओपल। रंग काला,लाल। धातु-अल्युमिनियम, शारीरिक दृश्य-तल्लीन होना, **मानसिक दृश्य**-नवीन चीजों का अन्वेषण करना, **इस राशि का प्रधान लक्षण**-शास्त्रज्ञ, **राशि का मूल स्वभाव**-मानवता (Humanity)

हम देखते हैं कि यह राशि अपने को स्वयंपूर्ण और ज्ञानी समझती है व दूसरों पर विश्वास रखना नहीं चाहती। शारीरिक परिश्रमों से दूर भागती है। ये लोग वादविवाद करने वाले (Argumentative) होने कारण योगी नहीं हो पाते। विज्ञान केमिस्ट्री और फिजिक्स इन शास्त्रों में ये लोग बहुत ही कम पाये जाते है।

मीन (स्वामी गुरु)- सृष्टि का नियम ही ऐसा है कि शान्ति के बाद क्रान्ति और निष्क्रियता के बाद सक्रियता का परिवर्तन हुआ करता है। इसी तरह इस राशि में पुनः जोरों से अन्वेषण होने लगे। मानव प्राणी पंचमहाभूतों पर विजय प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करने लगे। धीरे- धीरे रेडियो, हवाई जहाज, मोटर रेल्वे, तारयंत्र, चित्रपट आदि आविष्कारों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी तरह मानव-जाति ने बम, ऐटमबम, तोप, टाइमबम, ब्रेनगन,स्टेनगन, मारटर्स,लड़ाकू जहाज, लडाकू नौयान आदि बड़े-बड़े संहार अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार किया। इस राशि में प्रलय के गुणधर्म विद्यमान होने के कारण स्वाभाविक ही पुरानी सृष्टि का विसर्जन कर नई सृष्टि का निर्माण करने की मानवी प्रवृत्ति अंतर्निहित है। इस राशि का एक और विशेष गुणधर्म ऐसा है

कि जिस दशा में पहले मानव समाज था, उसी दिशा में मानव समाज को ले जाने (Back to Nature) का प्रयत्न करती है। हम देखते हैं कि आधुनिक युग में नग्नवाद (Nadism) का काफी बोलबाला हो रहा है। इस प्रकार से यह राशि संसार को प्रलयावस्था की ओर ले जा रही है। एक अँग्रेजी ग्रन्थकार-सर जान वूड्राफ्फ (Sir John Woodroff) कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश, अपने Is India Civilized?'' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं-"Civilization and barbarism are giong hand by hand'। इस प्रलया वस्था पर मीन राशि का प्रभाव है। हाल में मानव समाज पर इस राशि का अमल चल रहा है और यह सन २१०० साल तक अमल रहेगा।

प्राचीन ग्रन्थों में इस राशि का वर्णन इस प्रकार से किया गया है-द्विस्वभाव, ठंड, फलप्रद, कफात्मक, रात्रि की राशि, अभावात्मक (Negative), जलतत्व बहुप्रसव, मध्यमदेही, उत्तर दिशा, पैर पर अमल करती है। सम राशि, स्त्री राशि; स्त्रीत्व कीट राशि, सत्वगुणी, निवास स्थान-जलाशय समुद्र या नदी, मूक राशि, द्विशरीरी। इस राशि का प्रधान तत्त्व - प्रेम। हृदय तत्त्व-एकता (Unity) रत्न- क्रिसोलाईट और मूनस्टोन,रंग फीका सफेद, धातु अल्युमिनियम, शारीरिक दृश्य आर्द्रता, मानसिक दृश्य- अन्तर्ज्ञान, मूल स्वभाव- परमार्थी, राशि का मुख्य तत्त्व-पारमार्थिक विचारों में निरत।

हम देखते हैं कि इसमें राशि के लग्न के लोगों का स्वभाव सागर के समान होता है -बाहर से सागर की लहरों सा चंचल किंतु भीतर से सागर के समान शान्त, गंभीर व स्थिर होता है। ये विश्वास के योग्य, भक्तिभाव और गुरुपर श्रद्धा रखनेवाले होते हैं। इस राशि में दो प्रकार के लोग पाये जाते हैं-एक आजन्म अविवाहित अर्थात् विषय सुखों का पूर्णतः त्याग करने वाले और दूसरे व्यसनाधीन। यह राशि हर एक चीज का लय करने वाली राशि है। दूसरा गुणधर्म ऐसा है कि इस राशि के व्यक्ति जिस किसी भी विषय में अपना ध्यान देते हैं उस में शारीरिक आसक्ति छोड़कर तन्मय हो जाते हैं। यही कारण है कि ये योगी, संन्यासी, भक्तियोगी होते है और विदेही स्थिति प्राप्त कर लेते

हैं। इस राशि में अनासक्ति-योग होने के कारण काव्य, गायन, योग आदि बातों में जिस में अन्तःस्फूर्ति से काम लिया जाता है, ये लोग पारंगत होते है।

कुंभ पति है, मकर पत्नी है ओर मीन लड़की है। इस प्रकार से राशि चक्र में यह चौथा कुटुंब है। इस राशि चक्र के चारों कुटुंबों से विश्व का नाटक खेला जा रहा है। इस परिच्छेद में की गई चर्चा के अवलोकन से पाठकों को यह दिखलाई देगा कि केवल चार राशियाँ-कर्क, वृश्चिक, धनु एवं मीन, वेदान्त, योगमार्ग, भक्तिमार्ग तथा मोक्षमार्ग के योग्य हैं शेष नहीं।

राशि अथवा भाव के दृष्य

मेष-एक बहुत बड़ा शुभ्र उजले वर्ण का छोटे सींग वाला, मोटे कंधे का; जिस की आँखे लाल-लाल हैं। जिस की शान मन को लुभाने वाली है। किसी पर्वत के ऊँचे शिखर पर सूर्याभिमुख होकर अभिमान के साथ दुनिया की ओर देख रहा हैं परंतु उस की ओर कोई नहीं देखता।

वृषभ- एक बहुत पुराना; कम से कम पाँच हजार वर्ष का, अति प्राचीन वटवृक्ष नदी के तट पर खड़ा है। उस की छाया में एक बाघ तथा गाय, एक दूसरे के सामने बैठकर आनंद से विश्राम कर रहे हैं।

मिथुन- हर घंटे में रंग बदलने वाला गिरगिट।

जिन को बारह राशियों पर वेदान्त दृष्टि से अधिक देखने की अभिलाषा है उन्हें नीचे दिये हुए ग्रंथोंपर विशेष ध्यान देना चाहिए यह विज्ञप्ति है।

1 The Esoteric Astrology by Alan Leo. 2 The Elementry of Esoteric Astrology by A.F. Thierens, Ph.D. 3. The Esoteric Astrology by Alvidas, 4. Secret Doctrins by Madam Blavatasky. 5 The Pathway of the Soul by Hanery J.Van Stone.

कर्क :- दो मुख तथा सात हाथ वाला एक मनुष्य खड़ा है। हँसते हुए एक मुँह से कुछ खा रहा है और दूसरा मुँह क्रोध में तमतमा रहा है।

सिंह- कोई सुंदर अर्ध अधिक उम्र की स्त्री अपने छः सात महीने के बच्चे के साथ प्रेम से खेल रही है, वह बच्चे को बड़े आनंद के साथ देख रही है। और बार बार उस का चुंबन लिया करती है। उस स्त्री का पति यह सब देखता हुआ आनंद से आराम कुर्सी पर लेटा हुआ है।

कन्या- इस में मुझे केवल अत्यंत तेजस्वी सूर्य दृष्टिगोचर होता है। किन्तु उसका प्रकाश नहीं।

तूल- किसी धर्मशाला (मुसाफिर खाने में) के बीच बहुत से आदमी इकठ्ठे होकर बिना किसी कारण के धूमधाम मचा रहे हैं। ये सब लोग रेलगाड़ी में बैठ कर बहुत लंबे सफर के लिए निकले थे। गाड़ी बहुत से चक्कर काटती हुई आगे बढ़ी परंतु फिर से कुछ देर बाद वह स्थल, वे ही लोग और वही रेलगाड़ी जैसे थे वैसे ही देख रहा हूँ।

वृश्चिक- इस में मुझे स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं दीख पड़ता, केवल नौ का केंद्र ९९९ दृष्टिगोचर होता है।

धनु- एक अति तेजस्वी प्रकाश, यह प्रकाश सूर्य का नहीं है और न चंद्र का। ऐसे प्रकाश में एक बकरा अपनी कामेच्छा तृप्त करने के हेतु दूसरे बकरे पर चढ़ा है। लेकिन इतने ही में किसी एक शिकारी ने यह देख कर झट गोली चलाई और वह बकरा वहीं ढेर हो गया।

मकर- एक पागल कुछ सामान इकठ्ठा कर रहा है।

कुंभ- किसी नवजवान बालक की नामकरण विधि हुई। उस समारोह में हजारों स्त्रियाँ इकठ्ठी हुई थी। उस बालक का नाम "विकास" रखा गया।

मीन- एक बड़ी भारी जल भरी हुई नदी बह रही थी। पुराणों में राक्षसों का जो वर्णन किया गया है वैसे किसी एक भयानक राक्षस का मुन्ड उस नदी में बहुता हुआ आया। "मुझे पानी पिलाओ कुछ खाने को दो" इस प्रकार उस मुन्ड ने चिल्लाहट शुरू की। मैं उस मुन्ड को पानी पिलाने और

कुछ खिलाने के लिए उसके पास गया। इतने ही मे वह मुन्ड भयंकर विकट हास्य से हँसने लगा और हँसते-हँसते अदृश्य हो गया। नदी का पानी सूख गया। वहाँ कुछ खाने-पीने तक के लिए नहीं रहा।

ऊपर हम ने बारह राशियों का जो दृश्य दिया है, इस का वेदान्त की दृष्टि से क्या अर्थ होता है, इस की जाँच पाठकगण अपने मन में करें, यह नम्र निवेदन है।

SPIRAL OF EVOLUTION

I

Its etheric inpetus which, in the first house represents the solar impulse as well as Lunar note, will stamp, colour and attune the personality and, by element, and degree of Zodiacal sign, define the temperament; with it a good of physical and psychic health, as well as the way in which personality faces things and starts into action Initiative.

II

The magnetic conditions accompanying the personality are to be found in the second house and represent such quantities and species of the magnetic field of matter as are mastered by the personal self the mastership appearing from the fact that these magnetic conditions are actually brought down by the personal self or coupled with it.The quality inparted by these conditions is artistically, the degree and perticular line of which is shown by the element and degree of the Zodiacal sign on the cusp, the planatary ruler of it and planets in the house itself. Where and so far as artisticity is wanting, man is the slave of matter.

III

The dualism of the personal self, opening to the sound of not-self engenders intelligence and co-respondence; This is the significance of the Third house.

IV

As soon as co-respondence is awakened, the Imagination, i.e. the "how" on the substantial reflexion, comes to life together with it and, on account of the value of the preceding lunar horoscope; this fourth house, because house of the lunar sign cancer holds the faculty of memory and sole motives which will govern the actions; memories from former life conscious or subconscious and greatest memory of all Dharm or inner duty.

V

Inner duty compels the will, like further on, the imagination will prove to be the matter of the wish and to govern the direction of the will. which, in the world of matter, being bound to an object, is no more, 'will' pure; but still holds creative power. This and the specifications of the same, are indicated by the fifth house.

VI

The materials with which the will chooses to work or which it has to accept in this world and in the present incarnation, decide the lines of work and the ways in which the personal self can make its effort useful and remunerative. This is to be found in the sixth house.

VII

The work chosen decides the relations laid or contracted between the Self and the Not-Self, with the world around, and the rules set up, by the personal self for its conduct towards other people; these rules will preside over the partnership (marriage) and anta-

gonisms in life; Seventh house. It may finally mean that which is to drop away and the manner in which the life is ended.

VIII

The relations again decide the experience earned and antagonism drives the personal self back from its expression throws it back upon itself; in both cases experience is gained. If the relations favourise the effiorts of the self, the results of the eighth house enjoying on the other hand being thrown back generally means sufferings. So in a general way and in the first place this house indicates the lesson which life has in store for us. The final drive back means death.

IX

Experience and the sentiment of it decide the expressions and manifestations of the personal self, first in the world of thought. Thus the ninenth house holds the perosnal pushing power and the expression of desires and wishes. The way in which this is done is seen by the conditions of the house, zodiacal and planetary.

X

Expression and menifestation in the world of facts follows, and the personal attitude, its actual deeds and menifestations in the world are given by the tenth house. This again decides the social positions because, it is made up or merited by what we do.

XI

That which surpasses the personal doing, is in the first place the environment and our influence upon it, going out from the personality decides the people, whom we meet and, as Aquaries 'reacts in the right

way' so the eleventh house indicates the people who will understand us.

XII

In the same way the twelfth house holds indication about the people who do not understand us or who react in the wrong way and will undo our efforts as far as they can. It indicates further way in which we will retire from the world and the susceptibility to corruption, as well as the solution of the life's problem.

ṢIGNIFICATIONS OF HOUSE

I HOUSE

Aries:- the Self or the thing itself, beginning, initiative the etheric impetus, consequently, in human and other living being the expression of the etheric body this gives the tone in which the being is stringed and which is the best possible expression of the higher Self or Ego, have an Earth for the time.

II HOUSE

Taurus:- the material ground or field of action in which the Self or thing itself is implanted, embeded, rooted, upon which it lives and from which it draws, but which it rules at the same moment this means possession (capital)

III HOUSE

Gemini :- dualism to be or not to be the intellegence or intellectual motive in the Self or the thing itself.

IV HOUSE

Cancer:- doubling the germ into a masculine and a feminie half thereby by opening two possibilities leading out from the Self.

V HOUSE

Leo:- the choice is made and will power incarnate, consequently the power behind coming action.

VI HOUSE

Virgo:- the material means with which the creative power is associated and connected to work, the ways it will go and the detailed conditions with which it is bound up.

VII HOUSE

Libra:- the other of the Self the thing we have to compete with, the aim which the self or the thing itself has to reach, and eternal problem of equilibrium with regard to the particular instance, consequently partnership, the law, the relation between the Self or the things its opposite, possibilities of execution, and realisation decline or manifestation.

VIII HOUSE

Scorpio:- the thirst, the desire, or demand in the Self or the thing, and in consequence of this the way in which experience is sought and to the found, the school that is wanting and which is wished for the hidden motive.

IX HOUSE

Sagittarius:- the thinking of the Self and the Self expression of the thing the influence going out, Ideal or Idea, open expression of the aim, the force of Self renewal.

X HOUSE

Capricorn:- the deed or action of the Self, circumscribed and concrete appearance by which the Self or the thing itself may be known to the outer

world; entry personality, name, title position, or place in the world also the definitions or circumscriptions this world impose and authorities which represent them, the coming event.

XI HOUSE

Aquarius :- the co-operating surroundings of the appearing fact or personality, that which will help and that which will carry on the same; reaction in a friendly way or direct line, including understanding.

XII HOUSE

Pisces :- the final solutions of problems, but also solutions of existence from a certain form or definition, Consequently that which is inimical to the outer existence or the separete self and fact etc; reaction in the converse or wrong way by lack of understanding.

ARIES

Aviďya:- a blind she-camel, conducted by a driver who represents Karma; the camel vividly suggests the long and trying journey of the unconscious.Will across the desert vally or the shadow of Death.
Comment (by writer) :- And the Ascendent at every new birth being the outcome of Karma.

TAURUS

Samskaras : "A Potter moulding the clay on his wheel" Can note The Clay of the universal soil (e.g.of a solar syṣtem) being moulded into froms by rotatary motion and cyclic evolution.

GEMINI

Vijnana :- "Monkey" compare, Hanuman, and Osiris" servants.

CANCER

Namarupa:- " a doctor feeling a sick man's pulse : the pulse denotes the individuality, or the distinction between the Self and the Not-Self; variant a man shipped across an ocean." Comment : The human should carried into Earth life by the "Ship", or Matrix

LEO

Sadayatana:- A human face mask with a pair of large holes through which the eyes are radiating at this stage seems tq be effected the full union of the hither to passive will with the active coefficients of a human Nature.

VIRGO

Sparsha :-Kissing : Variant a man holding a plough; Comment : The sign of sensing and of work; compares the Lover's card of the Tart.

LIBRA

Vedana :- An arrow hitting the eye of an eye. Commentary: It means the arrow of light preceived by the organ created from and for the light; compare Pletiuns Libra is the organic body.

SCORPIO

Trishna : " A man drinking wine", Comment: The Spiritual liquor from the seed and fruit of natural vegetation, consequently elixir, extract of Natural experience.

SAGITTARIUS

Upadana :-"A man cutting fruits and gathering them into a large basket. Comment : The hunter for results cutting the fruits of the causes set to work by previously.

The symbol implies a previous sowing of the seed or scaring of the tree.

CAPRICORN

Bhava :- "a married woman" the wife of individual, whose life-history is being traced. Comment : It means above all the " personality" or personal mould " married to the Ego"; Compare the legend of Arjuna and his Four brother all married to one woman.

AQUARIUS.

Jati :-"A father with a child, it is the maturing of the man's life by the birth or a heir, and a result of the married existence in the tenth stage." Comment : Also the symbol of the carring on humanity and human thought.

PISCES

Jaramaranam :-"A body that is being carried away to be burnt." Comment : The end of physical existence and its solution into the other again.

ARIES (SPIRIT)

Fire Potential : Universal Spirit, Origin and Subjective being absolute positivity, Will Supreme; Initiative. The Eternal Father (Parabrahman)

TAURUS (MATTER)

Earth Potential. Universal Matter, foundation and Objective being; Negative absoluteness, Possession, Supreme : Eternal Mother (Moolaprakriti)

GEMINI (LIFE)

Air Potential Universal Life. Absolute relativity, Positive duality, (fohat)

CANCER (SUBSTANCE)

Water potential, Universal substance, relative absolutencess negative duality (Svabhavat)

LEO (PRESENCE)

Fire Ideal, Universal presence, which means origin of individual being, subjective, Individual centre and, as far as dimension enters into being, infinitely small; Source of oneness in creation and of love with man. The Divine Spark (Atma)

VIRGO (CONSCIOUSNESS)

Earth Ideal, Universal consciousness, which means foundation of individual being - objective, individual atom circumference of the infinitely small spark; source of multifarousness, and atomicity, Source of sensation in Man. Virgin Matter.

LIBRA (RELATION)

Air Ideal, Universal Relation Consequently Law, as the relationship between the One and the manifold, which is the source of Geometry and of Wisdom with Man, Life of the Soul (Buddhi)

SCORPIO (CONDITION)

Water Idia; Universal Condition, by the attraction and binding of one and the Many together; Cosmic substance impregnated with will, Source of Desire in Man Spiritual Heaven.

SAGITTARIUS (MOTION)

Fire real, Universal Motion, consequently in every instance coupled with direction, Origin of causality and inspiration, thinking and intelligence in Man; execution of the will by moving to the Aim. This means Thought (Mahat, Higher Man-as)

CAPRICORN (FORM)

Earth real; Universal Formation, principles of resultant effect circumference of that which was made by motion; physics have proved in the electron theory that motion builds the form of the atom practically, foundation of separateness and of personality (Ahamkar Lower Manas)

AQUARIUS (APPEARANCE)

Air real; Universal Manifestation, Origin of all cosmic induction and inter-relation; pouring out of the life into the form and life within the form. Origin of intellegent life in Man, which is " Human nature", The Astral Light.

PISCES (EXPERIENCE)

Water real, Universal experience: Cosmic substance out of which thought, by impregnating it, creates form, Consequently substantial relation between the universal and the particular and therefore source of Feeling in Man. The Cosmic Ocean-

Elements of Esoteric
Astrology
Dr. A.F. Thierens Ph. D.
Pages 36-37 & 38.

The Motto and Chief Characteristics of Every Sign

Aries : Truth, Initative, Simplicity and Assertiveness.
Taurus :- Faith, Richness, Vastness, Solidity,
Gemini :- Knowledge, Comumication, Speed, Dualism, Reproduction,
Cancer : Protection, Gathering, Reflextion
Leo :- Power, All-roundness,.Rediance, and Commanding Spirit.

Virgo :- Service, Differentiation, Utility, Ability, Discrimination.
Libra :- Equilibrium, Harmony, Law, and Mutual Relationship.
Scorpio :- Generation, Experience, Exploration Exhortation.
Sagittarius :- Manifestation, Idealism, Execution and sympathy,
Capricorn :- Excellence, Orderliness, Obedience, Comprehensibleness.
Aquarius :- Interdependency, Friendliness, Reasonableness, Many sidedness.
Pisces :- Solution or Sacrifice, Animation, Fulfilment, Communism.

O तेज
O वायु
O जल
O पृथ्वी

यह मेषादि राशि संस्था हमारे हिंदू तत्वज्ञान में नहीं बैठ सकती । इस का कारण यह है कि वेदान्त में मानवी शरीर की उत्पत्ति पंचमहाभूतों से हुई है । आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पंचमहाभूत हैं । हमारा प्राचीन आयुर्वेद भी इस मत से सहमत है । फिर यह राशि चक्र चार तत्त्वों से बना हुआ है । आकाश तत्व राशि में नहीं है । कई विद्वानों ने लिखा है कि इस राशि चक्र की उत्पत्ति अरबस्तान और यूनान में हुई है । अरबस्तान में दूसरा एक शास्त्र बहुत पुराना है उसका नाम है रमल । इस रमल में सोलह शकल होते हैं । इस रमल की उत्पत्ति भी चार तत्वों पर हुई है । तेज, वायु, जल, पृथ्वी, इस में भी आकाश तत्व नहीं है । नीचे देखिये रमल कैसे पैदा हुआ । रमल पैदा हुआ पूर्णिमा से । हर एक तत्व को एक एक बिंदु रख दिया इस तरीके से पहले एक शकल तैयार की गई ।

इस का नाम रखा गया "तरीख" । यह शकल पूर्णिमा बताता है। आगे एकएक बिंदु के सामने दूसरा बिंदु रख, दिये उस से जमात शकल बनाया गया । देखिये इस जगह पर Geometry का सिद्धांत लगता है।

O O
O O
O O
O O

Point + Point make a line इसी सिद्धांत से यह जमात शकल बन गया । यह शकल अमावस्या दर्शाती है । इन दो शकलों से दुनिया पैदा हो गयी ।

O O = -
O O = -
O O = -
O O = -

} ☰ यह बना जमात शकल

इस से यह ज्ञान होता है कि अरब और यूनान के लोग वेदान्त में चार तत्व को मानते हैं । आकाश तत्व को नहीं मानते । इस कारण यह राशि चक्र हमारे वेदान्त में नहीं बैठता । पाश्चिमात्य ज्योतिषी Alan Leo, Dr. Thierens and Hanery, J. Van Stone इन्होने जो Esoteric Astrology लिखी है उस में सब बुद्ध धर्म के वेदान्त का सहारा लिया है। ये ज्योतिषी बुद्ध फिलासॉफी के कट्टर अनुयायी होते हुए भी Theosophist कहलाते हैं। इन लोगों ने बारह राशियों का जो वर्णन दिया है वह सब अँग्रेजी भाषा में जैसा है वैसा ही हम ने इस परिच्छेद के आखिर में दिया है ।

परिच्छेद तेरहवाँ

राशियों के स्वभाव

मेषादि बारह लग्नों में हरएक राशि में तीन प्रकार के स्वभाव-गुणधर्म पाये जाते है :- सात्विक, राजसी और तामसी। इस के और भी भेद होते हैं। सत्व में दो भेद हैं - एक ईश्वरी, दूसरा दैवी। रज में दो भेद हैं - एक मानवीय और दूसरा पैशाचिक। तम एक प्रकार का होता है।

(१) **ईश्वरी गुणमर्ध-** असामान्य गुणधर्म जिस में ईश्वर का विभूतित्व अधिक होता है। केवल इतना ही नहीं, लोग तो ऐसे मनुष्य को साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते हैं। ये स्वभाव और गुणधर्म साधु सत्पुरुषों में पाये जाते हैं। (सत्व)

(२) **दैवी गुणधर्म-** ईश्वरी गुणधर्म की अपेक्षा इस का मूल्य कम होता है। ऐसे मनुष्यों में ईश्वर का अंश अधिक मात्रा में होता है किन्तु इन के व्यवहार साधारण मनुष्य के जैसे होते हैं (सत्व)

(३) **मानवीय गुणधर्म-** इस संसार में मानवीय गुणधर्म युक्त लोग बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। ये संसार में निरत हो कर उद्योग-धंन्धों में अपना जीवन यापन करते है और जीवन के अन्त तक ईश्वरी मार्ग खोजने की अभिलाषा नहीं रखते (रज)।

(४) **पैशाचिक गुणधर्म-** इन का जीवन-क्रम देखने से इस बात का पता नहीं चलता कि ये लोग किसलिये पैदा हुए हैं क्योंकि संसार में जिन्दगी के अन्त तक इन्हें नानाविध कष्ट उठाने पड़ते हैं। (रज)

आसुरी गुणधर्म- ये लोग तामसी वृत्ति के होते हैं और इन के स्वभाव से अन्य साधु सज्जनों को कष्ट पहुँचता है। इस प्रकार के लोग संसार में प्रचुर मात्रा में दिखाई देते है। आसुरी गुणधर्मों का अच्छा उदाहरण अँग्रेजों की प्रवृत्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वरी गुणधर्म छोड़कर आसुरी दैवी, मानवीय और पैशााचिक स्वभाव गुणधर्म वाले लोग

विपुल मात्रा में पाये जाते हैं।

ईश्वरी गुणधर्म- भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं "अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र : करुणएवच । निर्ममो निरंहकारः समदुःख सुखक्षमी ॥ संतुष्टः सततं योगीयतात्मा दृढनिश्चयः मय्यर्पितमनोबुद्धिः । जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ॥ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्माः कूटस्थो विजितेन्द्रियः । युक्तइत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु साधुष्वपिच पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥"

अर्थात् इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष-सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थ रहित सब का प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित, सुखदुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है। तथा जो ध्यानयोग में युक्त हुआ, निरन्तर लाभ हानि में संतुष्ट है तथा मन और इद्रियों को वश में किये हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है और मुझ में अर्पण किये हुए मनोबुद्धिवाला है, जिस के अन्तःकरण की वृत्तियाँ अच्छी प्रकार से शान्त हैं अर्थात् विकार हीन हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकार से स्थित है और जिस का अन्तःकरण ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जिस की स्थिति विकार रहित है, जिसकी इंद्रियाँ अच्छी प्रकार से जीती हुई हैं तथा समान हैं, मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण जिस को वह योगी मुक्त अर्थात् भगवान की प्राप्ति वाला होता है, और ऐसा कहा जाता है,कि जो पुरुष सुहृद, मित्र, वैरी, उदासीकि मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धुगणों में तथा धर्मात्माओं में और पापियों से भी समान भाव वाला है, वह अति श्रेष्ठ है।

"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकन्नोद्विजते च यः । हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो ॥" अर्थात् जिससे कोई भी किसी जीव से उद्वेगको प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (क्रोध) भय ओर उद्वेगादिकोंसे रहित है।

" अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारम्भ परित्यागी स त्यागीत्याभिदीयते ॥"

अर्थात् जो पुरुष आकांक्षाओं से रहित तथा बाहर भीतर से शुद्ध और चतुर है एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी अर्थात् मन, वाणी और शरीर द्वारा प्रारब्ध से होने वाले संपूर्ण स्वाभाविक कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी कहलाता है।

''यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति'' अर्थात् जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना रखता है।

''समः शत्रौच मित्रेच तथा मानापमानयो : शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः संग विवर्जित :। अनिकेत : स्थिर मतिर्भक्तिमान्मे प्रियोनर :॥'' अर्थात् जो शत्रु, मित्र में ओर मानापमान में सम है तथा शीत, ऊष्ण और सुख दुःखादिक द्वन्द्वों मे भी सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, निन्दा और स्तुति दोनों को समान समझने वाला और मननशील है तथा प्राप्त परिस्थिति में सदा सन्तोष मानने वाला और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थितप्रज्ञ एवं भक्तिमान् हैं। ''अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्माचर्य परिग्रहः'' जो काया, वाचा मनसा से किसी को भी कष्ट न देता हो, सदा सच बोलता हो, दूसरों की चीजों की चोरी नहीं करता हो, किसी के द्रव्य या स्त्री की अभिलाषा मन में नही रखता हो, अष्टांग मैथुन से दूर रहता हो, जिन्दगी में किसी भी चीज.की आवश्यकता नहीं रखता हो और चाहे कितने भी कष्ट उठाना पड़े या नरक वास तक भोगना पड़े किन्तु दूसरों का कल्याण ही करते हों वे ही पुरुष ईश्वरी गुणधर्मों से युक्त कहलाते है।

दैवी-स्वभाव (सत्व Evolved Type)

''अभानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्। आचार्योपासनंशौचं स्थैर्यमात्म विनिग्रहः।'' अर्थात् श्रेष्ठता के अभिमान का दम्भाचरण का अभाव, प्राणी मात्र को किसी प्रकार भी न सताना और क्षमा भाव तथा मन वाणी की सरलता, श्रद्धा, भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर भीतर की शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह करना। ''इन्द्रियर्थेषु वैराग्य मनहंकार एवच। जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानु दर्शनम्'' अर्थात् इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों मे आसक्ति का

अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख दोषों का बारम्बार विचार करना। "असक्तिरनाभिष्वंगः पुत्रदार गृहादिषु। नित्यंच समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥" अर्थात् पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात् मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष शोकादि विकारों का न होना। "निर्माणमोहाजित संगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्त कामाः द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञैर्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्यय तत्।" अर्थात् जिन का मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है और जिन की परमात्मा के स्वरूप में निरन्तर स्थिति है तथा जिन की कामना अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है ऐसे वे सुख दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानी जन, उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं। "अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानियोगव्यवस्थितिः दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।" अर्थात् सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरंतर दृढ स्थिति और सात्विक दान तथा इन्द्रियों का दमन, भगवत् पूजा और अविहित कर्मों का उत्तम आचरण एवं वेदान्त शास्त्रों के पठन पाठन पूर्वक, भगवत् के नाम और गुणों का कीर्तन तथा स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तः करण की सरलता।

"अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दयाा भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं न्हीरचापलम्।" अर्थात् मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोधित न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग एवं अन्तःकरण की उपरामता अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव ओर किसी की भी निन्दादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना और कोमलतां तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा ओर व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव।"तेजःक्षमा धृतिः शोचमद्रोहो नातिमानिता। भवन्ति संपदं दैवीमाभिजातस्य भारत ॥" अर्थात तेज, क्षमा धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव का न होना और

अपने में पूज्यता कें अभिमान का अभाव, यह सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

मानवी स्वभाव (रजोधर्म) (Evolved Type)

मानवी स्वभाव में सत्व और रज दोनों कें गुणधर्म विद्यमान होते है। संसार में इस श्रेणी के लोग ही अधिक तर पाये जाते हैं और इन का स्वभाव भी मानवता की सीमा के भीतर (Within the limits of humanity) होता है। इन में निम्नलिखित सर्वसाधारण गुणधर्म पाये जाते हैं :- सब के साथ प्रेम का बर्ताव रखना, प्रापंचिक बातो कें प्रति आसक्ति का होना, आपनी स्त्री व अपने बालबच्चों को प्यार करना, अपना स्वार्थ पहले देखकर फिर दूसरों पर उपकार करना, मन में अहंकार व मानापमान की सूक्ष्म कल्पनाओं को रखना, लोक कीर्ति के लिए हर प्रकार के प्रयत्न करना, स्वतंत्र वृत्ति का जीवन बिताना अपने कार्य में दूसरों का हस्तक्षेप न चाहना, स्वतंत्र बुद्धि का होना, स्वकार्यशक्तिपर आत्मविश्वास रखना, सच्चे मार्ग से चलना, न्याय अन्याय का पूरा-पूरा ख्याल रखना, दूसरों पर अपना रोब जमाना, अच्छे शील का होना, मित्रों व गुरुजनों से प्रेम का बर्ताव करना, आपदाओं व विपदाओं में हिम्मत न हारना, दिन रात अपने कामकाजों में निमग्न रहना और दूसरों की झंझटों से दूर रहना इत्यादी।

पैशाचिक स्वभाव (रजोगुणी)

पैशाचिक स्वभाव के लोग बहुत ही हीन होते हैं और प्रपंच में जन्म से ले कर मृत्यु तक असफल रहते हैं। इन्हे प्रपंचके लिए पैसा हमेशा कम ही पड़ता है, फिर वे चाहे कितना भी कमायें। स्वयं की उन्नति के लिये प्रयत्न करते हैं किन्तु अधःपतन ही होता है। प्रापंचिक जीवन में दुःख और कष्टों को सहन करना पड़ता है, कर्ज निकालकर जीवन निर्वाह करने की नौबत आती है। उद्योग धन्धों में हमेशा दिवाला निकलता है। इन में स्वतंत्र धन्धा कर उपजीविका चलाने की प्रवृत्ति अधिकतर पायी जाती है। कर्ज के कारण सिविल जेल में जाना पड़ता है। इन के कई बालबच्चे रहते हैं। ये सच्छील होते हैं, इसीलिए पर नारी की और देखते नहीं। इन की बुद्धि के कारण दूसरों का कल्याण होता है। किन्तु खुद का कल्याण नहीं होता

क्योकि इन की बुद्धि इन के लिए मारक होती है। ये सदैव लोगों का कार्य करते हैं। इस प्रकार त्रिविधताप भोगते हैं और अन्त में निराश होते हैं। इन के मुँह से 'देहत्याग या देशत्याग' यह उद्‌गार निकलते रहते हैं।

आसुरी स्वभाव (तमोगुणी)

अँग्रेज लोगों का स्वभाव आसुरी स्वभाव का एक अच्छा उदाहरण है। इसी आसुरी स्वभाव के कारण अँग्रेजों ने अपना साम्राज्य सारे संसार में फैलाया है और अब साम्राज्य विस्तार कर काले लोगों (Black race) को गुलाम बनाये रखना चाहते हैं। आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण नीचे दिये अनुसार होते हैं :-

"मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसी आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनी श्रिताः॥" अर्थात् जो कि वृथा आशा, वृथा कर्म ओर वृथा ज्ञान वाले, अज्ञानी जन, असुरों के जैसे मोहित करने वाले तामसी स्वभाव को ही धारण किये हुए हैं।

प्रवृत्तिच निवृत्तिच जना न विदुरासुराः। न शौचं नापि चाचारों न सत्यं तेषु विद्यते। अर्थात् आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्य कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं, इसलिए उन में न तो बाहर, भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है।"असत्यं प्रतिष्ठते जगदाहुरनश्विरम्। अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।" अर्थात् वे आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत् आश्रयरहित और सर्वथा झूठ एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है, इसलिए केवल भोगों को भोगने के लिए ही है, इस के सिवाय और क्या है ?

"एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः। प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥" अर्थात्-इस प्रकार इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके जिन का स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिन की बुद्धि मन्द है ऐसे वे सब का अपकार करने वाले, क्रूर कर्मी मनुष्य केवल जग का नाश करने के लिए ही

उत्पन्न होते हैं । ''काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः। मोहाद्गृहित्वासदग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।'' अर्थात् और वे मनुष्य दम्भ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय ले कर तथा अज्ञान से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण कर के भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बरतते हैं । ''चिंतामपरिमेयांच प्रलयान्तामुपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावदितिनिश्चिताः।। अर्थात् तथा वे मरण पर्यंत रहने वाली अनन्त चिन्ताओं का आश्रय लिये? हुए और विषय भोगों के तत्पर हुए एवं इतना मात्र ही आनन्द है, ऐसे मानने वाले हैं ।

''आशापाशशतैर्बद्धः कामक्रोध परायणाः ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थ संचयान ।''अर्थात्-इसलिए आशारूपं सैकड़ों बन्धनों मे बंधे हुये और कामक्रोध में परायण हुए विषय भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत से पदार्थो का संग्रह करने की चेष्टा करते हैं ।

''इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।''

अर्थात्-और उन पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं कि-मैने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है भी और अधिक कमाऊंगा ।

''असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरनदि । ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवानसुखी ।।'' अर्थात्-वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा तथा मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान और सुखी हूँ ।

''आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सहशो मया । यक्ष्मे दास्यमि मेदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः ।।'' अर्थात्-तथा मैं बड़ा धनवान् और बड़े कुटुंब वाला हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है, मैं यज्ञ करूंगा, दान देऊँगा, हर्ष को प्राप्त होऊँगा, इस प्रकार के अज्ञान से मोहित होते हैं ।

''अनेकचित्तविभ्राता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषुपतन्ति नरकेऽशुचौ ।।'' अर्थात् इसलिए वे अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्त वाले

अज्ञानी जन मोरूपी जाल में फँसे हुए एवं विषय भोगों मे अत्यन्त आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते है ।

"आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥" अर्थात् तथा वे अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष, धन और मानके मद से युक्त हुए, शास्त्र विधि से रहित केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं ।

"अहंकार बलं दर्प कामं क्रोधंच संश्रिताः। मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूकाः॥" अर्थात्-तथा वे अहंकार, बल,घमण्ड,कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से (ईश्वर से) द्वेष करने वाले होते हैं ।

सारांश में, आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुषों में नीचे लिखे आसुरी गुणधर्म पाये जाते हैं-मन की दुर्वलता का होना, अकर्मण्यता का होना, निरुद्योगी होना, नीच कर्मों में निरत रहना, दूसरों के नाश में आनन्द मानना, भाई-भाई में कलह मचाना, विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व करना, दूसरों के भाग्यचक्र के उदय से ईर्ष्या का उत्पन्न होना, कटुवचन बोलना, विचित्र स्वभाव का होना, हृदय में शान्ति का अभाव, समाज का अहित करना, अपने सुख के लिए दूसरों की हानि करना, असत्य बोलना, लोगों को फँसाना, दूसरों के बुरे व गुप्त कर्मों में ध्यान देना, अश्लील बातें करना, अविचार, घमण्ड व पाखण्ड का होना, "अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्" अर्थात् ईश्वर विषयक ज्ञान का अभाव होना आदि ।

" दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता"-अर्थात् इन दोनों प्रकार की सम्पदाओं में-(दैवी और आसुरी)-दैवी सम्पदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा जन्मपरम्परा में बाँधने के लिए मानी गई है ।

इस संसार में ईश्वरी और दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष अति अल्प मात्रा में पाये जाते हैं । कर्क और वृश्चिक लग्न के लोग दैवी स्वभाव वाले होते हैं और धनु व मीन लग्न के लोग ईश्वरी स्वभाव वाले होते हैं । ये

लोग जब संसार का त्याग कर योगमार्ग या संन्यास मार्ग ग्रहण करते हैं और भगवद् भक्ति करते हैं तब ईश्वरी और दैवी सम्पदा इन में पूर्णरूपेण निखर उठती है ।

अब मैं मेष आदि राशियों का स्वभाव वर्णन करता हूँ:- संसार में मेष राशि में तीन प्रकार के लोग पाये जाते हैं:- सात्विक (साधारण Ordinary सात्विक) रजोगुणी और तमोगुणी । पाश्चात्य ज्योतिष-ग्रन्थकार Alan Leo ने Individual और Personal ऐसे दो भेद किये हैं ओर Miss Isabelle M Pagon इन्होने Evolved type और Primitive type ऐसे दो भेद किये हैं । राजा भर्तृहरि ने अपने 'नीतिशतक' में पाँच भेद किये हैं-साधु, उत्तम,मध्यम और कनिष्ठ और "तेकेन जानीमहे" ऐसा कह कर उन्होने पाँचवाँ भेद अस्पष्ट ही रखा है । मैने तीन प्रकार के भेद किये हैं ।

मेषलग्न

सत्वगुणी स्वभाव-सरल चालचलन,शीलवान,वैराग्ययुक्त, भजन पूजन की ओर असाक्ति, सत्कर्मो में साहसी, नेता होने के लिए बहुत कोशिश करते हैं किन्तु अनुयायी होते हैं और अपने नेता पर विश्वास करते हैं । प्रपंच में अनासक्ति रख कर प्रापंचिक जीवन बिताते हैं । स्त्री ओर बालबच्चों पर प्रेम करते हैं, संकटावस्था में दूसरों की सहायता करते हैं, मित्र-परिवार बड़ा होता है, अपने उद्योगधन्धों में दक्षता रखते हैं, असत्य बोलना टालते हैं । उन्हें क्रोध आता ही नहीं ओर जब आता है तब शान्त होना भी कठिन होता हैं । अप्रिय किन्तु हितकर बात करते हैं, किये हुए उपकार का बदला नहीं चाहते । वाणी में मिठास होती है ।

रजोगुणी स्वभाव-दूसरों से सम्मान की अपेक्षा करते हैं । ये शूर, विद्वान, गुरु पर प्रेम करने वाले, किसी भी कार्य में चतुर और दूसरों पर अपनी छाप जमानेवाले होते हैं । धर्म की राह पर चलते हैं, उपभोग में कुशल और सुशील स्वभाव वाले होते हैं ये दूसरों पर उपकार करते हैं किन्तु साथ ही साथ उस उपकार का बदला भी चाहते हैं । बड़े-बड़े लोगों के साथ मित्रता रखना चाहते हैं । इनका मित्र-परिवार काफी बड़ा होता है । ये आस्तिक होते हैं

और उपासना-मार्ग का अवलम्बन करते है ।

तमोगुणी स्वभाव- ये अपने बांधओं से द्वेष करते है बहुत ही क्रोधी होते है ओर क्रोध में अनर्थ मचाते हैं । दूसरों से कलह करते हैं और स्वजनों से तिरस्कार ही पाते हैं । दुष्ट लोगों की संगति में रहते हैं । ये परस्त्रीगामी, चंचल दाम्भिक, दूसरों को कष्ट देने वाले और स्वयं सदैव असंतुष्ट रहने वाले होते हैं । इन्हें खाने के लिए बहुत चाहिये । ये दूसरों के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं ।

वृषभलग्न

सत्वगुणी स्वभाव- ये देवी देवता, गुरु और गुरु जनों पर भक्ति करते हैं और कोई भी कार्य स्थिरबुद्धि से करते हैं । विषयोपभोग की ओर इन की प्रवृत्ति कम होती है । ये साहसी, निर्लोभी, मृदुभाषी, त्यागी, क्षमाशील, विश्वसनीय ओर आस्तिक होते हैं । संसार में क्लेश सहन करते हैं, आप्तेष्ट जनों पर प्रेम करते हैं और लोग भी इन्हें खूब चाहते हैं । ये संसार का पालन करने वाले होते हैं ।

रजोगुणी स्वभाव- ये गुणवानों के प्रेमपात्र, धनवान, शूर व संग्रामप्रिय होते हैं । राजकीय कार्यो में भाग लेते हैं । किंतु उस में आगे आने की हिम्मत नहीं करते । अपना स्वार्थ पहले देख कर फिर दूसरों को लाभ पहुँचाते हैं । आप मित्रता के लिए सुपात्र, अतिमानी, बलवान, आस्तिक, धीमे स्वभाव वाले और स्त्रियों के प्रति आसक्ति रखने वाले तथा अपने व्यवसाय में पूर्ण निमग्न रहने वाले होते हैं ।

तमोगुणी स्वभाव- ये अति लोभी, क्रोधी, कृतघ्न, मन्दबुद्धि, अधर्मी,अतिस्वार्थी, अतिकर्मठ किन्तु दाम्भिक, नास्तिक और स्त्री के वश में रहने वाले होते हैं । आप लोगों में नाम कमाने की इच्छा से दानधर्म करते हैं, दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं और अनेक कार्यो में बाधा पहुँचाते हैं । अच्छी-अच्छी चीजें दूसरे के यहाँ से उठा ले जाने की आदत रहती है ।

मिथुन लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- ये लोग त्यागी, दयालु, तत्त्वज्ञ, ज्ञानी, नम्र,चतुर, दानी, न्यायी, उदार सुशील और आप्तेष्ट जनों पर प्रेम करने वाले होते हैं। गुणीजनों का आदर सम्मान करते है; गौरवपूर्ण और आदरयुक्त वचन बोलते हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और न्यायदान योग्य रीति से करते है।

रजोगुणी स्वभाव- ये मानी, भोगी, कामी, दीर्घसूत्री (Dilatory) विविध प्रकार की बुद्धियों से युक्त, प्रसन्न सन्तान व सम्पत्ति की दृष्टि से सुखी, स्त्री-विलास कुशल, मार्मिक, साहित्य शास्त्रज्ञ तथा दुश्मनों को जीतने वाले होते हैं। इन का मित्र-परिवार काफी बड़ा होता है। कोई भी कार्य बड़ी सावधानी से करते हैं और वादविवाद में किसी से हार नहीं मानते।

तमोगुणी स्वभाव- ये असत्यवादी, वीभत्सप्रिय, कठोर और कटुवचनी व व्यभिचारी होते हैं। खाते, पीते ओर मौज उड़ाते है; किसी की परवाह नहीं करते; यहाँ तक की पत्नी की भी चिन्ता नहीं करते। न किसी के झंझटों व झमेलों में ही फंसना चाहते हैं, न लोगों पर उपकार करना चाहते हैं। फिर भी ऐसा दर्शाते हैं कि मानों आप बड़े परोपकारी हैं। आप का वेदान्त पर विश्वास नहीं होता।

कर्कलग्न

सत्वगुणी स्वभाव- ये शान्त स्वभाव वाले, मीठे बचन बोलने वाले और कानून के अनुसार कार्य करनेवाले होते हैं। आप अति गूढ़ विचार करने के आदी होते हैं तथा भविष्य का विचार करने वाले होते हैं। आप का मित्र-परिवार काफी बड़ा होता है। जिन्दगी के आखिर तक शास्त्राभ्यास करते रहते हैं, बुद्धि कुशाग्र होती है ओर आप दूसरों से प्रेम का बर्ताव रखते हैं ये संकटों से विचलित नहीं होते, सत्य के लिए कष्ट सहन करते हैं। लोंगो का कल्याण करते हैं एवं धर्म के पथ पर चलते हैं। इनके विचार व आचार विशुद्ध होते हैं। शत्रु को भी क्षमा कर देते हैं। ये प्रापंचिक बातों से

अनासक्ति रखते हैं व तत्त्वज्ञानी, एकान्त प्रिय और निःस्वार्थी तथा योगी होते हैं।

रजोगुंणी स्वभाव- आप डरपोक, थोड़े स्वार्थी, अपने धन्धे में पूरी-पूरी दक्षता रखने वाले, पैसे के बारे में झूठ बोलने वाले तथा मित्रता के लिए सत्पात्र होते हैं। अपनी पत्नी और बालबच्चो में ही मस्त रहते हैं, माँ, बाप, भाई, बहन आदि की तनिक भी परवाह नहीं करते। किसी भी कार्य में दूसरों को आगे कर आप पीछे रहना पसन्द करते हैं। प्रेम के विषय में ये धोखा खाते हैं।

तमोगुणी स्वभाव- आप लोगों का नुकसान कर अपना स्वार्थ देखते हैं, दुनिया में किसी से प्रेम नहीं करते, दूसरों से छल कपट का व्यवहार करते हैं और अति घमण्डी होते हैं। पैसे के व्यवहार में धोखा खाते हैं Pennywise Pound foolish । आप दूसरों पर विश्वास करते नहीं और स्वयं भी विश्वास के पात्र नहीं होते।

सिंह लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप मानी, शूर, निडर, शान्त व स्थिर बुद्धिवाले, गंभीर, मितभाषी, साहसी, धैर्यशील, उदार, आत्मसंतोषी, महत्वाकांक्षी, सनातनी और साधुओं के प्रति भक्तिभाव रखने वाले होते हैं। दूसरों से बातचीत करने में अपनी छाप रख देते हैं, शत्रुओं का दमन करते हैं और केवल स्थूल बातों की ओर ध्यान देते हैं, परमार्थ मार्ग पर नहीं।

रजोगुणी स्वभाव- ये अहंकारी, अकर्मण्य और चैन की बन्सी बजाने वाले होते हैं। आप न तो किसी का कल्याण ही करते हैं और न अकल्याण ही, बल्कि सब से प्रेम का बर्ताव करते हैं; अतः आप का मित्र परिवार भी काफी बड़ा होता है। ये उद्योग धन्धों में चतुर नही होते, बल्कि आराम तलब जीवन बिताने के आदी होते हैं। आप्तजनों से प्रेम का व्यवहार रखते हैं। आप न्यायान्याय में पारंगत होते हैं, अन्याय के विरुद्ध झगड़ते हैं किन्तु स्वयं झगड़ों से बच कर रहना पसन्द करते हैं।

तमोगुणी स्वभाव- आप अपनी कर्तव्य शक्ति के विषय में वृथाभिमान रखते हैं और अपने मन में ऐसी इच्छा रखते हैं कि लोग आप की खूब तारीफ करें और संसार में आप का नाम गूँज उठे लेकिन इस के लायक आप में एक भी गुण नहीं होता। मीठी-मीठी बातों से ये दूसरों को फँसाते हैं, झूठ बोलते हैं और दयामाया हीन व मन मे दुराशा रखने वाले होते हैं। आप बहुत क्रोधी होने के कारण दूसरों को कभी- कभी आप से कष्ट पहुँचता हुँ।

कन्यालग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप शान्ति प्रिय, विनयशील, विषय पराङःमुख, (इस स्वभाव के लोग कभी-कभी- अविवाहित भी रहते हैं), दयालु, प्रेमी, मिलनसार, विश्वसनीय, दूसरों का कार्य बिना वेतन और मित्रों का संग्रह करने वाले होते है।

रजोगुणी स्वभाव- आप काफी चिकित्सक, अल्प स्वार्थी किन्तु अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट न देने वाले, व्यवहार-कुशल व दूसरों का कार्य न करने वाले होते हैं। आप का मित्र-परिवार बड़ा होता है।

तमोगुणी स्वभाव- आप असत्यवादी, अति चंचल, व्यभिचारी, अविश्वासनीय, परस्त्रीगामी और दूसरों को हानि पहुँचाने वाले होते हैं।

तुला लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- ये परोपकारी, निश्यची, हठी सच्छील, मृदुभाषी, दयाालु, प्रगल्भ बुद्धि से युक्त, निःस्वार्थी, लोगों से प्रेम का बर्ताव करने वाले और दूसरों के लिए कष्ट उठाने वाले होते है।

रजोगुणी स्वभाव- आप अल्प मात्रा में स्वार्थी, अपने शारीरिक सुखों की ओर विशेष रूप से ध्यान देने वाले और घर में स्त्री व बालबच्चों का ख्याल न करने वाले होते हैं। आप लोगों से मित्रता का व्यवहार रखते हैं। किन्तु वे आपकी मदद नहीं करते। आप दुराग्रही, थोड़े अभिमानी और कुलाभिमानी होते हैं।

तमोगुणी स्वभाव- ये लोग अविश्वसनीय, घमण्डी, स्वार्थी, वितण्डवादी तथा अपने सुख के लिए दूसरों को कष्ट देने वाले होते हैं। आप अपने को सर्वज्ञ समझते हैं।

वृश्चिक लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप परोपकारी, सच्छील, दयालु, प्रेमी, हरएक बात में समतोलवृत्ति से काम लेने वाले और अपने विचार दूसरों के सामने निर्भयता से प्रकट करने वाले होते हैं। आप का जन्म स्वकल्याण के लिए न होकर दूसरों के कल्याण के लिए होता है। आप में साधु सत्पुरूषों के गुणधर्म विद्यमान होते है।

रजोगुणी स्वभाव- आप पराक्रमी, निडर, दुराग्रही, वितण्डवादी, दयालु प्रेमी और गरीबों पर उपकार करने वाले होते हैं। आप अपने कार्य में निमग्न रहते हैं और आप का मित्र-परिवार बड़े-बड़े लोगों का होता है। आप डॉक्टर या सर्जन हो सकते है।

तमोगुणी स्वभाव- आप दुराचारी, मितभाषी, घमण्डी, कृतघ्न, क्रोधी, धूर्त व कपटी होते हैं। ये दूसरों पर उपकार नहीं करते बल्कि क्रोध मन में रख कर, समय आने पर बदला चुकाते हैं।

धनु लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप परोपकारी, निःस्वार्थी, अव्यभिचारी, दयालु, प्रेमी, ज्ञानी, विश्वबंधुत्व के रखने वाले तथा लोगों पर अधिकार चलाने वाले होते हैं। आप में सद्गुणों का समुच्चय पाया जाता है। आप या तो साधु सत्पुरुष होते हैं। या राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी होते हैं। किसी से न दबने वाले होते हैं।

रजोगुणी स्वभाव- आप अतिकामी, परोपकारी, न्यायान्याय पारंगत, विद्वान्, सच्ची राह पर चलने वाले और दूसरों के लिए कष्ट उठाने वाले होते हैं। आप ज्ञानी तो होते हैं किन्तु अपने ज्ञान के बारे में अहंकार की भावना भी मन में रखते है।

तमोगुणी स्वभाव- आप दुराग्रही, असत्यवादी, अति चंचल, अपनी कर्तव्य शक्ति के बारे में आप अपने ह्रदय में झूठी कल्पनाएँ रखते हैं। इस राशि में स्त्री सुख अल्प मात्रा में मिलता है।

मकर लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप दुनिया का कल्याण करने के लिए परिश्रम उठाते हैं। उसी प्रकार से, स्वयं मन में शान्ति रखते हुए, दुनिया में शान्ति कैसे प्रस्थापित होगी और कैसे टिक सकेगी, इस के बारें मे प्रयत्न करते हैं। आप प्रेमी, दयालु और विश्व का कल्याण करने वाले होते हैं तथा सेवा करना अपना धर्म समझते हैं। आप या तो डॉक्टर होते हैं या दुनिया के राजनैतिक क्षेत्र में सूत्र संचालन करते है।

रजोगुणी स्वभाव- आप दुराग्रही, मानी, अल्प मात्रा में स्वार्थी, बड़े-बड़े कार्य करने वाले और दुसरों को फायदा करने में अपना भी फायदा उठाने वाले होते है।

तमोगुणी स्वभाव- ये लोग दुष्ट, व्यसनी, परस्त्री-अभिलाषी, अति घमण्डी, अति स्वार्थी, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की हानि करने वाले होते हैं। ये अपने को सर्वज्ञ समझते हैं और दूसरे लोगों से भी बड़प्पन पाने की अपेक्षा करते हैं।

कुंभ लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप बड़े विद्वान्, ज्ञानी और मितभाषी होते हैं। न तो आप दूसरों पर उपकार ही करते हैं और न तो दूसरों से मिलजुल के रहते हैं। आप अपने कामों में इतने डूबे हुए होते हैं कि आप को दुनिया की कोई खबर ही नहीं होती।

इस राशि में रजोगुणी और तमोगुण का सम्पूर्ण आविष्कार (Developement) होना यह एक कठिन समस्या है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि ये लोग बहुत स्वार्थी, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले, अति लोभी और अपने बालबच्चों व स्त्री की परवाह न करने वाले होते हैं। इन के मन में कौन से विचार चलते हैं यह जानना एक कठिन

बात है । इस राशि में निष्क्रियता व जड़ता ये दो ही गुण हमें ठीक जँचते है ।

मीन लग्न

सत्वगुणी स्वभाव- आप धार्मिक, परोपकारी, सात्विक, दयालु, उदार, बुद्धिमान, सत्यभिमानी, दोनों पक्षों का विचार करने वाले और लोकहित के लिए कष्ट उठाने वाले होते हैं । आप में साधु सत्पुरुष के गुणधर्म पाये जाते है ।

रजोगुणी स्वभाव- आप बुद्धिमान, परोपकारी, न्यायान्याय में पारंगत, दूसरों का फायदा करने वाले, काव्य, गायन, नाटक, सिनेमा आदि बातों में दिलचस्पी लेने वाले, घर में औरत व बाल बच्चों पर प्यार करने वाले होते हैं । आप दूसरों के साथ प्रेम का बर्ताव करते हैं और आप में व्यापार-धंन्धो के प्रति आसक्ति होती है । आप अक्सर डॉक्टर होते हैं ।

तमोगुणी स्वभाव- ये लोग अविश्वसनीय, अति चंचल, अस्थिर, एकान्तवास-प्रिय होते हैं । ये न तो किसी से मित्रता का व्यवहार रखते और न तो किसी से प्रेम का बर्ताव करते है ।

***

परिच्छेद चौदहवाँ

द्वादश भावों में क्या-क्या देखना चाहिये ?

प्रथम भाव- इन द्वादश भावों मे क्या-क्या देखना चाहिये यह निसर्ग कुंडली से दिया जाता है - इस प्रथम भाव में मेष राशि का उदय होता है । इस राशि का अधिकारी मंगल है ओर प्रथम कारक ग्रह रवि है । इसलिए प्रथम भाव में योगी, संन्यासी, बैरागी, इन का शरीर कैसा रहेगा, निर्बल होगा या सबल ? परमार्थ मार्ग में जाने के लिए शरीर योग्य होगा अथवा नहीं ? हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, पवनयोग, लययोग, मंत्रयोग, इन में से किस योग का अवलंब करेगा ? परमार्थ मार्ग में बुद्धि कैसी रहेगी ? योगियों का स्वभाव कैसा रहेगा ? आदि बातों का विचार प्रथम भाव से किया जाता है । प्रयत्न सृष्टि की उत्पत्ति, अष्टांग योगसाधन की पहली सीढ़ी-'यम' ब्रह्म, षड्दर्शन, धौति, तेजोधारणा, आस्तिक्य, जिव्हाधौति, अलंबुषा, महावेध मांडूकी मुद्रा, काकीमुद्रा, कपाल-रंध्रधौति भुजंगिनी मुद्रा, मुक्तासन, महाब्रह्म ।

मनुष्य के मुखपर प्रथम भाव का बड़ा प्रभाव होता है । यही कारण है कि योगी और संन्यासी के मुखदर्शन से मन प्रसन्न होता है और हृदय में प्रेम भावना उत्पन्न होती है । किसी ने ठीक ही कहा है । 'साधु को निरखो आँख और माथा ।' बाल्य, उन्मत्त व पिशाच इन तीन अवस्थाओं में योगी संसार में विचरते हैं । इन तीन अवस्थाओं में तीन प्रकार के योगी होते हैं । ज्ञानी, प्रापंचिक योगी और विदेही । इन सब बातों का प्रथम भाव में विचार करना पड़ता है ।

'मूर्धज्योतिषी सिद्वदर्शनम् वेदना ।

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मन्वयार्थवत्त्वं संयमाभ्दतुजय : ॥'

इस सूत्र में पृथ्वी प्रथम भूतजय दी गई है ।

पृथ्वी के गुण व आकृति - गुरुत्व, रुक्षता, आच्छादन करना, स्थिरता, भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थिती, क्षमा कृशत्व, कठिनता और सब प्राणी भोग योग्यता । वृषभ राशि और धनभाव पृथ्वीपर अमल करते हैं । वृषभ राशि पृथ्वी तत्व की राशि है । यह सब धनस्थान में देखना चाहिये ।

जलके गुण- स्नेह, सूक्ष्मत्व, शुक्लत्व, मृदुत्व, गुरुत्व, शैत्य, रक्षण शक्ति, पवित्रता व संधि करना । यह सब चतुर्थ स्थान में देखना चाहिये ।

तेज के गुण- ऊर्ध्व गति, पचनशक्ति, दहनशक्ति, लघुत्व, पवित्र करना, तम का नाश करना, प्रकाश यह सब पंचम भाव में देखना चाहिये ।

वायु के गुण- वक्रगति, पवित्रता, दूर ढकेलना, प्रेरणा (अंतःकरण में होनेवाली) बल, चंचलता रूपरहित, रुक्षता आदि । यह सब सप्तमभाव में देखना चाहिये ।

आकाश के गुण- सर्वव्यापी, संधि-भाव का अभाव, किसी अधिकार में न चलना आदि दशम स्थान में ये सब गुण देखना चाहिये । इन पंचमहाभूतो पर अपनी चित्तवृत्तियाँ एकाग्र कर संयम करने से भूतजय प्राप्त होता है । और भूतजय प्राप्त होने के बाद इन्द्रियजय प्राप्त होता है । 'रूपलावण्यवल बज्रसंहननत्वानिकाय् संपत् ।'

सहस्त्रारचक्र (रवि)

Choroid Plexus of the Fourth Ventricle

स्थान- मस्तक में अब सहस्त्रार की बात सुनिये । आज्ञा चक्र के ऊपर अर्थात् शरीर के सर्वोच्च स्थान मस्तक पर सहस्त्रार कमल (चित्र देखिये) है । इसी स्थान में विवर समेत सुषुम्ना का मूलारंभ होता है एवं इसी स्थान से सुषुम्नानाड़ी अधोमुखी होकर चलती है । इसकी अन्तिम सीमा मूलाधार स्थित योनि मण्डल है । यह सहस्त्रदल कमल शुभ्रवर्ण है । The fibres of the internal capsule rediate widely as they pass to and from the various parts of the cerebral cortex forming the

Fig. 913.—A dissection showing the course of the cerebrospinal fibres.
(E. B. Jamieson.)

शनि सहस्रार चक्र
Corona Radiata
सहस्रदल दलसंख्या-१००८
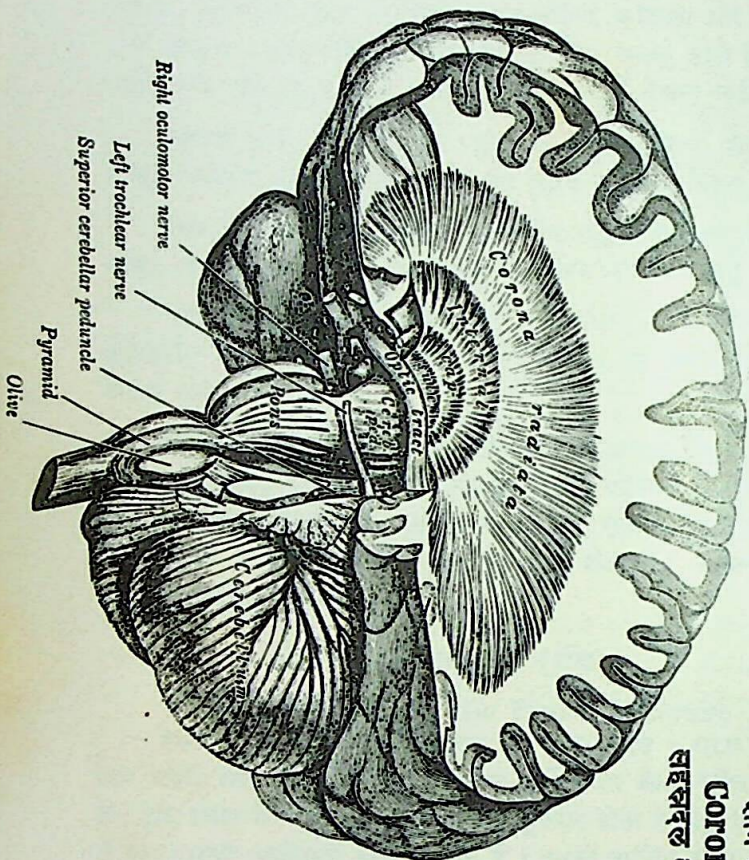
चित्र नंबर ५

Corona Radiata (Figure 785) and intermingling with fibres of the corpus collosum (see Gray's Anatomy, page 823). There are 1008 fibres in Corona Radiata.तरुण सूर्य के सदृश रक्त वर्ण केशर के द्वारा रंजित अधोमुखी है । उस के पचास दलों में अकार से लेकर क्षकार पर्यंत सबिंदु पचास वर्ण है । इस अक्षर कर्णिका के बीच में गोलाकार चंद्र मंडल है । यह चंद्र मंडल छत्राकार में एक ऊर्ध्वमुखी द्वादश दल कमल को आवृत्त किये है । इस में कई स्थान पर मतभेद मालूम होता है । प्रकारान्तर ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रार नामक एक सहस्त्र दल वाला महापद्म है । इस कमल के मध्य में और एक बारह दलवाला कमल है । वह द्वादश दलवाला कमल श्वेत वर्ण का है और परम तेज संपन्न है । इस कमल के बारहों पत्तों में क्रमशः ॥ ह, स, क्ष, म, ल, व, र, युं, ह, स, ख, फ्रें, ये बारह बीज लिखे हुए हैं । उस कमल की कर्णिका में अ,क,थ, इन तीन वर्णों के तीन कोण हैं । उन कोणों कें मध्य में ह,ल,क्ष इन त्रिकोणाकार अक्षरों के मण्डप में 'ॐ' बना हुआ है । फिर योगी ऐसा चिन्तन करे कि इस स्थान पर सुमनोहर नाद बिन्दुमय एक पीठ विराजमान है, उस पीठ (सिंहासन) पर दो हंस खड़े हैं और वहाँ पादुका भी रखी है । उसी स्थल पर गुरुदेव विराजमान हैं । उन की दो भुजाएँ हैं, तीन नेत्र हैं और वे शुक्ल वस्त्रों से सुशोभित हैं । उन के शरीर पर शुभ्र चन्दन लगा है । कण्ठ में श्वेत वर्ण के प्रसिद्ध पुष्पों की माला पड़ी हुई है, इन के वामपार्श्व में रक्तवर्णा शक्ति (गुरुपत्नी) शोभा दे रही है; इस प्रकार गुरु का ध्यान करें । कोई-कोई आचार्य इस द्वादश दल कमल को 'ललनाचक्र' कहते हैं । यह वर्णन विश्वसारतन्त्र में मिलता है और यह ललनाचक्र सहस्त्रार और आज्ञा इन दोनों चक्रो के बीच में है, ऐसा ये दूसरे स्थान पर बताते हैं । कंकाल मालिनी तन्त्र में लिखा है कि-

'सहस्त्र दल पद्मस्थमन्तरात्मान मुज्जवलम् । तस्योपरिनाद विन्दोर्मध्ये सिंहा सनोज्जवले ॥ तत्रनिजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् । वीरासन समासीन सर्वाभरणभूषितम् ॥ शुक्ल (क्ल) माल्याम्बरधरंवरदाभयपणिकम् । वामोरुशक्ति सहिंत कारुण्येनावलोकितम् । प्रिययासव्हस्तेन धृतचारु कलेवरम् ।

वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया । ज्ञानानन्द समायुक्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥'

योगी ऐसा ध्यान करें कि जिस सहस्त्र दल कमल में प्रदीप्त अन्तरात्मा अधिष्ठित है, उसके ऊपर नाद बिन्दु के मध्य में एक उज्ज्वल सिंहासन विद्यमान है । उसी सिंहासन पर अपने इष्टदेव विराज रहे हैं,। वे वीरासन में बैठे हैं । उन का शरीर चांदी के सदृश श्वेत है, वे नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं और शुभ्रमाला, पुष्प और वस्त्रधारण कर रहे हैं । उन के हाथों में वर और अभय मुद्रा है । उन के वाम अंक पर शक्ति विराजित है । गुरुदेव करुण दृष्टि से चारों ओर देख रहे हैं । उन की प्रियतमा शक्ति दाहिने हाथ से उन के मनोहर शरीर का स्पर्श कर रही है । शक्ति के वामकर में रक्तपद्म है और वे रक्तवर्ण के आभूषणों से विभूषित हैं । इस प्रकार उन ज्ञान समायुक्त गुरु का नाम स्मरणपूर्वक ध्यान करना चाहिये । इस कमल की कर्णिका में विद्युत्-सदृश अकथादि त्रिकोण यंत्र है । उस यंत्र के चारों ओर सुधासागर होने के कारण यह यंत्र मणिद्वीप के आकार का हो गया है । इस द्वीप के मध्यस्थल में मणिपीठ है । उस के बीच में नाद-बिंदु के ऊपर पीठ का स्थान है । हंस पीठ के ऊपर गुरु पादुका है । गुरुदेव ही परमशिव या परब्रह्म हैं । सहस्त्रदल कमल में चन्द्रमण्डल है । उस की गोद में अमर कला नामक षोडशीकला है तथा उसकी गोद में निर्वाण शक्तिरुपा मूल प्रकृति बिंदु और विसर्ग शक्ति के साथ परमशिवको वेष्टन किये हुए है । मेरे मत से ग्रह का अमल शनि और जर्मन महात्मा गिखतेल के मत में भी शनि ही है । तत्वगुण आत्मा, नामचक्र-शून्य लोक, सत्यलोक, नामतत्व-तत्वातीत, तत्वबीज-विसर्ग, बीज का वाहन-बिंदु, देव-परब्रह्म, देवशक्ति-महाशक्ति, यंत्र-पूर्णचंद्र, निराकार, ध्यानफल- अमरमुक्त, देवतावाहन कामनाथ कामेश्वरी, गुरुपादुका जपसंख्या १००० तूर्याअवस्था ।

(इस चक्र पर ब्रह्मानंद को देखना चाहिये)

अकथादि त्रिकोण यंत्र - Fornix Figure 762, Page 796, Figure 791 Page 826

मणिद्वीप Insula Island of Reil Figure 775, Page 811.

गुरुपादुका-Corpora mamillaria, Figure 762. Page 796, Fig. 789
हंसपीठ- Supra pineal recess, Figure 779. Page 816
सहस्त्रदल- Corna Radiata Figure 788 Page 823 देखिये (Gray's Anatomy)

The cerebrospinal fluid is a clear, slightly alkaline fluid, with a specific gravity of about 1007. It contains in solution inorganic salts similar to those in the blood-Plasma and also traces of Protein and glucose. It supports and protects the delicate structures of brain and medulla spinalis, maintains a uniform pressure on them, and probably acts as their nutritive fluid. It is produced by the action of the secreting cells which cover the choroid plexuses of the brain and is normally present at a certain pressure which is not dependent on the arterial or venous blood pressure. Its secretion may be increased (a) by an excess of carbonic acid (b) by voltaile anaesthetics, or (c) by an extract of the choriod plexuses or of the brain. (See Gray's Anatomy-Page 844)

THE CEREBROSPINAL FLUID (सुधासिंधु)

The cerebrospinal fluid is a watery fluid (specific gravity about 1005) which is found in the ventricles of the brain, and in the cerebrospinal subarchnoid space. The fluid is formed by the choroid plexus which projects into the ventricles; it escapes into the subarchnoid space through the foramina in the root of the fourth ventricle. (Formen of Majendie and foramina of Lusehka). A choroid plexus sis much folded process of the Pia mater, rich in blood-vessels; The ventricular aspect of the tufts is covered by ependyma modified to form a glandular epithelium, i.e. the cells are not ciliated are cuboidal, and often contain vacuoles. The proof that the plexus froms the fluid is threefold; (i) there are histological changes (swelling of the cells, etc.) after excessive formation of cerebrospinal fluid, (ii) when the exit from the ventrical e.g. the foramen of Manro, is blocked, the

ventricle distends; if previously the choroid plexus of ventricle is removed no distension occurs (Dandy and Black fan); and (iii) fluid has been seen excluding from the surface of an exposed plexus.

Pages 665-666, Chapter 47 th,
Hand book of Physiology
by
Halliburton M. D. and
McDowall

इस चक्र पर सप्त ज्ञान भूमिका की सातवीं भूमिका 'तुर्यगा' को देखना है। तुरीया अवस्था - 'ब्रह्म ध्यानावस्थस्य पुनः पदार्थान्तरापरिस्फूर्तिस्तुरीया'। ब्रह्मचिंतन में निमग्न इस महापुरुष को पुनः किसी भी समय किसी भी अन्य पदार्थ की परिस्फूर्ति न होना यही ज्ञान की सप्तम भूमिका तुरीया कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त स्वेच्छापूर्वक या परेच्छापूर्वक व्युत्थान को प्राप्त नहीं होता, अपितु एक ही स्थिति ब्रह्मीभूत स्थिति में सदा रमण करता है। 'अस्यामवस्थायामृयोगी नस्वतोनापि परकीय प्रयत्नेन व्युत्तिष्ठते केवलं ब्रह्मीभूत एव भवति।' इस चक्र पर ब्रह्मानंद को देखना चाहिये।

योगी लोग कहते हैं कि आज्ञाचक्र के ऊपर तीन पीठस्थान हैं। उन तीनो पीठों के नाम हैं - बिंदुपीठ, नादपीठ और शक्तिपीठ (कलापीठ)। ये तीनों पीठस्थान कपाल देश में रहते है। शक्तिपीठ का अर्थ है ब्रह्मबीज 'ॐ'कार । ॐ कार के नीचे निरालंबपरी तथा उस के नीचे षोडशदल युक्त सोमचक्र है। इन दलों को चंद्र की १६ कलाएँ कहते हैं। उस के नीचे एक गुप्त षडदल पद्म है। उसे ज्ञानचक्र (मनश्चक्र) कहते हैं इस के एक-एक दल से क्रमशः रुप, रस गंध, स्पर्श, शब्द और स्वप्न ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी के नीचे आज्ञाचक्र का स्थान है। आज्ञाचक्र के नीचे तालुमूल में एक गुप्तचक्र है। इस चक्र को द्वादशदलयुक्त रक्तवर्ण पद्म कहा जाता है। इस पद्म में पंच सूक्ष्म भूतों के पंचिकरण द्वारा पंच स्थूल भूतों का प्रादुर्भाव होता

है। इसी स्थान को घंटिकास्थान ओर दशम द्वार मार्ग कहते हैं। इसी चक्र को कला या ललनाचक्र ऐसा कोई-कोई आचार्य कहते हैं। इस चक्र को (Cavernous plexus) भी कहते है।

ब्रह्मरन्ध्र चक्र (राहू)

यह चक्र ब्रह्मरन्ध्र में है; यह चक्र निर्वाण प्रदान करने वाला है। इस चक्र में सूचिका के अग्रभाग के समान धूम्राकार जालन्धर नामक स्थान में ध्यान कर के चित्तलय करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह स्थान भगवान महावीर (हनुमान जी) जी का है।इस चक्र पर निरानंद को देखना चाहिये।

ब्रह्म चक्र

यह चक्र षोडश दल में सुशोभित है। उस में सच्चिद्-रूपा अर्धशक्ति प्रतिष्ठित है। इस में पूर्णा चिन्मयी शक्ति का ध्यान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह सब लग्न में देखना चाहिए।

आज्ञाचक्र (शिवका तृतीय नेत्र) लग्न में अग्निचक्र ग्रह गुरु,जर्मन महात्मा गिखतेल के मत से भी गुरु

Plexus of command

स्थान- Region of mind श्वेत कमलवर्ण दो दल-अंग्रेजी Anatomist इसी को Pineal gland और दूसरा दल Pictuitary Body हँ क्षँ चक्र का यंत्र-विद्युत्प्रभा युक्त 'इतर' अर्धनारी नटेश्वरलिंग है। यह यंत्र महत् तत्व का स्थान है। यंत्र का बीज 'लँ' सह ॐ प्रणव है। बीज का वाहन नाद है और इस के ऊपर बिन्दु भी स्थित है। यंत्र देव- महाकाल नामक सिद्ध लिंग और शक्ति हाकिनी है। यंत्र लिंगाकार है। यह परमहंस पुरुष है। इस स्थान में 'हंस' पुरुष परमशिव और उन की शक्ति सिद्ध काली 'है' (यह यँ बीज और वायु का स्थान है।) जप संख्या-१००० तपो लोक, तत्व-मन (योनि त्रिकोण में पाताल लिंग), देवता वाहन-शंभु त्राटककर्म, नेति कर्म, कार्य-संकल्प-विकल्प, रुद्रग्रंथि, शक्ति हाकिनी का रूप शुक्लवर्ण, चतुर्भुज,

षण्मुखी, इस द्विदलवर्ण की कर्णिका में त्रिकोणाकृति यंत्रोपरि लँ बीज सहित प्रणवाकार तेजोमय इतराख्य शिवलिंग विद्यमान है ।

Adnya Chakra

The seat of altruistic sentiments and volitional control, companion, gentleness, patienee, renuxciation, meditativeness, gravity, earnestness resolution, determination, and magnanimity.

चंद्रामृत या १७ सत्रहवीं जीवनकला । इस चक्र में ज्ञानानन्द को देखना है । इस चक्र पर सप्तज्ञान भूमिका की छठी भूमिका - 'पदार्थभाऽवनी' इसी को देखना पड़ता है !

'असंशक्ति भूमिकाभ्यास पाटवााच्चिरं प्रपंचापरिस्फूर्त्यवस्था पदार्था भावनी । अस्यामवस्थायामपरप्रयत्ने योगी व्युत्तिष्ठते' ।

असंसक्ति नामक पांचवी भूमिका के परिपाक से प्राप्त पटुता के कारण दीर्घ काल तक प्रपंच के स्फुरण का अभाव पदार्थाभावनी भूमिका कहलाती है । पाँचवी भूमिका में विश्वप्रपंच का विस्मरण अल्प काल तक रहता है । और छठी भूमिका में यह स्थिति दीर्घकाल पर्यंत रह सकती है । इन दोनो भूमिकाओं में केवल समय का ही भेद होता है । इस भूमिका को गाढ़ सुषुप्ति के नाम से पुकारते हैं । इस भूमिका में स्थित महापुरुष देह निर्वाहादि क्रिया भी स्वयं व्युत्यित दशा में आ कर नहीं करता । परन्तु अन्य के द्वारा अर्थात् व्युत्थान पा कर क्रिया करता है । दूसरा कोई मुँह में ग्रास दे देता है तो दाँत और जीभ से खाने की क्रिया हो जाती है ।

Pineal Body or gland. (See figure 760, page 794) Pictuitary Body or Hypohysis (See figure 765, Page 800) जब कुंडलिनी आज्ञाचक्र में प्रवेश करती है तब ये दोनों Glands आज्ञाचक्र को जगाते हैं । Madam Blavhastky ने लिखा है, "The pulsation of the pituitary body mounts upwards more

चित्र नंबर ६
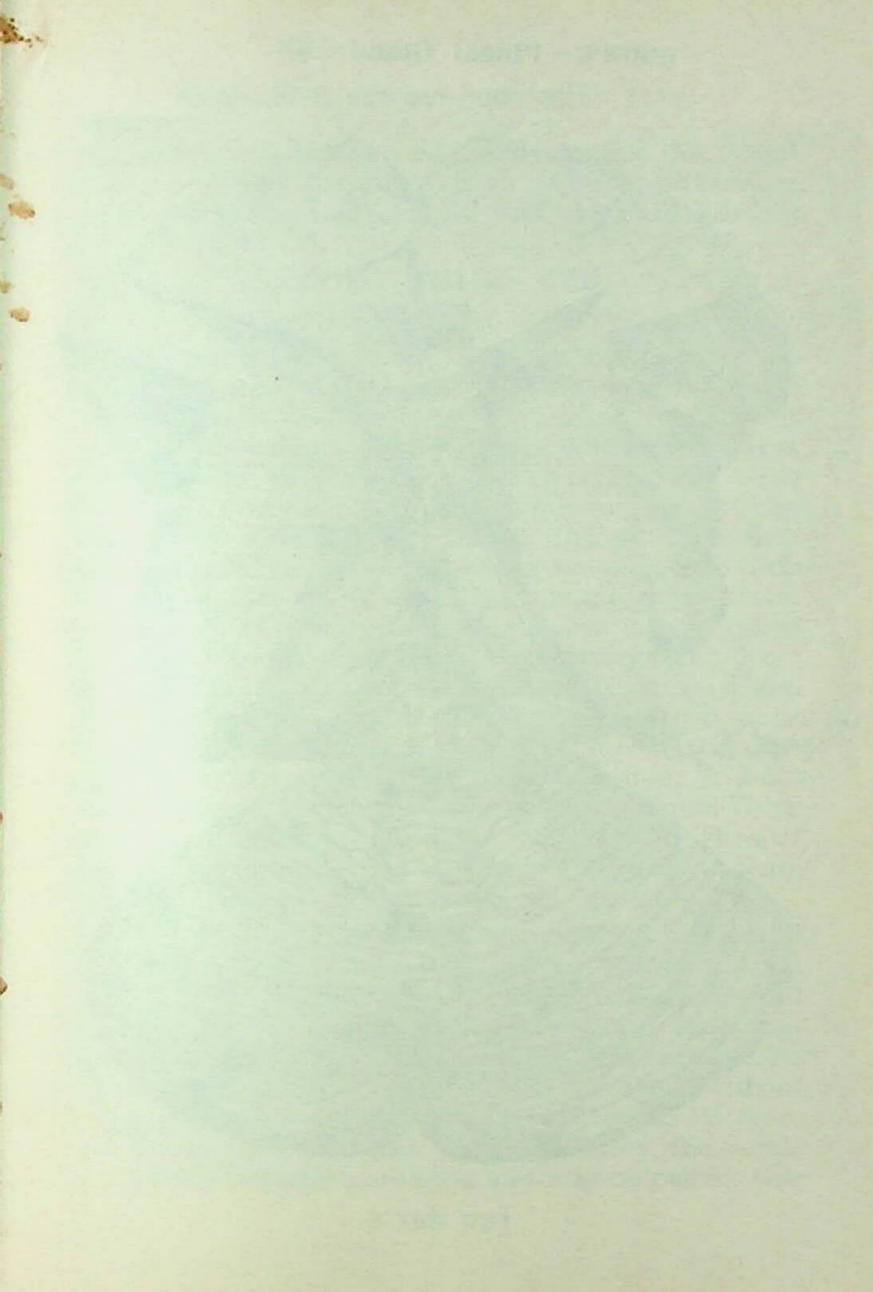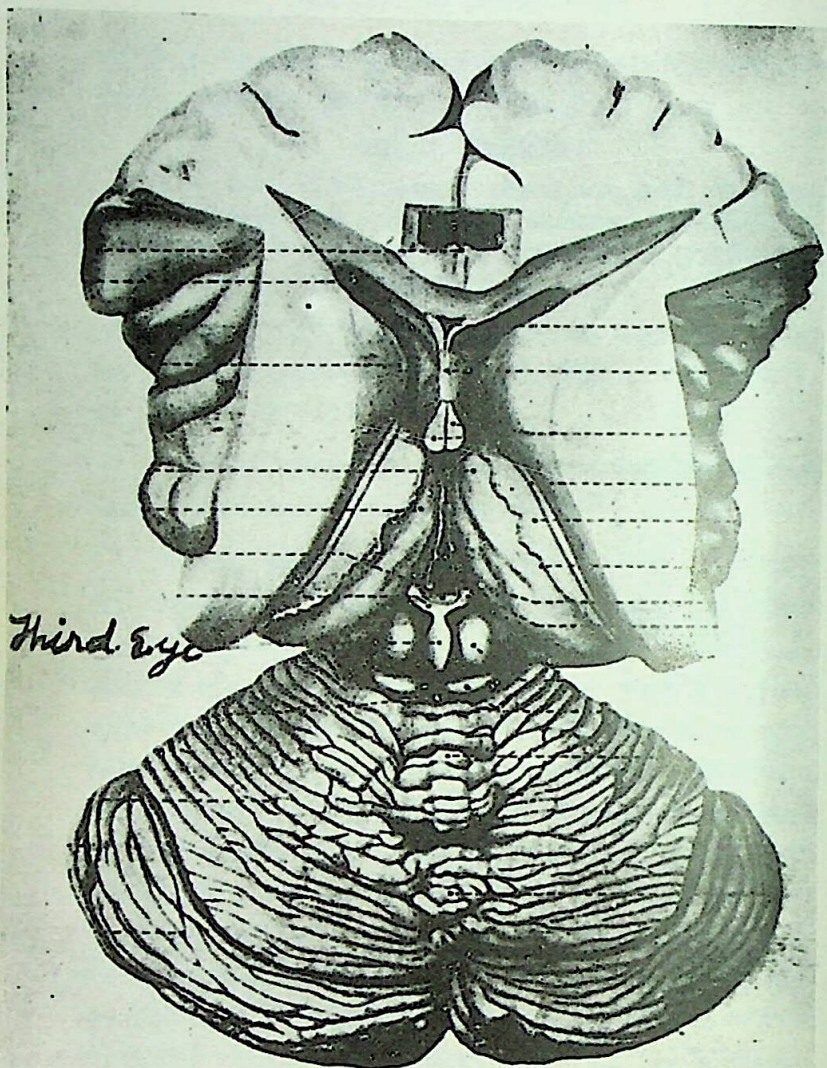
and more until the current finally strikes the pineal gland and the dorment organ (Adnya Chakra is awakened and set all glowing with the pure Akashik Fire-Param Shiva")

ABOUT THIRD EYE

IN THE CRANIAL CAVITY

In the anterior Centre of the frontal lobe of the brain from for eye movements (the lobe of intelligence) from which are issued the orders to move the different parts of our voluntary muscles and which is a plexus controlled by our thought. This chakra is the Naso Ciliary extention of the cavernous plevus /of the sympathetic through the opthalmic division of the fifth cranial nerve, ending in the ciliary muscles of the iris and at the root of the nose, through the supra-orbital foramen. It has two petals or branches (one is called pineal gland, and second is called pituatary body). Here is found the great light the third eye (the Pariatal eye) as it is called and by contemplation of this yogi gains wonderful and Terrific Psychic powers because this eye is full of fire. It may seem strange, almost incomprehensible, that the chief success in Gupta-Vidya or occult knowledge, should upon such flashes of clairvoyance and that the latter should depend in man, two insignificant excrescences in his cranial cavity.

The Pineal Gland :- This gland which is a small redish body, is placed beneath the corpus callosum, and rests upon the corpora quadringemina. It has composed of tubes and sacculus lined and sometimes filled with epithelial cells, and containing deposit of earthy salts (Brain Sand). A few small atrophied nerve-cells without axons are also seen. In certain lizards, such as Hatteria, and in certain fishes such as the Lamprey, the pineal out growth is better developed and may be paired. One

division corresponds to the pineal gland: the other becomes developed into an eyelike structure connected by never-fibres to the habenular ganglian; This third eye situated centrally on the upper surface of the head but is covered by skin.

Page 879, Chapter 59 th
The Endocrine Orgens Pineal Gland.
By
Halliburton's Physiology

The human pineal body is phylogenetically homologous with the parietal eye of cyclostome fishes : Gray's anatomy. Page 798

It is described separately partly for purposes of convenience and partly because it controls certain automatic bodily activities e.g. the circulation and digestion, over which we have no voluntary control. Every organ of the body over which we have novoluntary control appears to be supplied with two sets of the fibres from the sympathetic and the parasympathetic which have opposite functions.

Page 100, Chapter 9 th
An Autonomic Narvous System,
Halliburton's Physiology,

भागवत, रामायण, महाभारत तथा पुराणादि प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि ऋषि मुनि लोग कठिन तपश्चर्या के पश्चात् कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते थे। इन सिद्धियों मे कई अति विचित्र सिद्धियाँ हैं। एक सिद्धि ऐसी है कि क्रोधित महात्मा की दृष्टि पड़ते ही सामने वाला प्राणी भस्म हो जाता है। इस प्रकार के योगियों की चर्चा हुए योगेश्वर भगवान शंकर के त्रिनेत्रधारी होने की कथा पुराणों में स्थान-स्थान पर आई हुई है। इस कथा पर बहुत दिनों तक मेरा विश्वास नहीं था। किन्तु अध्ययन के बाद यह 'त्रिनेत्र' सत्य साबित हुआ है। यह त्रिनेत्र शंकर जी के भाल प्रदेश

पर बतलाया गया है। जब योगशास्त्र में कुंडलिनी को जगाया जाता है तब वह ऊपर चढ़ती है। अन्त में वह शिर में आती है इस के बाद दोनों आँखो के बीच भृकुटी में (आज्ञा चक्र में) आती है और तभी यह चक्र जगाया जाता है। इस चक्र को योगशास्त्र में 'अग्निचक्र अथवा शिव का तृतीय नेत्र' कहा गया है। अभी पाश्चात्यों ने शरीर पर दो शास्त्र लिखे हैं। एक Anatomy और दूसरा Physiology है। Anatomy में शरीर का वर्णन किया गया है और Physiology Functions of every Part of the body है। इन दोनों ग्रंथो में मनुष्य के मस्तिष्क में आज्ञाचक्र के बीच तीसरे नेत्र की चर्चा की गई है। हम ने भी ऊपर इस तीसरे नेत्र का वर्णन दिया है। जब कुंडलिनी आज्ञाचक्र को जगाती है तब यह तीसरा नेत्र खुल जाता है। जब खुल जाता है तब योगी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इस योगी का सामर्थ्य बड़ा ही तीव्र होता है। जब क्रोधित होकर वह अपने तीसरे नेत्र से देख लेता है तब सामने वाला भस्म हो जाता है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस तीसरे नेत्र का ज्ञान द्राविड़ों कों था। इन लोगों ने केवल शंकर जी को ही त्रिनेत्रधारी बतलाया है। वे स्वयं भी त्रिनेत्र से परिचित होते हुए इस विषय को उन्होने कहीं भी लिख कर नहीं रखा है। संभवतः लिख कर न रखना यह उनकी भूल हो सकती हैं, क्योंकि योगशास्त्र द्राविड़ों का है और शंकर जी भी द्राविड़ों के ही देवता हैं। शंकर जी आर्यों के देवता नहीं माने जाते। Anatomy और Physiology लिखने वाले अंग्रेज शास्त्रकारों को इस तीसरे नेत्र का कार्य तथा परिणाम बिलकुल मालूम ही नहीं हैं। आप लिखते हैं "The function of the Pineal body in the human body is Peculiar and uncertain." See Gray's Anatomy Page 798, पाश्चात्य शास्त्रकार योगशास्त्र से अनभिज्ञ हैं अतएव इस तीसरे नेत्र के विषय में अधिक नहीं जानते।

स्त्री के गर्भाशय में जिस दिन से गर्भ रहता है उसी दिन से एक माह तक माता पिता के रज और वीर्य से उस गर्भ में कलल अर्थात् मूढगर्भ रहता

है। इस माह में उस गर्भ पर शुक्र का प्रभाव रहता है; इसी पहले माह में गर्भ में अस्पष्ट सिर उत्पन्न होता है। इस प्रथम भाव के अधिपति भगवान शंकर जी हैं। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के पंचीकरण में लिखा हुआ है।

द्वितीय भाव

इस भाव में वृषभ राशि का प्रभाव होता है। इस राशि का अधिपति शुक्र है और भावकारक ग्रह भी शुक्र है। यह ग्रह संपत्ति, अन्नपान बताता है। संसारी लोगों के लिए ज्योतिष शास्त्र ने इस भाव में धन संचय का विचार किया है। संन्यासी व साधुपुरुष तो धन से पहले ही दूर रहते हैं। इन का शमदमादि षड्साधन संपत्ति है। योगियों का मुख्य धन शान्ति और ब्रह्मचर्य है। इस में सब से श्रेष्ठ धन ब्रह्मचर्य है। 'ब्रह्मचर्य' प्रतिष्ठायाम् वीर्यलाभ :' वीर्य लाभ से ओज की प्राप्ति होती है; ओज की प्राप्ति से तेज प्राप्त होता है। यतयो भोगसंग्रहात्' - यतियो को भोग का संग्रह याने द्रव्य, स्त्री व मानापमान न करना चाहिए क्योकिं इस संग्रह से उनका अधःपतन या आत्मनाश होता है।

आजकल हम देखते हैं कि जो परमेश्वर प्राप्ति के लिए घरबार,स्त्री पुत्र आदि छोड़कर संन्यास लेते हैं और जंगल में चले जाते हैं वे योग्याभ्यास कर कुछ सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं और किसी ग्राम में मठ या आश्रम बाँधकर प्रपंच के जटिल जंजाल में फँस जाते हैं। राजा भर्त्तुहरि अपने 'वैराग्यशतक' में योगी परिवार के विषय में कहते है -

धैर्य यस्य पिता क्षमाचजननी शान्तिश्चिरमगेहिनी।
सत्यंसूनुरयं दयाच भगिनी भ्राता मनः संयम :॥
शय्याभूमितलं दिशोऽपिवसनं ज्ञानामृतंभोजनं।
एते यस्य कुटुंबिने वदसखे कस्मात्भवं योगिन : ?॥

अर्थात् ऐसे योगी जिनके कुटुंब में धैर्य पिता है, क्षमा माता, चिर शान्ति पत्नी, सत्य पुत्र, दया बहन, मनसंयम भाई है और जिनकी भूमितल

योगी का कुटुंब (Family of Yogi)
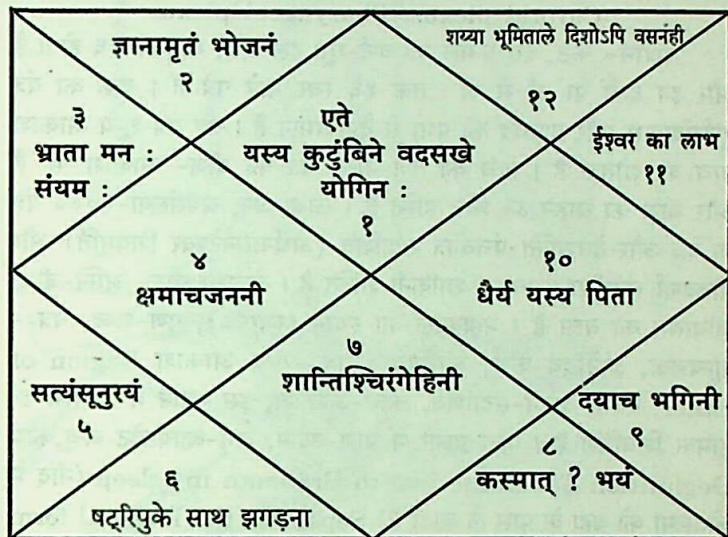
ही शय्या है, आकाश वस्त्र है और ज्ञानामृत ही भोजन है उन्हें किस बात का भय है ?

द्वितीय भाव में इसी कुटुंब का विचार करना चाहिये । अष्टांग योग साधन की दुसरी सीढ़ी-नियम, पृथ्वीधारणा, माया, उदानवायु, जय, त्राटक, नागवायु, हस्तिजिव्हा, दन्तधौति, पिंगलानाडी, जालंधरबंध, संकटासन,गोमुखासन, वृषासन, खेचरीमुद्रा, शांभवी मुद्रा, गजकरणी, मातंगिनी मुद्रा आदि विषय; योग्याभ्यास में यश की प्राप्ति होगी या नहीं; शुभवाणी या शापवाणी; सत्यासत्य वाणी, आत्मा की स्वतंत्रता; शमादि षट्साधन संपत्ति १ शम, २ दम, ३ उपरति, ४ तितिक्षा, ५ श्रद्धा, ६ समाधान आदि बातों का और कंठ कूपे क्षुप्तिपासा निवृत्ति, आदर्श संयम और आस्वाद संयम का विचार इस द्वितीय भाव में करना है ।

विशुद्धचक्र (शनि)

Carotid plexus, Pharyngeal plexus

स्थान- कंठ, इस कमल का वर्ण-धूम्र,दल-१६, मातृका-१६ होता है और इन दलों पर अँ से अँ : तक १६ स्वर माने गये हैं। चक्र का यंत्र पूर्णचंद्राकार और पूर्णचंद्र की प्रभा से दैपीप्यमान हैं। यह यंत्र शून्य आकाश तत्व का द्योतक है। तत्व का वर्ण-नील, यंत्र का बीज- आकाश 'हँ' है और बीज का वाहन ॐ श्वेत हस्ति है। लोक-जन, जपसंख्या-१००० यंत्र के देव और देवशक्ति-पंचवक्त्र सदाशिव (अर्धनारीनटेश्वर शिवमूर्ति) और पीतवर्णा चतुर्भुजा पंचवदना शाकिनी शक्ति है। जालधर पीठ- अग्नि-जीव, जीवात्मा का वास है। महाकाल का स्थान-(रुद्रग्रंथि), गुण-शब्द, यंत्र - शून्यचक्र, ज्ञानेंद्रिय-कर्ण, कर्मेंद्रिय -वाक्, तत्व-आकाश Region of Ether, देवता वाहन-सदाशिव, कार्य-आकाश, इस स्थान में 'छगलाण्ड' नामक शिवलिंग है। पाँच प्राणों में प्राण-उदान, वर्ण-व्हायोलेट ब्ल्यू,कार्य Deglutition Takes the jiva to Brahman in sleep (नींद में जीवात्मा को ब्रह्म के पास ले जाता है) Separates the Physical form the astral body at death, देवदत्त वायु का कार्य-yawning, हमारे प्राचीन आचार्यों ने इस चक्र पर चंद्र का अमल माना है और जर्मन महात्मा गिखतेल के मत से "मंगल ग्रह" अमल करता है। सप्तज्ञान भूमिकाओं में "असंसक्ति" नामक पाँचवी भूमिका इस चक्र पर देखना जरूरी है।

"असंसक्ति-सविकल्पक समाध्यभ्यासेन निरुद्धे मनसि निर्विकल्पक-समाध्यवस्था संसक्तिः ॥ सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध से जो निर्विकल्पक समाधि की अवस्था होती है, वही असंसक्ति कहलाती है। इसे सुषुप्ति भूमिका भी कहते हैं : क्योंकि इस भूमिका में सुषुप्ति अवस्था के समान ब्रह्म से अभेद भाव प्राप्त हो जाता है। यह जगत्प्रपंच को भूला रहता है परंतु समय पर स्वयं उठता ही है और किसी के पूछने पर उपदेश करता है तथा देहनिर्वाह की क्रिया भी करता है। "अस्यामवस्थायां योगी स्वयमेव व्युत्तिष्ठते" ॥

विशुद्ध चक्र–चंद्र

PLATE 159.—VAGUS NERVE (*Continued*)

चित्र नंबर ७
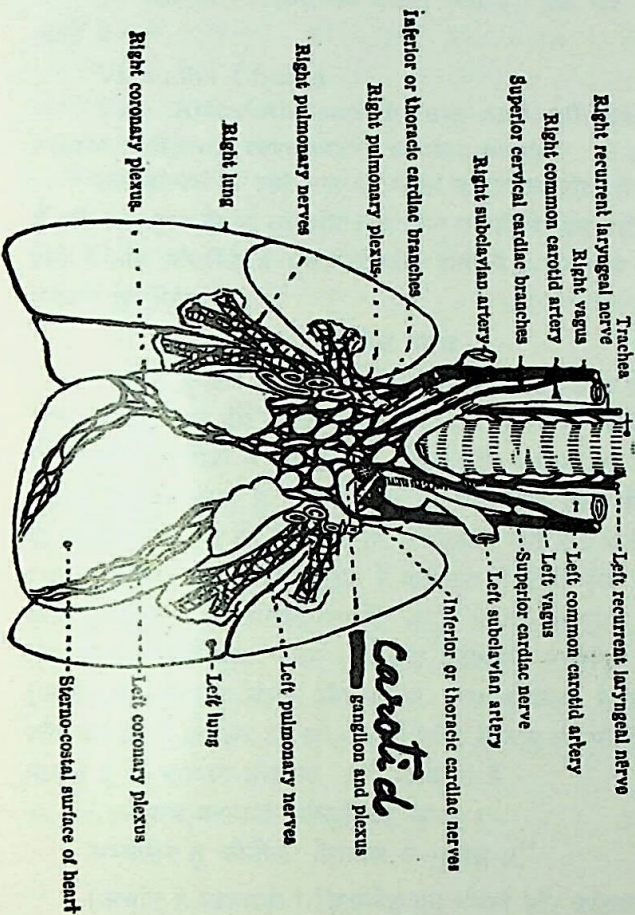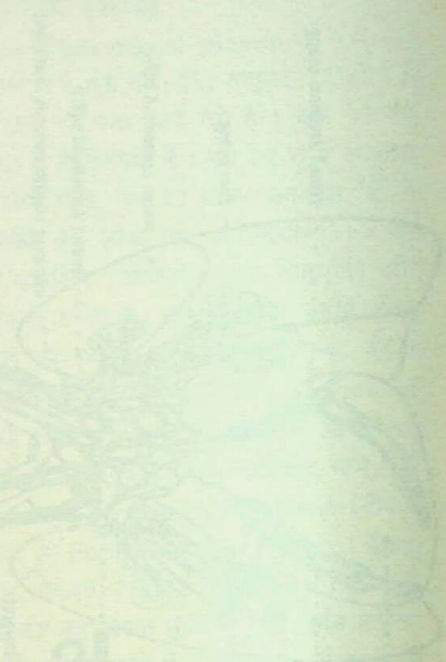
इस चक्र पर मायानन्द को देखना चाहिये । इस चक्र को उड़ियान कहते है ।

Vishudha Chakra

Ego- Altruistic sentiments and affection, grief, regret, respect, reverence, contenments.

स्त्री के गर्भ के दूसरे माह पर मंगल का प्रभाव होता है । पहले माह में स्त्री और पुरुष के जो रज और वीर्य बिन्दु प्रवाही थे, इस महीने में घनीभूत होते हैं और मांसपिंड में भुजाएँ निर्माण होती है । इस भाव के अधिपति भगवान् श्री विष्णु हैं ।

तृतीय भाव

नैसर्गिक कुंडली में इस भाव में मिथुन राशि का उदय होता है । इस भाव और राशि पर बुध का प्रभाव होता है और तृतीय भावकारक ग्रह मंगल है । प्राचीन आचार्यों ने इस में भाई, बहन और पराक्रम का विचार करना चाहिए ऐसा बतलाया है । योगी पुरुष तो भाई बहन छोड़ कर चले जाते है, इसलिए यहाँ इन का विचार करने की जरूरत नहीं है । भाई मनसंयम है (भ्राता मनःसंमयः) । राजा भर्त्तृहरि ने बतलाया है योगी पुरुष का मनसंयम अति दुस्तर कार्य है । भगवद्गीता में अर्जुन भगवान से पूछते हैं चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद दृढम् । तस्याहं निग्रहमन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ (अर्थात् यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है इसलिए उस को वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर मानता हूँ ।) भगवान् श्रीकृष्ण उत्तर में कहते हैं -

"असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥"

(अर्थात् हे महाबाहो ! निस्सन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है; परन्तु अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिए बारम्बार यत्न करने पर बैराग्य से वश में होता है, इसिलए इस को अवश्य वश में करना चाहिये ।) यह स्थान बुद्धि का है । इस बुद्धि को अपने बल से, हठयोग द्वारा अपने

वश में रखना पड़ता है । मनसंयम ही योगी के लिए पराक्रम है । साधन चतुष्टय, आसनों का अभ्यास करना, नेति, कृकरवायु, क्रोध, पूषा, वायुधारणा, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, कुक्कुटासन, कर्णधौति, कपालभाति, (वातक्रम, व्युत्क्रम, शीतक्रम), वज्रोली (घेरंडसंहितांतर्गत), मनश्चक्रं (बलवान चक्र) Phrenic Plexus द्विदल, अग्नि, माया, परमात्मा, परमहंस, पूर्णगिरीपीठ, आदि बातों का इस भाव में विचार करना चाहिये । इस भाव के अधिपति श्री गणेश जी हैं ।

गर्भ के तीसरे माह में गुरु का प्रभाव होता है और इस माह में अंकुर उदर आदि अवयव पैदा होते हैं । श्रवणसंयमश्रोत्राकाशयोः सबंधसंयमादिव्य श्रोत्रम् ।

चतुर्थ भाव

इस भाव में कर्क राशि का उदय होता है, जिस पर चन्द्र का प्रभाव होता है । इस चतुर्थ भाव का भाव कारक ग्रह चन्द्र है किन्तु मेरी राय में इस का भाव कारक ग्रह शनि है । इस भाव में मनुष्य रोज रात को सोता है । निद्रावस्था यह एक प्रकार की मृत्यु की अवस्था होती है । प्रापंचिक लोग रोज रात्रि के समय सोते हैं किन्तु योगी जागते हैं । भगवान् कृष्ण कहते है । " या निशासर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने : ॥" अर्थात् जिस समय सकल भूत प्राणी (परमार्थ मार्ग में) सोते हैं उस समय संयमी पुरुष (योगी) (परमार्थ मार्ग में) जागते हैं और सकल प्राणी मात्र जिस समय (अपने प्रपंचमें) जागते हैं,उस समय योगी सोते हैं अर्थात् सांसारिक जीवन से अलिप्त होने के कारण प्रापंचिक बातों की ओर ध्यान ही नहीं देते । योगी अपने योगाभ्यास में कितना सतर्क वा सजग होता है यह इस भाव में देखना चाहिये । मठ या आश्रम आदि का विचार इस भाव में करना चाहिये ।

चतुर्थस्थान

अनाहतचक्र Cardiac plexus (गुरु)

स्थान- हृदयदेश, अरुणवर्ण, द्वादशदल,. दल के अक्षर " कॅ से ट" तक, चक्र का यंत्र-धूम्रवर्ण, षट्कोण तथा वायु तत्व का सूचक है । यंत्र का

अनाहत चक्र—मंगल

चित्र नंबर ८
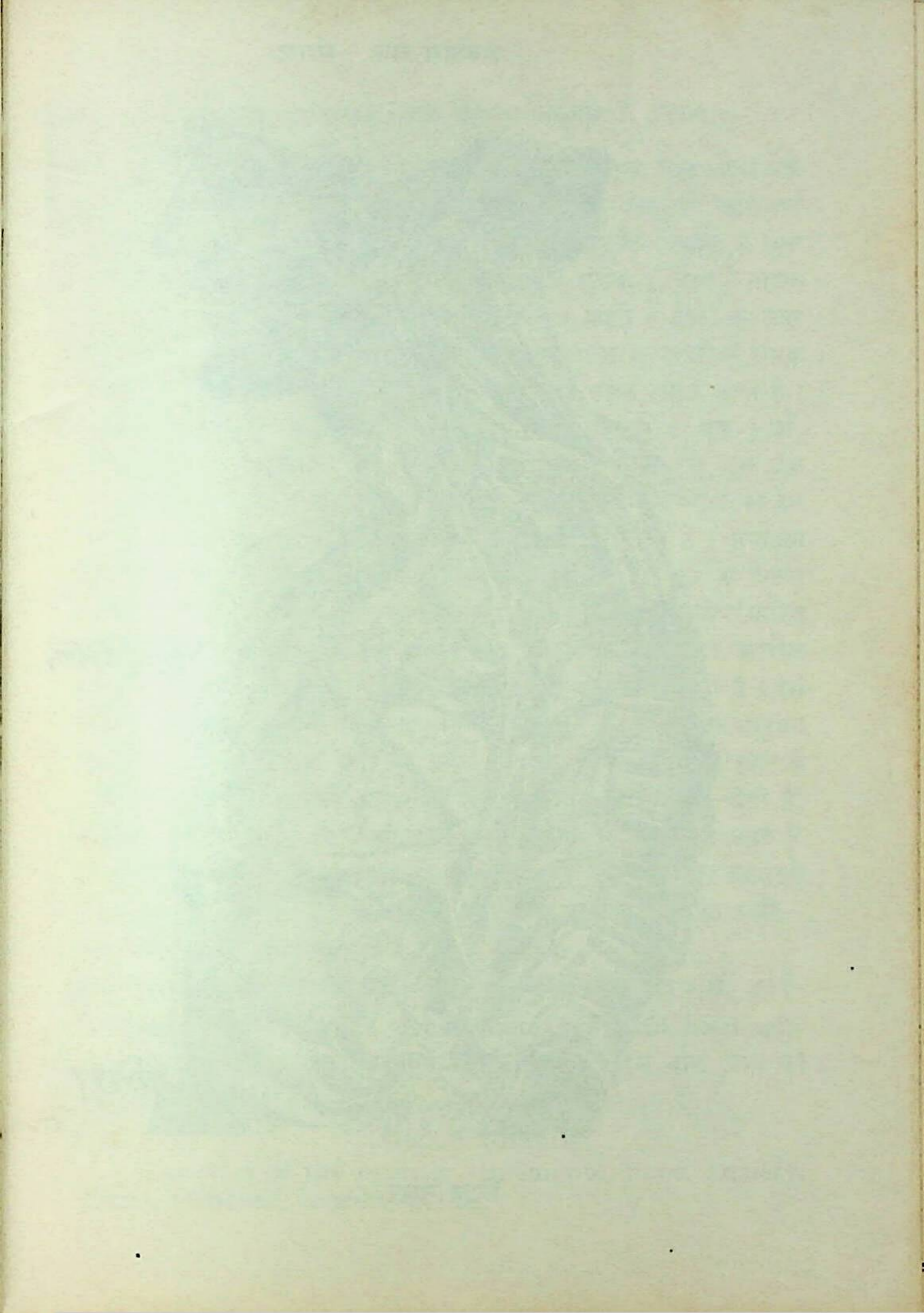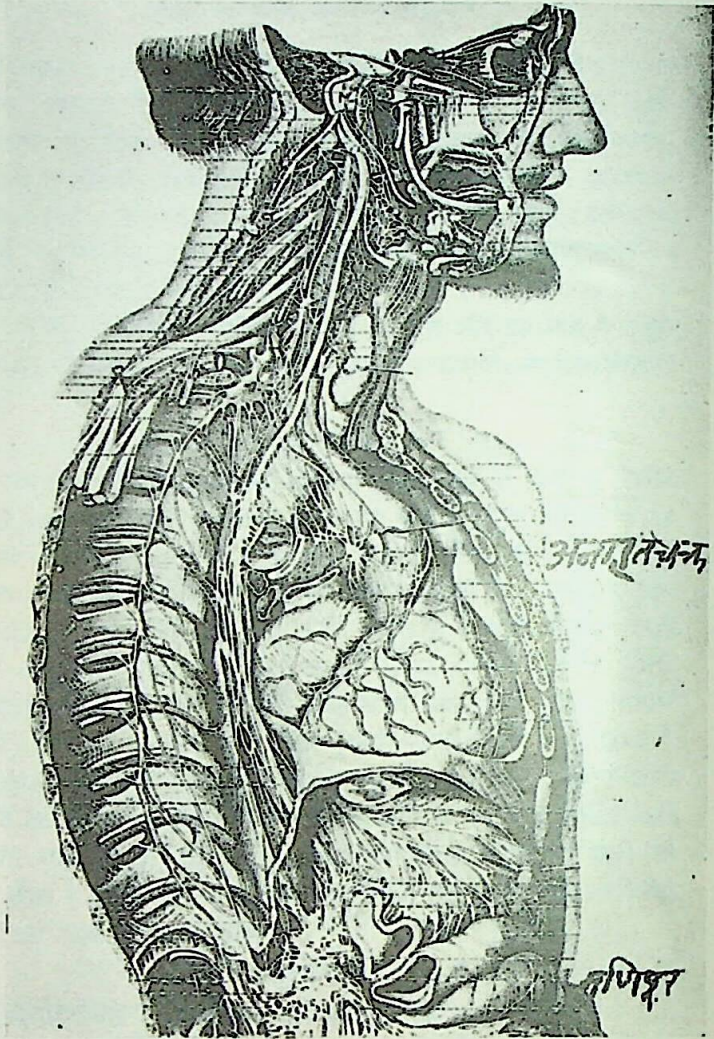
बीज ''यँ''और बीज का वाहन मृग है। पिनाकि सिद्ध लिंग अधोमुखी है। यंत्र के देव तथा शक्ति ईशान रुद्र उपरहंस और चतुर्मुखी अग्निवर्णा चतुर्भुजा काकिनी शक्ति है। इस चक्र के मध्य में शक्ति त्रिकोण है जिस में विद्युत् सा प्रकाश व्याप्त है। इसी त्रिकोण से संबंध " बाण" नामक स्वर्ण कांतिवाला शिवलिंग है, इसी को कल्प वृक्ष कहते हैं जिस के ऊपर एक छिद्र है। इस छिद्र से लगा हुआ अष्टदल वाला हृत्पुण्डरीक नामक कमल है। इस हृत्पुंडरीक में उपास्य देवता का ध्यान किया जाता है। (उमासमेत उमेश) जपसंख्या ६०००, अग्निऋषि, महर्लोक गुण-स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय-त्वचा, कर्मेन्द्रिय-कर, वाणी-मध्यमा, यँकार बीज वायु, इस चक्र पर प्राचीन आचार्यों ने रवि ग्रह का अमल बतलाया है। मैने मंगल को इस स्थान पर रखा है, जर्मन महात्मा गिखतेल ने रवि को दिया है। सप्तज्ञान भूमिकाओं में ''सत्वापत्ति'' नामक भूमिका है। इसी को इस चक्र पर देखना चाहिये। ''सत्वापत्ति-निर्विकल्प ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार :'' संशयविपर्ययरहित ब्रह्म और आत्मा के तादात्म्य अर्थात् ब्रह्म स्वरूपेकारत्मत्व का अपरोक्ष अनुभव ही सत्वापत्ति नाम की चतुर्थ भूमिका है। यह सिद्धावस्था है। इस भूमिका में स्थित महापुरुष को ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'' का वास्तविक अनुभव हो जाता है। यद्यपि इस दशा को प्राप्त पुरुष को जगत् का भान होता है और शरीर तथा अंतःकरण द्वारा सभी क्रियाएँ सावधानी के साथ होती हैं, तथापि मायावश जीव जिस जगत् को सत्य स्वरूप देखता है उस जगत के मिथ्यात्व का उसे यथार्थ अनुभव हो जाता है। यह भूमिका स्वप्न कहलाती है। अनाहत ध्वनि-अनाहत चक्र में से सुनने को आती है। आहत ध्वनि - यह ध्वनि मणिपुर से निकलती है।)

इस चक्र में प्राणवायु रहता है। वर्ण-पीत स्थान-हृदय में, कार्य-Respiration. सहवायु-नाग, does eructation and hiccough

इस चक्रपर में विषयानन्द को देखना चाहिये। इस बाण लिंग को पूर्णागिरी पीठ कहते हैं।

Anahat Chakra

The seat of the egoistic sentiments, hope, anxiety, doubt, remorse, conceit,egoism,

ऐसा वेदान्त शास्त्र में लिखा है। संन्यासी लोगों के घर नहीं होते। 'शय्याभूमितलं दिशोऽपिवसनं' ऐसी उन की परिस्थिति होती है। आजकल हम देखते हैं कि सब परमार्थी लोग आश्रम, मठ या कुटि बांधते हैं ओर स्वयं गुरु बनकर शिष्य व शिष्या बनाते हैं और उनके द्वारा द्रव्य-प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार जिन्दगी के आखीर तक पैसा जुटाते रहते हैं। उन के देहावसान के पश्चात् शिष्यों में बड़े झगड़े मचते हैं और इस प्रकार योगी का अधःपतन होता है। कोई भी योगी पुरुष आश्रम, मठ या कुटी बांधेगा या बिना आश्रम, मठ या कुटी बांधे समाधिस्थ होगा ? उस के जीवन का अन्त होने तक उस की स्थिति किस प्रकार की रहेगी ? अष्टांग योग साधन की चौथी सीढ़ी प्राणायाम की स्थिति बतलाती है। प्राणायाम पूरा होगा या नहीं इसका विचार करना है। लययोग, वर्तमान जन्म में होने वाले कर्म, जलधारणा, नौलिकर्म, हृद्धौति, महाबंध, योनिमुद्रा, अन्तर्द्धौति, (वात, वारि व अग्नि छोड़कर) मंडुकासन, उत्तान- मंडुकासन।

गर्भ के चौथे माह पर रवि का प्रभाव होता है और इस माह में अस्थि, हाथ पैर आदि अवयव उत्पन्न होते हैं। हृदयोचित्तसंवित् ॥ वात संयम इस भाव की अधिपति दुर्गा हैं।

पंचम भाव

इस भाव में सिंह राशि का उदय होता है। जिस का अधिपति रवि है। शास्त्रकारों ने पंचम भावकारक ग्रह गुरु बतलाया है किन्तु मेरी राय में शुक्र और रवि इन दो ग्रहों का भी उस में समावेश करना चाहिये। योगी व संन्यासी लोगों की कुंडली में यह स्थान प्रबल होता है। इतना प्रबल स्थान दूसरा कोई भी नहीं है। जब कोई योगी या संन्यासी योगाभ्यास को प्रारंभ करता है और अष्टांग योग साधन में दिये हुए यम, नियम आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास पूरा करता है उस समय अष्टसिद्धियाँ या कोई सुन्दर कामिनी योगी के सामने योगी को योगभ्रष्ट करन के लिए उपस्थित होती है। यह समय योगी की परीक्षा का कठिन समय होता है, क्यों कि इस समय यदि वह स्त्री के वशीभूत होता है तो योगभ्रष्ट हो कर उस का अधः पतन हो जाता है।

अष्टांग योग साधन में सीढ़ी 'प्रत्याहार' है । प्रत्याहार किसे कहते है ? मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यान चारिणः । नियंत्रणे समर्थोऽयं निनाद निशितांकुशः चरता न्यक्षुरादिनां विषयेषु यथाकमस् यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहार : प्रकीर्तितः।। ('हठयोग प्रदीपिका' पृष्ठ १७६) मन में से बाह्य विषयों का त्याग करते जाना, इसी को प्रत्याहार कहते हैं । प्रत्याहार की सीढ़ी सफलता पूर्वक चढ़ जाना एक बड़ा ही दुष्कर कार्य है । विश्वामित्र और पाराशर जैसे महामुनि भी इस अवस्था में जा कर योग में न टिक सके तो फिर सर्व साधारण मनुष्यों की क्या कथा? किसी ने ठीक ही कहा है- 'वातांबुपर्णाशनात् । तेऽपि स्त्री मुखपंकज सुललितं दृष्टवैव मोहंगता । शाल्थन्नं सघृतंपयोदधियुतं भुंजन्ति ये मानवाः ।। तेषाम इन्द्रिय निग्रहो यदि भवेत् विंध्यत् तरेत्सागरैः ।।' प्रत्यहार पूरा होगा या नहीं ? इस का विचार इसी स्थान से करना है ।

अष्टसिद्धि और स्त्री के मोह पर शुक्र का प्रभाव होता है । अपने ज्ञान-बल और निश्चय बल से इस मोह को दूर हटाना गुरु का कार्य है । इस कार्य पर गुरु का प्रभाव होता है । इस पंचम स्थान में पुत्रोत्पत्ति का विचार किया जाता है । इसी तरह सत् शिष्य ही पुत्र के समान होता है । इस का भी विचार करना है । इस स्थान में पंच महाभूतोत्पत्ति (ब्रह्म से माया, माया से कर्म, कर्म से त्रिगुण ओर त्रिगुण से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई है । इस का विचार रवि से किया जाता है । मोह, स्वाध्याय, समानजय, वज्रोलीमुद्रा, सिंहासन, नौली, गोरक्षासन, उपासना पूर्ण होगी अथवा नहीं? अध्ययन व अध्यापन, नित्यानित्य वस्तुविवेक ईश्वर गुणानुवाद आदि बातों का विचार इस भाव में करना चाहिये ।

गर्भ के पाँचवे माह में चंद्र का प्रभाव होता है और इस माह में चर्म, अस्थि, नाड़ियाँ आदि गर्भ में उत्पन्न होती हैं । इस भाव के अधिपति भगवान शंकर जी हैं । कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् प्रतिभाद्दाम् सर्वम ।

षष्ठ भाव

इस भाव में कन्या राशि का उदय होता है जिस पर बुध का प्रभाव

होता है । इस भाव के कारक ग्रह शनि और मंगल है । प्राचीन शास्त्रकारों ने अपने ग्रंथों में ऐसा लिखा है कि छठवाँ, आठवाँ ओर बारहवाँ स्थान दुःस्थान है क्यों कि इन स्थानों में चाहे कोई भी ग्रह क्यों न हो, शुभफल नहीं प्राप्त होता । इस का कारण यही हो सकता है कि षष्ठभाव के कारक ग्रह जो शनि और मंगल हैं, दुःख देनेंवाले ग्रह हैं । अष्टभाव और व्ययभाव का कारक ग्रह शनि है । इस प्रकार से हम देखते हैं कि षष्ठस्थान में आधिभौतिक दुःख, अष्टम स्थान में आधिदैविक (मानसिक और शारीरिक दुःख) और व्ययस्थान में आध्यात्मिक दुःख भोगने पड़ते हैं । प्रांपचिक लोगों के लिए ये अशुभ फल ठीक ही नही हैं किन्तु योगी और संन्यासियों के लिए जो कि घरबार छोड़ कर जंगल में जाते हैं और इन्द्रिय निग्रह करने में सफल होते हैं -यहाँ तक कि जिन के लिए 'शीतोष्ण सुखःदुःखेषु तथा मानापमानयोः' एक ही बराबर है ।

यह स्थान शुभ फल देने वाला होता है । योगी व संन्यासी की कुंडली में ये तीनों स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । स्त्री,पुत्र, मकान, खेती आदि में फँसे रह कर त्रिविध ताप भोगे बिना मनुष्य के मन में वैराग्य भाव उत्पन्न नहीं होते । इस स्थान में शीतोष्ण सुखदुःख, मानापमान आदि का विचार करना चाहिये । अष्टांगयोग साधन में छठवीं सीढ़ी 'धारणा' है ? 'धारणा' किसे कहते हैं ? 'देशबंधश्चित्तस्य धारणा' । पातंजल योगसूत्र में पहले विभूतिपाद को भी यही अर्थ दिया हुआ है । अपनी चित्त वृत्तियाँ अन्य विषयों में न स्थिर कर, नाभिचक्र, हृदय, उर, कंठ, नासिका का अग्रभाग आदि दस स्थानों में ही स्थिर करना इसी को 'धारणा' कहते हैं। समान वायु,सगुण साक्षत्कार,संकल्प, मत्सर,जलधारंणा' 'अयुक्ताभ्यासयोगेने सर्वरोग समुभ्दवः' अर्थात् अयुक्त अभ्यास सब प्रकार के रोगों की जड़ है । उड्डीयान बंध, मूलशोधन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन, नाभिचक्रे काव्य ब्यूह ज्ञानम् आदि बातों का विचार इसी भाव में करना है ।

गर्भ के छठवें माह पर शनि का प्रभाव होता है । इस माह में त्वचा व रोम पैदा होते हैं और गर्भ में हलचल उत्पन्न होती है ।

मणिपूर चक्र—रवि

PLATE 217.—CŒLIAC PLEXUS

चित्र नंबर ९
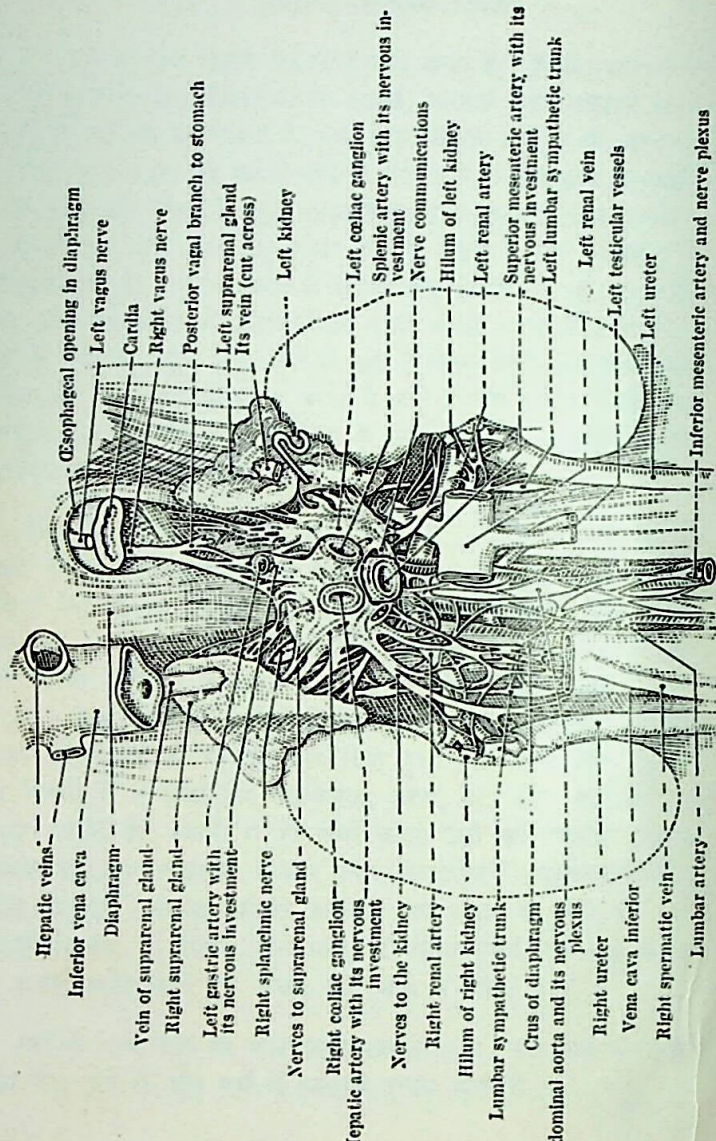
किसी भी योगी पुरुष के लिए काम क्रोधादि षड्रिपु हैं, जिन में सब से महान् व दुर्दम्य दुश्मन 'काम' होता है। व्यास जी ने अपने सूत्र में कहा हैं - 'मातास्वससादुहितृवा नैक शय्यासनो भवेत। बलवानमिंद्रियं ग्रामो विद्वांसमपिकर्षर्ति ॥ संगात् संजायतेकामः। कामात् क्रोधो भिजायते ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा है - 'जहिशत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्'। इन षडरिपुओं को जब तक जीत नहीं लिया जाता जब तक परमार्थ का मार्ग निष्कटंक नहीं होता। Alan Leo अपने ग्रंथ में लिखते है "The sixth house is the most mystical house' इस छठवें स्थान में अन्तर्ज्ञान, स्वप्न में दृष्टान्त होना, पिशाच्च,देवतादि का दर्शन होना आदि बातें देखना चाहिये। यही कारण है कि मैनें इस स्थान का अधिपतित्व नेपच्यून को दे दिया है। इस भाव का अधिपति भगवान् भैरव है।

षष्ठ स्थान

मणिपूरचक्र (मंगल)

Solar plexus, Epigastric plexus, Coeliac plexus, Region of Sun रवि।

स्थानः- नाभि, दल-दश, दश दलों का अंग्रेजी नाम 1 Phenic 2 Hepatic 3 Lienal 4 Superior gastric 5 Supra Renal 6 Renal 7 Spermatic 8 Superior Mesentric 9 Abdominal aortic 10 Inferior mesentric. चक्र का वर्ण-नील, लोक-स्वर्लोक, दलों के अक्षर-डँ से फँ तक, तत्व अग्नि, रँबीज, बीज का वाहन मेष, गुण-रुप,ज्ञानेंद्रिय-चक्षु, कर्मेद्रिय- चरण, रुद्रासिद्धलिंग, इस चक्र का यंत्र त्रिकोण है। इस के तीनों पार्श्व में द्वार के समान तीन 'स्वस्तिक' स्थित हैं। यंत्र का रंग बाल रवि के समान हैं यंत्र के देव और शक्ति-वृद्धरुद्र और त्रिवक्त्रा चार हाथों की मेघवर्ण समान वर्ण की लाकिनी शक्ति है। जपसंख्या ६०००, कार्य तेज, प्रसरण, ऊष्णवाह, देवतावाहन-रुद्रनन्दी, कर्मेदिय-गुद, विष्णुग्रंथि (इन ग्रंथियो में स्थान का मतभेद दिखाई देता है),

प्राचीन आचार्योंने इस चक्रपर मंगल ग्रह का अधिष्ठान दिया है। लेकिन मैने रवि को दिया है। जर्मन महात्मा गिखतेल ने शुक्र को दिया है। इसी को वडवानल कंद कहते हैं। पांचप्राणों में एक प्राणवायु को देखना है। स्थान-नाभि, वर्ण-हरा, कार्य-अन्न पचाने का कार्य (Digestion) सहवायु-कृकर वायु का कार्य भूख और प्यास निर्माण करना। इस चक्र पर कर्तव्यानन्द (कर्मयोगानन्द) देखना है।

About Solar Plexus

The Solar plexus lies on the posterior abdominal wall in the relation to the abdominal aorta and behind the stomach. The plexus is continuous with subordinate plexuses Diaphragmatic, Superior, Mesentric, and Aortic, and by means of the HYPO-GASTRIC NERVES the aortic plexus becomes continued into the hypogastric plexus which again FORMS CHIEF ORIGIN OF THE PELVIC PLEXUS

The Discectional Anotomy
by
Late Dr. Cunningham
M.D.F.R.S. & C.
London

सप्तज्ञान भूमिकाओं मे तीसरी भूमिका "तनुमानसा" इस चक्र पर देखना है "तनुमानसा" निदिध्यासनाभ्यासेन मनस एकाग्रतया सूक्ष्म वस्तु ग्रहण योग्यता तनुमानसा। 'निदिध्यासन (ध्यान और उपासना का अभ्यास) में मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है, उस के द्वारा जो सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण करने की सामर्थ्य (योग्यता) प्राप्त होती है उसे तनुमानसा कहते हैं। ये तीन भूमिकाएँ जाग्रत भूमिकाएँ कहलाती हैं, क्योंकि इन में जीव और ब्रह्म का भेद स्पष्ट ज्ञात होता है। इन में स्थित व्यक्ति साधक माना जाता है; ज्ञानी नहीं।

जो योगसाधक (किसी भी प्रकारका योग हो) जब तक इस चक्र को जीत नहीं सकता तब तक योगी नहीं हो पाता, इस लिए सब से बड़े महत्व का

यह चक्र है। योग साधक की जब तक देहावस्था नहीं छूटती तब तक सब प्रयत्न व्यर्थ हैं।

Manipoor Chakra

In the production of sleep and thirst and the expressions of passions like jealousy, shame, fear, stupefaction

सप्तम भाव

इस स्थान में तुला राशि का उदय होता है जिस का स्वामी शुक्र है। शास्त्रकारों ने इस भाव का भावकारक ग्रह शुक्र ही दिया है। शुक्र ज्ञानी और योगी है और तुला राशि में ही ज्ञान है। अष्टांग योगसाधन में सातवीं सिढ़ी 'ध्यान' है। प्रापंचिकों का ध्यान 'स्त्री और धन' एवं योगियों का ध्यान 'ईश्वर' है।

इस स्थान में मनुष्य प्राणी का गुप्त कर्म देखा जाता है। जिस प्रकार से स्त्री के साथ संभोग कार्य गुप्त रीति से किया जाता है उसी प्रकार से योगी आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, समाधि आदि कर्म गुप्त रीति से करते हैं। योगी यह सब कर्म प्रकट रीति से करता है या गुप्त रीति से। योगी स्त्रीजनसंमर्द में फँसेगा या अलग रहेगा, काम व्यान वायु, तपश्चर्या, थलबस्ति, मत्स्येन्द्रासन, मयूरासन, ईश्वर से प्रेम करेगा या नहीं ?

स्वाधिष्ठान चक्र (Plexus)

Sacral Hypogstirc Plexus, Prostatic Plexus (शुक्र)

स्थानः- बस्ती, वर्ण-सिंदूर, दल-षड्यदल, बाल सिद्धलिंग षडांगुल, जप संख्या ६०००, बीज-वँ, दलों के-अक्षर-बँ भँ मँ यँ रँ लँ, देवता-विष्णु और देवशक्ति-चार हाथों वाली दो मुख और आकाश वर्ण की रागिनी है। इस चक्र का यंत्र जलतत्व का द्योतक है। और यंत्र का आकार अर्ध चंद्राकार है। इस अर्ध चंद्रकार यंत्र का रंग चंद्रवत् शुभ्र है। बीज का वाहन मकर हैं। वँकार बीज वरुण, गण-रस, ज्ञानेंद्रिय- रसना, कर्मेंद्रिय- लिंग, लोक भुवर्लोक, अधिकारी - ब्रह्मा सृष्ट्याधिकारी, कार्य-आप आकुंचन रसवाह, देवता-विष्णु, वाहन - गरुड, कर्मेंद्रिय

हस्त, प्राचीन आचार्यों ने इस चक्र पर शुक्र ग्रह का अमल दिया है, जर्मन महात्मा गिखतेल ने बुध का दिया है। गिखतेल के मत से मैं सहमत नहीं हूँ क्यों कि इस चक्र पर भगवान विष्णु का अधिष्ठान प्राचीन आचार्यों ने दिया है और भगवान् विष्णु षडगुणैश्वर्य का और षड्विकार के मालिक हैं। यह ऐश्वर्य छ भग और षड्विकार इस चक्र पर रखा है इसलिए शुक्र अधिष्ठान बराबर है।

इस चक्र पर सप्तज्ञान भूमिकाओं का 'द्वितीय भूमिका-विचारणा' 'गुरुमुपसृत्य वेदान्त वाक्य विचारात्मक श्रवण मननात्मिका वृत्ति-सुविचारणा' श्रीसद्गुरु के समीप वेदान्त वाक्य के श्रवण मनन करने वाली जो अन्तःकरण की वृत्ति है यह सुविचारणी कहलाती है।

पंच प्राणों में व्यान नामक वायु इस चक्र पर अमल करता है। वर्ण- गुलाबी, स्थान-सब शरीर में कार्य- रक्ताभिसरण, सहवायु-धनंजय, Causess Decomposition of Body. इस चक्र पर भक्ति आनंद देखना चाहिए।

Swadhisthan Chakra

This chakra is the sacral plexus with six branches concerned in the excitation of sexul feelings with the accompaniments of lassitude. stupor, cuerlty, suspicion, contempt.

गर्भ के साँतवे माह में बुध का प्रभाव होता है। इस माह में चेतना और नाखून उत्पन्न होते है। इस भाव के अधिपित प्रभु राम जी हैं। इस बात का विचार इस भाव में करना है।

अष्टम भाव

मानव प्राणी को कई गुह्यांग होते हैं जिस में पायू और लिंग हैं। इन गुह्योंगो पर वृश्चिक राशि और मंगल ग्रह इन का प्रभाव माना जाता है। अष्टम भाव मृत्युस्थान कहलाता है। यह स्थान गूढ़ है और वृश्चिक राशि भी गूढ़ है। लेकिन इस भाव के भावकारक ग्रह शनि महाराज होते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र—शुक्र

PLATE 231.—SACRAL PLEXUS

Anterior primary ramus of 4th lumbar nerve
Descending branch
Superior gluteal nerve
To glutæus medius
To glutæus minimus
To tensor fasciæ latæ
To piriformis
To gemellus superior
To gemellus inferior
To quadratus femoris
Sciatic
Inferior gluteal nerve
Posterior cutaneous of thigh
To obturator internus
Ischium
To bulb of urethra
To transversus perinei
To ischio-cavernosus
To bulbo-spongiosus
Urethral nerve (to spongy portion of urethra)
Superficial or cutaneous (skin of scrotum and penis)
Deep branches
Lumbar sympathetic trunk
Anterior primary ramus of 5th lumbar nerve
Lumbo-sacral trunk
Promontory of sacrum
Anterior primary ramus of 1st sacral nerve
2nd sacral nerve
Sacrum
Sacral sympathetic trunk
3rd sacral nerve
4th sacral nerve
5th sacral nerve (coccygeal plexus)
Ganglion impar
Coccyx
Coccygeal glomus (coccygeal body.
Pelvic splanchnic nerves
Ischial spine
To levator ani
To external anal sphincter
Pudendal
Dorsal nerve of penis or of clitoris
Perineal nerves

चित्र नंबर १०

वृश्चिक राशि हठयोगी बनाती है; वैसे तो यह दुःख देने वाली राशि है। शनि महाराज मनुष्य को मृत्यु और ईश्वरी ज्ञान प्रदान करते हैं। यह स्थान गुह्य होने से यहाँ पर गूढ़ विषयों का विचार करना है। अष्टांग योग साधन में आठवाँ अंग 'समाधि'है। इस विषय पर ध्यान देना चाहिए। योग नामक शास्त्र में ऐसा कहा है कि 'ध्यान बहुत काल तक जब स्थिर होता है तब इसी को समाधि कहते है।' समाधि इसी को कहते हैं कि बाह्य जगत् को भूला जाता है और स्व शरीर की आसक्ति छूट जाती है तथा एकाग्र चित्त होता है। समाधि दो किस्मकी होती है-पहली संप्रज्ञात समाधि और दूसरी असंप्रज्ञात समाधि। इस भाव में संप्रज्ञात समाधि का विचार करना है। वृश्चिक याने बिच्छू कहलाता है। बिच्छू यह प्राणी हर हमेशा घर के अड़ोस-पड़ोस में जिस जगह पर मनुष्य का हाथ न पहुँच सके ऐसी जगह पर या छोटे छोटे विवर में अपना निवास करता है। ऐसे ही प्रकार का एक और प्राणी है उसका नाम है 'साँप'। मनुष्य के गुदाद्वार के समीप एक नाड़ी आई है उसीको योग शास्त्रकारों ने सर्प कहा है। यह संर्परुपी नाड़ी मनुष्य को ईश्वरी ज्ञान प्रदान करने वाली है। यह नाड़ी कहाँ है इसी का विवेचन प्रथम करना है। रीढ़ की हड्डी के नीचे गुदाद्वार के ऊपर माँस का एक छोटा सा ठोस गोला है। अंग्रेजी ॲनॉटमी में इस को Glomus coccygeum or Gland of Laschka कहते हैं। इसी को ही योगशास्त्र में 'स्वयंभू लिंग'कहते हैं। छोटे बच्चों को कभी-कभी टट्टी के समय उन के गुदाद्वार से एक माँस का गोला बाहर आता है। उस को वह अपनी उँगली से अंदर दबाने लगता है। यह स्वयंभू लिंग है। इस स्वयंभू लिंग की शक्तिपर मनुष्य की शक्ति निर्भर है। इस स्वयंभू लिंग को वह सर्परूप नाड़ी साढ़े तीन चक्कर से वेष्टित हुई है और वह अपना मुँह नीचे गुदाद्वार की तरफ करके सोई है। योगशास्त्र में इसी नाड़ी को कुंडलिनी कहा जाता हैं। यह नाड़ी सर्पाकृति है। ऐसा हठयोग शास्त्र में कुंडली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता। साशक्तिश्चलितायेन समुक्तोनात्र संशयः॥' कहा है। बहुत प्राचीन काल से द्रविड़ आदि लोगों ने ऐसा काफी अनुसंधान किया है कि जब मनुष्य यत्न करेगा तो परमेश्वरी ज्ञान प्राप्त कर लेगा। यह ज्ञान मानवी शरीर से ज्ञात होता है और मानवी शरीर में जिसे मेरुदण्ड धारी कहते है यह मेरुदण्ड ईश्वरी ज्ञान का कोष होता है। यह

कुंडलिनी ईश्वरी ज्ञान को प्राप्त कर देने वाली नाड़ी मानवी शरीर में किस स्थान में निवास करती है यह निश्चित समझा नहीं जाता। इन में बहुत मतभेद हैं। इसलिए इन सब मतभेदों को हम प्रकाशित करते हैं। शिव स्वरोदय में निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है, 'नाभिस्थानग कन्दोर्ध्व अंकुरा देव निर्गतः। द्विसप्तति सहस्त्रणि देहमध्ये व्यवस्थिताः। नाड़ीस्था कुंडली शक्ति-र्भुजंगाकार शायिनी। ततो दशोर्ध्वगा नाड्यौ दशैवाधः प्रतिष्ठिताः'॥ नाभिस्थान में जो कंद है इस कंद से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलकर सारे शरीर में फैली हुई हैं। इसी नाड़ी में से एक नाड़ी कुंडलिनी नाम से निकली है और वह नाड़ी निद्रावस्था में है। योग तत्वामृत में लिखा है कि 'कन्दस्य मध्य में गार्गि सुषुम्ना संप्रतिष्ठिता। पृष्ठ मध्ये स्थिते नासासह मूर्धान मागता। शिरासमावेश मुखेनमध्ये स्वपुच्छमास्थेन निगृह्य सम्यक्। नाभौ दसातिष्ठति कुंडलिसा धिया समाधाय निबोधयेत्ताम'॥ इस नाभिस्थान में जो कन्द है उस में से सुषुम्ना नाड़ी निकली है। इस कन्द में कुंडलिनी है।

बंबई के सुपरिचित डॉक्टर स्व. वसंत गंगाराम जी रेळे महोदय ने Mysterious Kundalini नामक ग्रंथ लिखा है। उस में Kundalini and its Location शीर्षक एक परिच्छेद है। उस में Right vegus Nerve यही कुंडलिनी होती है ऐसा वर्णन हैं। लेकिन डॉक्टर महोदय योगशास्त्र को बिलकुल नहीं जानते थे। अतः उन से बड़ी भूल हो गयी है।

मैं ऊपर दिये हुए मतों से सहमत नहीं हूँ। कारण यह है कि जब कुण्डलिनी मूलाधार के ऊपर और नाभिस्थान पर मानी जाय तो तीन चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूर और दो ग्रंथियों का भेदन नहीं हो सकता। इसलिए कुण्डलिनी इस जगह पर नहीं हो सकती। मेरा मत यह है कि यह चीज भिन्न स्थान पर होनी चाहिए।

दूसरा मत यह है कि, नीचे दिये हुए वर्णन के अनुसार योगी और कुछ अन्य लोग कुंडलिनी मूलाधार चक्र में है, ऐसा लिखते हैं।

महाराष्ट्रीय महान विभूति और भक्तयोगी संत ज्ञानेश्वर महाराज ने अपनी 'ज्ञानेश्वरी' नामक भगवद्गीता पर जो टीका लिखी है उस में '१२ वें परिच्छेद में' कुंडलिनियेचा टेंभा। आधारी केला उभा॥ ५०॥

तैसी वेढियाते सोडिती । कवतिके आंग मोडिती । कंदावरी शक्ती । उठिली दिसे ॥२७॥ ज्ञानेश्वर महाराज कंद याने मूलाधार चक्र ऐसा बताते हैं । हठयोग प्रदीपिका मे लिखा है 'कन्धोर्ध्व कुंडली शक्ति : शुभ मोक्ष प्रदायिनी । बन्धनायच मूढांना यस्तां वेत्तिस वेदवित् ॥ ब्रह्माद्वार मुखंनित्य मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥ प्रसुप्त भुजगाकारा पद्मतन्तु निभा शुभा । प्रबुद्धा वन्हियोगेन व्रजत्यूर्ध्व सुषुम्णया ।' मूलाधार में कुंडलिनी है और वह नाड़ी कमलतंतु के बराबर है । गोरक्ष पद्धति में ऊपर का मत दिया है ।

'मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत कोटि समप्रभाम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशां चंद्र कोटि द्रवां प्रिये ॥
बिसतन्तुस्वरुपां तां बिन्दु त्रिवलयां प्रिये ।
(ज्ञानार्णव तंत्र)
कुंडले अस्याः स्तः इति कुंडलिनी ।
मूलाधारस्थ वन्ह्यात्म तेजो मध्ये व्यवस्थिता ॥
जीव शक्तिः कुंडलाख्या प्राणाकाराथ तैजसी ।
महा कुंडलिनी प्रोक्ता परब्रह्म स्वरूपिणी ॥
शब्द ब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृति ।
शक्तिः कुंडलिनी नाम बिसतन्तु निभा शुभः ॥
(योग कुण्डल्युपनिषद)
यदोल्लसतिश्रृंगार पीठात् कटिल रूपिणी ।
शिवाकं मण्डलं मित्वा द्रावयन्तीन्दु मण्डलम् ॥
(योग शिखोपनिषद)

श्रृंगार पीठ-आधारचक्र

घेरण्ड संहिता में 'मूलाधारे आत्मशक्तिः कुंडली परदेवता । शायिता भुजगाकारा सार्द्ध त्रिवलयान्विता । मूलाधारे कुंडलिनी भुजंगाकार रूपिणी । जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिका कृतिः ॥' तंत्र सार में लिखा है 'ध्यायेत् कुंडलिनी सूक्ष्मा मूलाधार निवासिनीम् । तामिष्ट देवता रूपां सार्द्ध त्रिवलयान्वितम् । कोटी सौदामिनी भासां स्यंयभूलिंग वेष्टिनीम् । तामुत्थाय महादेवी प्राणमन्त्रेण साधकः' ॥ देवीतन्त्र में यही मत है 'या मात्रा त्रपुषीलता

तनुलसत तंतुस्थिति स्पर्धिनी । वाग् बीजे प्रथमे स्थिता (मूलाधार में स्थित) तव सदांतामन्म हे ते वयम् । शक्तिः कुण्डलिनी ति विश्वजनन व्यापार बध्द्योद्यमो । ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भेऽर्भकंत्वं नरां ॥ देवी तंत्र ॥

'कुंडलिनी शक्तेंरवस्थात्रयविद्यते । यद्यास्मिन् चक्रे
कुमारी कुमारावस्थामापन्ना । प्रथमंसुप्ती स्थिता
मन्द्रयते मन्द्रंस्वरं करोति । पूर ॐ हिरणमयी
ब्रह्मा विवेशे पराजिताः ॥' - यजुर्वेद

प्रथम आधार चक्र

'सन्ध्या के बाद भगवान् श्री रामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। योग के सम्बन्ध में और षटचक्रों के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। ये सब बाते शिव संहिता में है।' मूलाधार पद्म में कुण्डलिनी शक्ति है। वह पद्म चतुर्दल है जो आद्या शक्ति है। वही कुण्डलिनी के रूप में सब के देह में विराजमान है जैसे सोता हुआ साँप कुण्डला कर पड़ा रहता है। (मणिसे) भक्तियोग से कुल-कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती है। बिना इस के जागृत हुए ईश्वर के दर्शन नहीं होते।

जागो माँ कुल - कुण्डलिनी।
तुँ नित्यानन्द - स्वरूपिणि।
प्रसुप्त - भुजंगाकारा आधार - पद्मवासिनी।
श्री रामकृष्ण वचनामृत पृ. ६०८

इस में कुंडलिनी मूलाधार चक्र में है।
दडि मी कुसुम प्रव्या विषाख्या चापरामता।
मेरू मध्यस्थिता यातु मूलादा ब्रह्मारन्ध्रगा ॥१००॥
मूलाधारे त्रिपुराख्ये इच्छा ज्ञान क्रियात्मके।
मध्ये स्वयंभू लिंगतु कोटिसूर्य समप्रभ ॥१०३॥
- षष्ठ पटल गन्धर्वतंत्र

मूलाधार तुयाशक्ति भुर्जगाकार रूपिणी।
जीवात्मा परमेशानि तन्मध्ये वर्तते सदा ॥
-तृतिय पटल पृ. ९ मातृकाभेदतंत्रे

एक मत और पाया जाता है। उस में लिखा है कि 'मूलाधारा व्द्ययं गुलादूर्ध्व प्रसुप्तभुजगाकारां स्वयंभुलिंगवोष्टितां बिसतन्तु निभां सोमसूर्याग्नि रूपिणी तडित्वल्लीनिभां कुंडलिनी ध्यात्वा सुषुम्ना मार्गेण तां ब्रह्मारन्ध्रेनयेत् ॥ लक्ष्मीस्तुति ॥' कुंडलिनी मूलाधार चक्र के दो अंगुल ऊपर है। यहाँ ऊपर दिये हुए मतों के अनुसार कुंडलिनी नाभिस्थान में ओर मूलाधार के अपर मानी जाय तो अनवस्था प्रसंग को प्राप्त होना है। क्योंकि सब योग शास्त्र के ग्रंथों में और सब तन्त्र ग्रंथो में एक ही मत प्रदर्शित किया गया है, वह यह है कि कुंडलिनी षड्चक्रों का और तीनों ग्रंथियों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ती है। आद्य आचार्य शंकराचार्य जी अपने 'योगतारावली और सौंदर्य लहरी में लिखते हैं 'अपराजिता कुंडलिनी शक्तिः षट्चक्राणि भित्वा भूयोगभूय प्रविशति' ॥ योगता रावली और 'महीम् मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं। जलं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुत् आकाशमुपरी ॥ मनोऽपिभ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपंथ। सहस्त्रारे पद्मे सहरहसि प्रत्याविहरसे।' चित्रिणी नाड़ी कुंडलिनी होती है। इसका प्रमाण सुनिये।

'उद्घाटयेत्कापाटन्तु यथाकुंचिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षाद्वार बिभेदयेत ॥
मध्ये सुषुम्णा तन्मध्ये वज्राख्या लिंग मूलतः।
तन्मध्ये चित्रिणी सूक्ष्मा बिसतन्तु सहोदरा।
मूलात्सहस्त्रार स्तत्तदन्तर ब्रह्मनाड़िका ॥
येन मार्गेणगंतव्य ब्रह्मस्थान निरामयम्।
मुखेनाच्छातद्द्वारं प्रसुप्तापरमेश्वरी ॥

महायोग विज्ञान, पृष्ठ ४०-४१ द्वितीय प्रकाशन,
लेखक - श्री योगानन्द ब्रह्मचारी,
स्वर्ग आश्रम, ऋषिकेश, देहरादून

पराशक्ति : कुंडलिनी बिसतन्तु तनीयसी।
ललिता सहस्त्रनाम।

षड्चक्र निरूपण नामक ग्रंथ में इस कुंडलिनी का निश्चित स्थान दिया हुआ है, उसे देखिये।

'तन्मध्ये चित्रिणीसा प्रणव बिलसिता योगिता योगगम्या ।
लूतातंतूपपेया सकल सरसिजान् मेरूमध्यान्तर स्थान ॥
भित्वा दैदीप्यते तद ग्रंथन रचनया शुद्ध बोध स्वरूपा ॥
तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुख कुहरात् आदि देवान्त संस्था ॥१॥
विद्युन्माला विलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरुपासुतूक्ष्मा ।
शुद्ध ज्ञान प्रबोधा सकल सुखमयी शुद्ध बोध स्वभावा ।
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधार गम्य प्रदेशं ।
ग्रंथिस्थान तदेतद्वदन मिति सुषुम्णाख्य नाड्या लपान्ति ॥२॥
तंस्योर्द्धे बिसतंतु सोदर लसत सूक्ष्मां जगन्मोहिनी ।
ब्रह्माद्वार मुखं मुखेन मधुरं सन्द्यादयन्ति स्वयम् ॥
शंखावर्तनिभानवीनचपला मालाविलासास्पदा ।
सुप्त सर्प समाशिवोपरिसलत् सार्द्ध त्रिवृत्ताकृति ॥३॥

प्रथम श्लोक में कहा गया है कि चित्रिणी नाड़ि का स्थान 'मेरु मध्यान्तर स्थान-' मेरु दंड के भीतर मध्य स्थान में है ।Cauda Equina से निकल कर Coccyx में मिलती है । दोंनो बाजु की तरफ सुषम्ना और वज्रा नाड़ी है और बीच में चित्रिणी नाड़ी है । इस नाड़ी को मैं कुंडलिनी कहता हूँ। इस चित्रिणी नाड़ी को अँग्रेजी अनॉटामिस्ट Anatomic Filum Terminal कहते है । Below the end of the spinal cord, the Pia Mater though at first, retaining its tubular form, after wards becomes suddenly reduced in size, and finally prologed as a sheath to the delicate thread-like continuation of the spinal cord, the filum terminale or central ligamaent Its glistening and silvery hue distinguishes this ligament amidst the surrounding bundles of nerve roots.

और भी अंग्रेजी ॲनॉटामिस्ट लिखते है :-

The Medulla spinalis or spinal cord is the elongated nearly cylindrical part of the central nervous-system which occupies the upper twothirds of

the vertebral canal. Its average length in the male is 45 C.M. (about 18 inches), its weigth is about 30 gms. It extends from the level of the upper border of the atlas vertebra to that of the lower border of the first or upper border of the second lumber vertebra. Above it is continuous with the brain, below, it ends in the conus medullaris from the apex of which a delicate nonnervous filalment, the Filum Terminale, descends as far as the first segment of the coccyx. The Filum Terminale is a delicate filament about 20 c.m. (about 8 inches) in lenght prolonged downwards from the apex of the conus medullaris. Its upper part of Filum Terminale Internum about 15 c.m. (about 6 inches) long is continued within the tubular sheath of dura mater and reaches, as far as the lower border of the second sacral vertebra. It is surrounded by the nerves forming the Gauda Equina, but can be readily distinguished from them by its bluish-white colour. Its lower part, or Filum Terminale externum, it is closely invested by, and adherent to the dura, it descends from the apex of the tubular sheath of the dura mater and is attached to the back of the first segment of the coccyx. The Filum Terminale consists mainly of fibrous tissue continuous about with that of the pia mater but adhering to its outer surface are a few strands of nerves fibres which probably represent rudimentary second and third caccygeal nerves, further. The Central coccygeal canal of the medulla spinalis is continued downwards into in for 5 c.m.

अमेरिकन ॲनॉटमिस्ट अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि-

ABOUT FILUM TERMINALE

In the midst of this bundle you will be able to pick out a slender, silvery looking thread, the Filum Terminale or Central Ligament. Continous with the apex of the conus medullaris, this terminal filament runs down the middle line amongst the nerve-roots the lower end of the dural cavity. There it pierces the dural sheath and receiving an investment from it, descends to be attached to the bach of the coccyx.

'The Filum Terminale begins at the foramen magnum where it is continuous with periosteum, and dura mater of the brain and ends opposite the second or third piece of the sacrum in the thread like filum terminale externum which anchors the end of the dural tube to the back of the coccyx' Page 245-47, Chapter III, Anatomy of the brain, cord, and Autonomic system, The Practitioners Library of Medicine Surgery, Vol. I, America.

यह नाड़ी ८ इंच लंबी, रेशम के तंतु समान तेजस्वी, प्रकाशमान, सूक्ष्म पतली और बहुत ही नाजूक है। इतनी नाजुक है कि प्राचीन ग्रंथकारों ने 'लुतातन्तूपमेया-याने मकड़ी दूसरे सूक्ष्म जीवों को पकड़ने के लिए जो घर के कोनें में जो जाल बनाती है। (She is fine like the spinder's thread)। उस का तंतु इतना सूक्ष्म होता है कि आँखों से देख सकते हैं किन्तु वह इतना बारीक होता है कि हाथ में पकड़ ने से विशेष स्पर्श नहीं होता। यह लसततन्तु बिसतन्तु, त्रपुषीलतातनुलसत तन्तु इस नाम से बतलाया गया है। यह चित्रिणी नाड़ी (Filum terminal) कुंडलिनी होती है। इस के और भी प्रमाण सुनिये। सभी योगशास्त्रकारों ने यह कहा है कि कुण्डलिनी 'स्वयंभू-लिंग को वेष्टित है। इसलिए प्रथम स्वयंभू लिंग शरीर में किस स्थान पर है यह निश्चित करना जरूरी है।

अँग्रेजी शरीरशास्त्रज्ञ Gray अपने अॅनॉटामी मे कहते हैं

राहू

चित्र नंबर ११
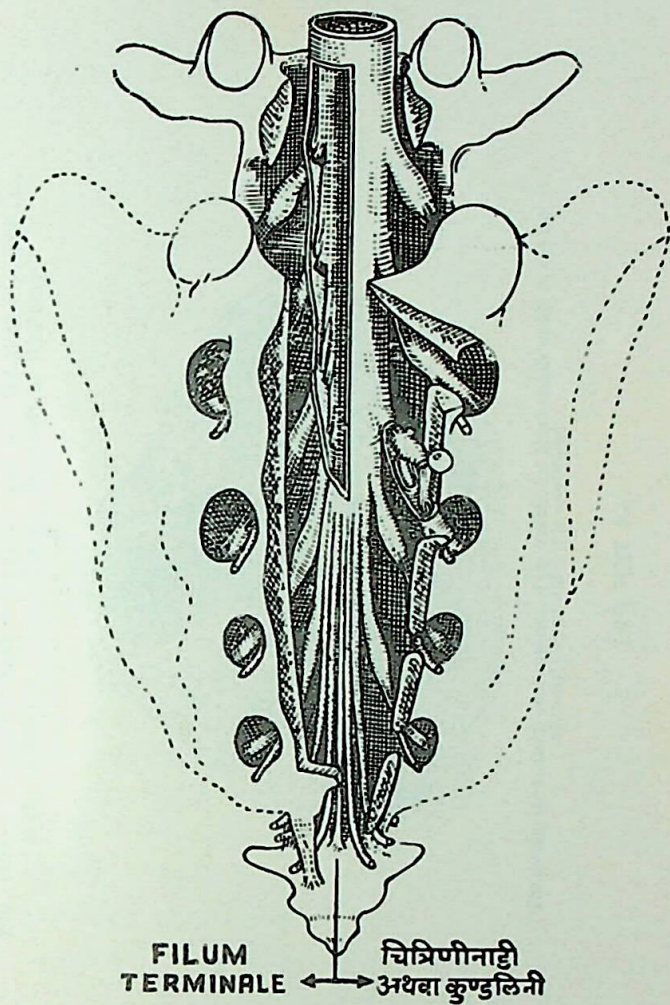
स्वयंभुलिंग—मंगल

FIG. 1163.—A section through an irregular nodule of the glomus coccygeum. × 85. (Sertoli.) (From Quain's Elements of Anatomy.)
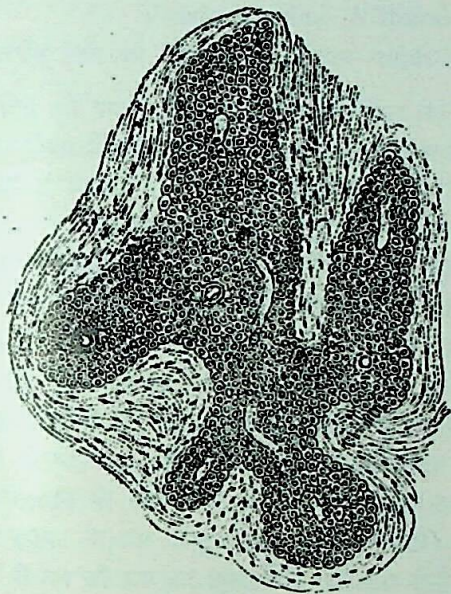
The section shows the fibrous covering of the nodule, the blood-vessels within it, and the epithelial cells of which it is constituted.

चित्र नंबर १२

substance of the organ to divide masses of epithelial cells. Numerous arterial branches remify through the structure.

Page 510
The Endocrine Glands
Anatomy and Physiology
by
Jessie Feiring Williams, M. D

इस स्वयंभू लिंग का स्थान मैं ने निश्चित बताया है।

ऊपर दिये हुये प्रमाण से पाठकों को ज्ञात होगा कि कुण्डलिनी क्या चीज है। इस विषय में और एक ठोस प्रमाण दिया जाता है। 'योनिस्थान कमंघ्रि मूलघटितं कृत्वा दृढं विन्येसे-न्मेंढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनूंसुस्थिरम्। स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचल दृशा पश्येत्भ्रुवोरन्तरं। ह्येतन्मोक्ष कपाट भेदजनक सिद्धासनं प्रोच्यते ॥११॥ गोरक्ष पद्धति पृष्ठ २०।' अर्थ सर्वोकृष्ट दो आसनों में से प्रथम सिद्धासन की विधि में कहते है कि गुदा ओर लिंग के बीच में योनि (कुण्डलिनी का) स्थान है, इसको वाम पाद की एड़ी से दृढ पीड़न (दबाव) करे। दाहिने पैर की एड़ी लिंग के ऊपर लगा कर दबावें। दोनों पैरों की एड़ियाँ नीचे ऊपर बराबर हो जाती हैं तथा दोनों पैरों की अंगुष्ट जंघा और गुल्फों के बीच नीचे छिप जाते हैं। इनके दबाव से योनिस्थान के तले ऊपर के दो इंद्रिय गुदा उपस्थ रुक जाते हैं। तदनन्तर हृदय के चार अंगुल ऊपर चिबुक (ठोड़ी) स्थिर करें और समस्त इंद्रियों से मन को हटा कर एकाग्रचित्त करें तथा दोनों नेत्रों से अचल दृष्टि कर भ्रू मध्य में देखता रहे।

इस मोक्ष रूपी द्वार को खोलने पर बताया हुआ मोक्ष मार्ग दिखता है। यह द्वार कुण्डलिनी से रुका हुआ है। सुषुम्णा द्वार उसे खोल कर मोक्ष मार्ग के (सुषुम्णा के) द्वारा मोक्षस्थान सहस्त्रदल कमल कर्णिकांतर्गत परमात्मा में पहुँचाने के यत्न करता है। यह सिद्धासन है। गोरक्ष पद्धति श्लोक २१ वा. पृष्ठ १०। सिद्धासन से एक बात सिद्ध होती है कि कुण्डलिनी का

निश्चित स्थान इस आसन में वाम पाद की एड़ी से योनि स्थान पीड़ित करना है, तात्पर्य यह है कि कुण्डलिनी को जगाने की रीति इस प्रमाण से ज्ञात होगी और दूसरा प्रमाण भी देखिये-षड्चक्र निरूपण श्लोक में कहा गया है- तन्मध्ये ब्रह्म नाडी हरमुख कुहरात आदि देवान्त संस्थाः ॥ ब्रह्मद्वार मुखं मुखेन मधुर संछादयन्ति स्वयंम् । इस श्लोक में 'हरमुख कुहर' ऐसा शब्द है । इस का अर्थ क्या होता है ? कुण्डलिनी को ऊपर सहस्त्रार चक्र में चढ़ने के लिये जो रास्ता है उस रास्ते में दरवाजा होता है, इस को अँग्रेजी अनॉटामिस्ट Sacral canal कहते है । यह मेरुदंड के नीचे और Tip of the soccyx के ऊपर है । The Spinal cord ends Blindly in the Filum Terminale, and is apparently closed there. The Sushumna is said to be closed at its base called the gate of Brahman (Brahmadwara) until, by Yoga Kundalini, makes its way through it. चित्र देखिये ।

इस प्रमाण से भी ज्ञात होता है कि कुण्डलिनी का मूलाधार के नीचे निवास है । ऊपर दिए हुए अनेकों प्रमाण तथा मेरी ओर से भी दिये गये प्रमाणों सें पाठक इस विषय को भली भाँति समझ सकेंगे ।

कुण्डलिनी क्या चीज है यह निश्चित करना शेष रहा है । इस के विषय में भी बहुत से मतभेद पाये जाते हैं । मत १- यह कुण्डलिनी केवल तेज मात्र है । इस विषय का एक प्रमाण सुनिये ।

तडित्कोटि ज्योतिर्द्युतिदलित षड् ग्रंथिगहनं । प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टि वपुषां । किमप्यष्ट त्रिशंत्किरण सकलीभूत मनिशं । भजं धामं श्यामंकुच भरनतं बर्बरकचम ॥८॥ चतुष्पत्रान्तः षड्दलपुट भगान्त स्त्रिवलय । स्फुर द्विद्युद्वन्हि द्युमणि नियताभः द्युतियुते । षडश्रं भित्वाऽदौदशदल मथद्वादशदलं । कलाश्रंचव्यअंगतवतिनमस्ते गिरिसुते ॥९॥ देवी पंचस्तवी । इस श्लोक का आधार लेकर कतिपय थिऑसॉफिस्ट लोगों ने झूठे ग्रंथ लिखे हैं । उन लोगों को योगशास्त्र बिलकुल नहीं समझा है और न समझ सकेगा । देखिये C.W. Leadbeater. G.C. Arunadale ये कैसे भूल में पड़े हैं । Aurther Avelon afterwards Sir John

भ्रूमध्यदृष्टी—शनि

ब्रम्हद्वार—शनि

चित्र नंबर १८
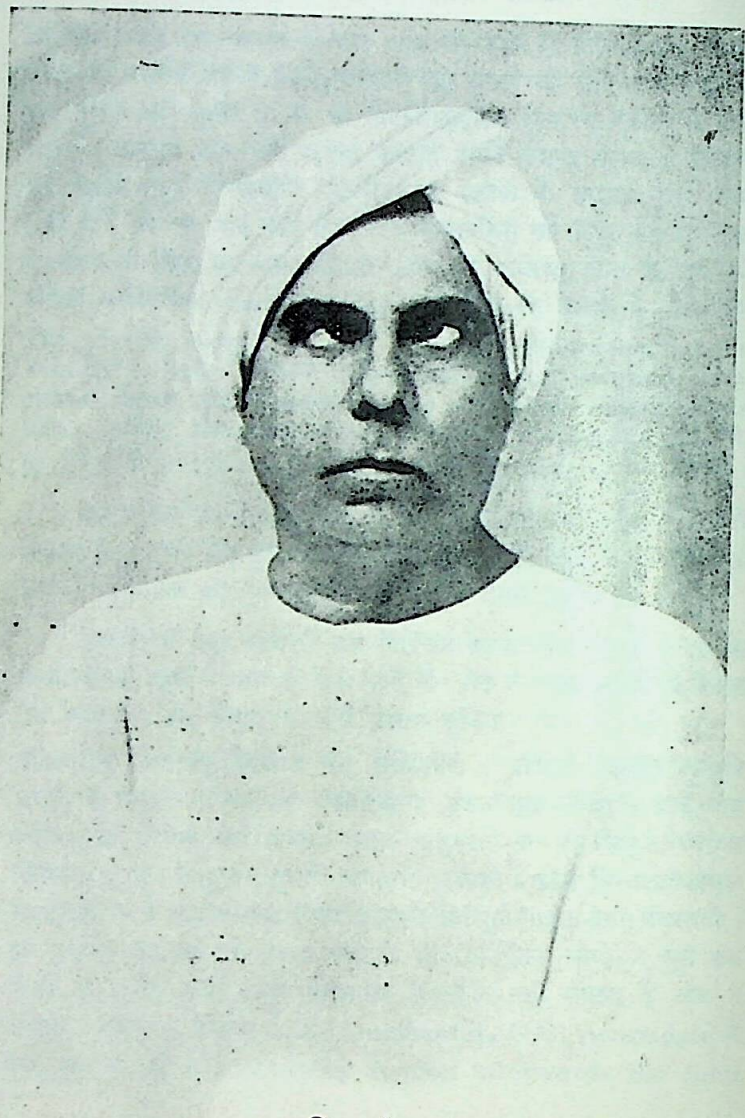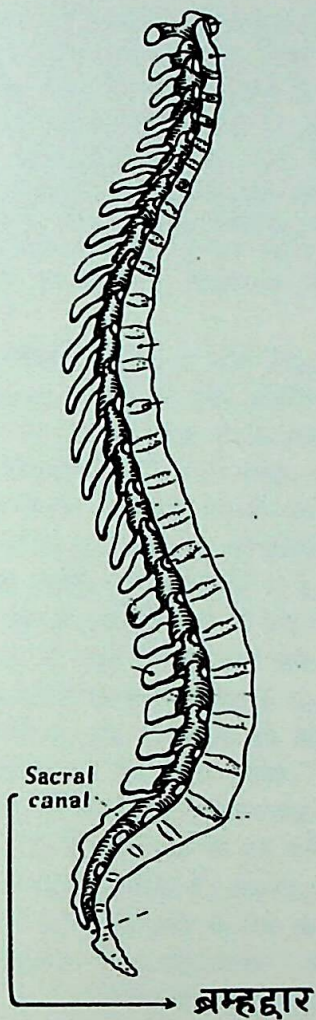
afterwards Sir John Woodraff Calcutta High Court Justice इन्हों ने Serpent Power नामक ग्रंथ लिखा है। उन को भी यही शंका थी कि मूलाधार चक्र के नीचे कुंडलिनी है। इस विषय में Woodraff ने एक डॉक्टर महाशय से पूछा था "I am told that recent microscopic investigations by Dr. Cunningham have disclosed the existence of highly sensitive gray matter in the Filum Terminale, which was hitherto thought to be mere fibrous cord." Page 107, The-Centres of Lotuses, Serpent Power by Aurther Avelon. उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

स्वामी शिवानन्द हृषीकेश (हरिद्वार) ने अपने Kundalini Yoga नामक ग्रंथ Filum Terminal में यह नाड़ी कुंडलिनी होती है, यह लिखा है। फिर स्वामी जी ने ऐसा भी लिखा है कि मानवी शरीर में जो षडचक्र हैं यह सब चक्र लिंग शरीर में हैं न कि स्थूल शरीर में। मैं इस मत से सहमत नहीं। मेरे विचार से स्वामी जी की यहाँ बड़ी भूल हुई है। इस सारे विवेचन से आपको ज्ञात होगा कि कुण्डलिनी क्या चीज है। कुंडलिनी इतनी विचित्र और अगम्य क्यों ? इस बारें में मैं इतना ही कहता हूँ कि जब यह कुंडलिनी रीढ़ की हड्डी के अंदर है तब तक यह चित्रिणी नाड़ी कहलाती है और रीढ़ की हड्डी के बाहर आ कर स्वयंभूलिंग को वेष्टित होती है तब इसे कुंडलिनी कहते हैं। जब यह नाड़ी सिद्धासन से और प्राणवायु से नीचे दबाने से और अपानवायु को ऊर्ध्व गति देने से जगाई जाती है तभी इस नाड़ी में से "सूर्य कोटिःसम प्रभाः" ऐसा असामान्य तेज बाहर निकलता है और यह तेज प्रथम मूलाधार चक्र में प्रवेश करता है। यह मूलाधार चक्र ही कंद है। इस कंद पर यह शक्ति प्रथम आती है इस कंद के बारे में भी मतभेद पाया जाता है। इस पर भी विचार करना आवश्यक है। 'शिवस्वरोदय' इस ग्रंथ में नाभि के नीचे जो कंद माना गया है इस मत को आयुर्वेदीय ग्रंथकार "सुश्रुत और वाग्भट" अपने सार्थ सुश्रुत सहिंता और सार्थ वाग्भट ग्रंथ में "नाभिस्थान चार अंगुल विस्तार रहने वाला कंद है" ऐसा कहते हैं। फिर यह योगतत्वामृत में पाया जाता है।

" ऊर्ध्वं मेंढ्रादधौनाभेः कन्दयोनि खगाण्डवत् । तत्र नाडयः समुत्पन्ना सहस्त्रांणां द्विसप्तति ॥ कंदस्थानं मनुष्याणा देह मध्याहन्नवांगुलम् । चतुरंगूल विस्तार मायामंच तथा विधम् । अंडाकृति वदाकारं भूषितंच त्वगादिभिः ॥" पेडुके ऊपर और नाभि के नीचे बस्ती में (नाभिस्थान के नीचे और लिंग के ऊपर के शरीर का भाग इस को बस्ती कहते हैं) मुर्गी के अण्डे समान कंद होता है । इस प्रमाण के विरुद्ध षड्चक्र निरुपण में लिखा है गुदात्तु द्वयंगुलादूर्ध्वः मेंढ्रातुद्वयंगुलादधैः इस कंद का स्थान गुदा के ऊपर २ अंगुल और पेडु के नीचे २ अंगुल है । इस से यह समझ में आता है यह कंद योनिस्थान में है । मेरे मत से यह बराबर है, कारण "अँग्रेजी अॅनाटामिस्ट लिखते हैं । The fibres of the sympathetic NETWORKS PLEXUSES FROM WHICH PROCEEDS THE DISTRIBUTION TO VISCERA (देखिये Sympathetic plexus का चित्र,) उपर्युक्त विवेचन से आपको ज्ञात होगा कि कुण्डलिनी मूलाधार के नीचे है । यह नाड़ी होती है और इस नाड़ी से भयंकर तेज निकलता है । ये दोनों मिल के कुण्डलिनी होती है । कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग Canalis centralis मेरुदंड के मध्य में जो विवर है, उस मार्ग को सुषुम्ना मार्ग कहते हैं ।

THE CENTRAL CANAL OF THE MEDULLA SPINALIS

The Central canal traverses the entire length of the medulla spinalis. The gray substance in front of the canalis named the anterior gray commissure; that behind it; the posterior gray commissure. The anteriorty gray commissure is thin, and incontact anteriorty with the anterior white commissure; it contains a pair of longitudinal veins, one on either side of the middle line. The posterior gray commissure reaches from the central canal to the posterior median septum; is thinnest in the thoracic region, and thikest in the conus medullaris. The central canal is continued upwards

through the lower parts of the medulla oblongata and opens into the fourth ventrical of the brain; below it reaches for a short distance (5-6 c.m.) into the filum terminale. In the lower part of the conus medullaris it exhibits a fusiform diletation, the terminal ventricle: this has a verticle measurement of from 8 to 10 m.m. is triangular on cross section with its base directed forwards and tends to undergo obliteration after the age of forty years.

Throughout the cervical and thoracic regions the central canal is situated in the anterior third of the medulla spinalis in the lumbar enlargement it is near the middle; and in the conus medullaris it approaches the posterior surface. It is filled with cerebrospinal fluid and lived by ciliatul, columnar epithelium, which is encircled by a band of gelatinous substance, the substantia gelatinosa centralis. This gelatinous substance consists mainly of neuroglia but contains a few nervecells and nerve fibres; it is traversed by processes from the deep ends of the cells which line the cetnral canal (Gray's Anatomy paga 750)

This filament is the atrophied remnent of the lower part of the embryonic spinal cord. It extends from the end of the spinal cord viz, 1st or 2nd lumber vertebra, to the back of the coccyx. It the upper part of its extent, the filum terminale consists of a cental canal...

Anatomy of the Brain and spinal Cord
by
J.Ryland, Whiteker.
B.A., M.B.
Pages 6, 9, 15.

कुण्डलिनी मेरुदंड में से ब्रम्हरन्ध्र में चढ़ती है और षड्चक्रों का भेदन करती है । इस जगह पर एक शंका उपस्थित होती है कि जब कुण्डलिनी मेरुदंड में से ऊपर चढ़ती है तो बाहर के चक्रों का भेदन कैसे होता है ? इस का स्पष्टीकरण ऐसा है कि षड्चक्रों में से कुछ नाड़ियाँ निकल कर मेरुदंड को लिपटी हुई हैं और मेरुदंड में से कुछ नाड़ियाँ निकल कर षड्चक्रों में जा कर मिली हैं । अँग्रेजी अनाटमी में इन नाड़ियों का नाम Spinal Ganglia लिखा है । Spinal Ganglia को कुंडलिनी धक्का मारती है, इस क्रिया से सब चक्र खुल कर शुद्ध होते हैं । इस प्रकार परमेश्वरी ज्ञान देने वाली नाड़ीका विवेचन इस अष्टम स्थान में करना हैं । इस भाव में मूलाधार चक्र को देखना पड़ता है ।

मूलाधार चक्र

Pelvic Plexus (बुध)

इस चक्र को 'मूलकंद' कहते है, स्थान= योनि । रक्तवर्ण, भगाकृति; तीन आवर्त, चतुर्दल,दलों के अँग्रेजी नाम -Pelvic plexus, 2nd The middle Haemorrhoidal Plexus, 3-The Vesical Plexus, 4th The Prostatic Plexus ४ मातृका वँ शँ षँ सँ, सरस्वति द्विरण्डनामक सिद्धलिंग देवता गणेश, शक्ति डाकिनी, शक्तिरूप एकवक्त्रा, चार हाथों वाली, सुवर्णवर्ण, यंत्र पृथ्वी तत्व का और चतुष्कोण है, यंत्र का वर्ण-पीत, बीज लँ. बीज का वाहन-ऐरावत हस्ती, जपसंख्या ६०० (स्थान-गुद और लिंग के बीच में योनिस्थान में), भूलोक, गुण-गन्ध (देव-ब्रह्मा वैश्वनर) ज्ञानेंद्रिय- नासिका, कर्मेंद्रिय स्थान-योनि The yoni that is in the centre of this chakra is called kama and it is beloved and worshipped by sidhas. ब्रह्मग्रंथी, परावाणी, लँ कारबीज पृथ्वी, कार्य-पृथ्वी संकलीकरण गंधवाह, देवता ब्रह्मा, अष्टकोणशूल, दो नाड़ियाँ,- इल्बला और कालधामिनी, बस्तीकर्म, कुण्डलिनी के बीच में महाप्रकृति, अपानवायु-संतरे का वर्ण, गुदद्वार Ejection of urinal Falces. सहवायु कूर्म-पलक खोलना और बन्द करना । इस चक्र पर निजानंद को देखना है । सप्तज्ञान की भूमिका शुभेच्छा नामक होती है । शुभेच्छा किसे कहते

मूलाधार चक्र—बुध	कुंडलिनीका मार्ग या विवर नेपच्यून

मूलाधारचक्र

Ganglia

Card connec.
Pelvic & Abd.
Sympat.

Spinal
Nerv

Pelvic
Plexus

आधार
चक्र
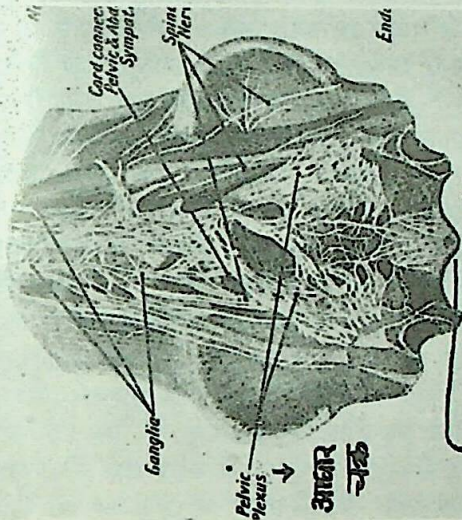
Sympathetic Plexus
The Fibres of the Sympathetic form Networks, Plexuses, from which proceeds the Distribution to Viscera, etc.

स्वयं भूलिंग और कुंडलिनीका स्थान

चित्र नंबर १६

Gall's column

Burdach's column

Direct pyr. tract or Ant. pyram. (Türck)

Crossed bundle of anterior column
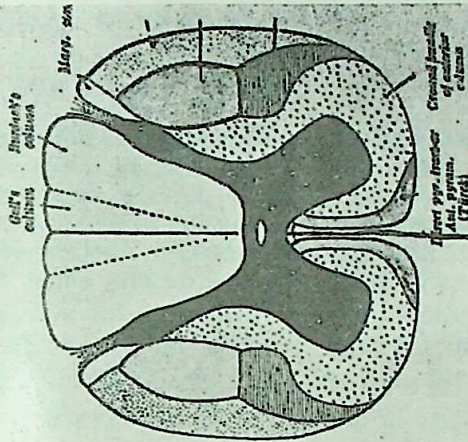
Plate 14.—TRACTS OF THE SPINAL CORD.

Canalis centralis

चित्र नंबर ९५

है ''नित्यानित्य वस्तु विवेकादिपुरः सराफलपर्यवसायिनी मोक्षेच्छा'' इसी को शुभेच्छा कहते हैं। इस चक्र पर यह भूमिका देखनी हैं। इस चक्र पर मेरे मत से बुध ग्रह का अमल होता है। और जर्मन महात्मा गिखतेल के मत से इस पर चंद्रमा का अमल होता है ?

The Adhara, the Sacro-coccygeal Plexus, with four branches, nine Angulis (About six inches and a half below the solar plexus, (Kanda, Brahmagranthi); the source of a massive pleasurable aesthetia, voluminous organic sensations of repose, an inch and half above it, and the same distance below. The membrum viril (mehana) is a minor centre called Agnishikha; इस स्थान में समाधि की और मृत्यु की अवस्था भी देखनी है। समाधि और मृत्यु इन दोनों में बहुत फर्क है। मृत्यु में ज्ञान और चेतना नहीं परंतु समाधि में ये दोनों मौजूद हैं। फिर शरीर की अवस्था दोनों में समान रहती है। इस भाव में योगियों की मृत्यु किस प्रकार से होगी ? योगी योग बल से देह त्याग करेगा या रोग बल से ? अपनी इच्छा से त्याग करेगा या मृत्यु की इच्छा से? योगी के देह त्याग ते समय प्राण ब्रह्मरन्ध्र से जायेगा या अन्य मार्ग से ? योगी लोगों का आयुष्य कितना है ? आदि ये सारी बातें देखनी हैं। जिन योगी लोगों ने अपनी इच्छा से देह छोड़ दिया है उनके नाम- स्वामी रामतीर्थ, आपने जल समाधि ली, योगीश्वर पव्हरी बाबा ने इच्छा से अग्निकाष्ठ भक्षण किया, मेरे गुरुदेव ब्रह्मीभूत ब्रह्मचैतन्य गोंदावलेकर महाराज, श्रीमत् ब्रह्मभूत योगीश्वर विद्यानन्द सरस्वती महाराज बेलापूरकर, (नगर जिला) ब्रह्मीभूत टेंबे स्वामी आदि योगीश्वरों ने अपनी इच्छा से जीते जी समाधि ले कर देह छोड़ दिया। श्रीमंत कै. नारायण महाराज केडगाँवकर इन की मृत्यु रोगबल से हुई। योगी की कुंडली अर्थात् जन्मपत्नी देख कर उनकी आयुमर्यादा बतलाना सामान्य ज्योतिषियों की शक्ति के और ज्योतिष शास्त्र के बाहर है। क्यों कि पूर्णावस्था को पहुंचे हुए योगी पुरुष, योगबल से अपनी आयुमर्यादा बढ़ा सकते हैं। कारण योगी अपने योगबल से अपना प्राण ब्रह्मांड में रख कर मृत्यु को धोखा देते हैं। मतलब यह है की मृत्यु इन के स्वाधीन है।

योगियों को अपने रहने के लिए आश्रम, कुटी या मठ नहीं बांधना चाहिए। जिस प्रकार बिच्छु घर के कोने में रहता है वैसे ही योगी को जंगल में निसर्ग निर्मित गुफा या गिरिकन्दरा में रहना चाहिए। किंतु हठयोग प्रदीपिका में मठ बाँधने के लिए मच्छिन्द्रनाथ ने अनुज्ञा दी है। निम्न श्लोक देखिये, मठ लक्षण-सुराज्ये धार्मिक देशे सुभिक्षो निरुपद्रवे। धनुःप्रमाणपर्यंत शिलाग्निजलवर्जिते। एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्य हठयोगिन :॥ अल्पद्वारमृरन्ध्र गर्त विवरं नात्युच्च नीचायतं॥ सम्यक् गोमय सांद्रलिप्त ममलं निशेष जन्तुत्झितम्। बाह्ये मण्डपकूपवेदि रुचिरं प्रकार संवेष्टितं। प्रोक्तं योग मठस्यलक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः॥ एवं विधे मठेस्थित्वा सर्वचिन्ता विवर्जितः गुरुपदिष्ट मार्गेण योगमेव समभ्यसेत। भगवद् गीता के ६ वें अध्याय में भगवान कहते हैं "शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्सनः नात्युच्छ्रित नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्॥" इस प्रकार से मठ के लक्षण कहे गये हैं। यह सब किसलिए ? मेरी राय में अपना अभ्यास पूरा करने के लिये है। योगी को मठ की जरूरत नहीं है।

इस भाव में और भी कई बातें देखनी हैं। क्रियायोग,हठयोग कुहूनाड़ी, शंखिनी नाड़ी, जलबस्ती, महामुद्रा, सिद्धासन, मूलबंध, अश्विनी मुद्रा, शक्तिचालन मुद्रा, शवासन, भुजंगासन और परकायाप्रवेश विद्या आदि विषयों पर विचार करना है।

गर्भ के आठवें माह पर लग्न स्वामी का प्रभाव रहता है। इस माह में गर्भ को पूर्व जन्म का स्मरण होता है।

इस भाव पर भगवान शंकर जी का अमल है।

बंगाल के एक सच्चे शक्ति उपासक नेताजी

महान क्रान्तिकारी स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद बरकतउल्लाह की मौत हो गई किन्तु उन की आजादी की भावना अमर है और वह सदा अमर रहेगी। सभी क्रान्तियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होता है। कोई भी क्रान्ति एक देश या एक भौगोलिक क्षेत्र में सीमित नहीं रहती, बल्कि वह तमाम देशों को

प्रभावित करती है। इसलिए किसी भी देश के क्रान्तिकारी शहीद को सारी दुनिया के आजादी-पसन्द लोग अपना शहीद मानते हैं। और इसीलिए उस से प्रेम करते हैं, उस की इज्जत करते हैं और श्रद्धा के साथ उसकी याद करते हैं। ये शहीद आजादी के उस राज-मार्ग का निर्माण करते हैं जिस पर देर-सबेर दुनिया की सभी कौमों को चलना है। अगर ये शहीद न होते तो दुनिया एक अँधेरी जगह बन जाती।

यह सच है एक महान् क्रान्तिकारी की मृत्यु हो गई। किन्तु यह भी सच है कि क्रान्ति जीवित है और सदा के लिए जीवित रहेगी।

देखिये

स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद बरकतउल्लाह का जीवन वृतांत

देशदूत - रविवार ता. १३ जनवरी १९४६

नेताजी

जन्म तारीख २३-१-१८९७, दिन उषः काल में ४ बज कर २० मिनट, जन्म स्थल-कटक, ओरिसा। अक्षांश २०-३०, रेखांश ८६-०, सूर्योदय से शनिवार चालू होता है।

लग्न धनु, धनु लग्न का नववाँ अंश उदित होता है। धन स्थान में रवि राहु बुध; तृतीय स्थान में शुक्र, षष्ठस्थान में स्थंभित मंगल नेपच्यून, अष्टम स्थान में केतु, भाग्यस्थान में वक्री गुरु, दशमस्थान में चंद्र, व्यय स्थान में शनि, वक्री होने वाला हर्षल।

लग्न कुंडली
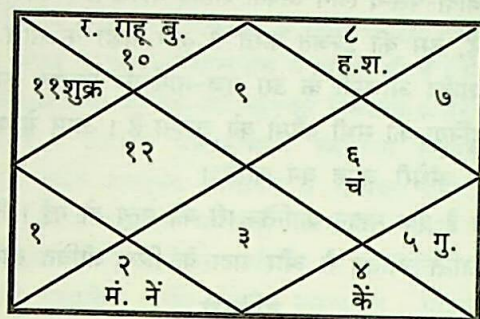
हजारों बरसो सें बंगाल में शक्ति पूजा चल रही है । जब तक यह शक्ति पूजा सच्ची और वास्तविक चलती थी तब तक बंगाल स्वतंत्र था । उस की ओर कोई वक्रदृष्टि से न देख सकता था । यहाँ स्वाभाविक ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि सच्ची काली पूजा क्या है और किस प्रकार की होती है? शक्ति के दो अर्थ हैं । एक अर्थ शक्ति "बल" और दूसरा योगशास्त्रा नुसार अर्थ कुंडलिनी है । बंगाल पर मुसलमानों का आक्रमण होने के पहले-पहल बंगाल वाम मार्गीय था । वाम मार्ग याने कुंडलिनी को जगाने का कार्य है । यह सब वाम मार्गीय तंत्र और यामल ग्रंथ देखने से मालूम होता है । इन ग्रंथो में शक्ति नाम कुंडलिनी है । शक्ति नाम काली है । "उमाकात्यायनी गौरी काली हैमवतिश्वरी" इत्यमरः । काली नाम शिव पत्नी पार्वती का है और योगशास्त्र में काली नाम कुंडलिनी का है । इस से एक बात सिद्ध हो गयी कि बंगाल पहले-पहल ईसा की बारहवीं शताब्दी के पहले योग मार्गीय था । बारहवीं शताब्दी से योग मार्ग भूल कर

एक पत्थर की चार हाथों वाली, गलें में नरमुंड पहनी हुई, हाथ में नग्न हथियार, भयानक उग्र और डर पैदा करने वाली ऐसी एक भयानक स्त्री मूर्ति बना कर इन लोगों ने उस का नाम रख्खा काली। इस पत्थर की काली पूजा शुरू हुई और उस मूर्ति के सामने अजापुत्र याने बकरे को बलि देते और उस का मटन बना के खाते और ऊपर से मद्य पीते, बस यह हुई काली पूजा। हाल में बंगाल में इसी प्रकार की दुर्गा पूजा चल रही है, यह झूठी पूजा है। यह सच्ची काली पूजा नहीं है बल्कि यह पूरा अधःपतन है। ईसा की पंद्रहवी शताब्दी में सच्ची काली पूजा महाप्रभु भगवान गौरांग उर्फ निमाई और निताई इन्हों ने की। अनंतर भगवान चण्डीदास आदि पंद्रहवीं शताब्दी से अब तक कतिपय सच्चे पूजक हो गये। उन में से बंगाल की वीर रमणी राणी भवानी हो गई। इसके बाद भगवान रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद हो गये। सन १९०८ से फिर सच्चे काली उपासक पैदा हो रहे हैं। इन में बाबू अरविंद घोष प्रधान हैं। महान् क्रान्तिकारी तथा महान् महात्मा ये दोनों सच्चे शक्ति उपासक होते हैं। सन १९०८ साल से जिन्हों ने स्वातंत्र्य युद्ध में अपने शरीर का त्याग किया, कोई निर्वासित हो गये, ये सब सच्चे शक्ति उपासक होते हैं। हाल में चरम और परम महान क्रान्तिकारी सुभाषचंद्र बोस ऐसे ही हैं। इन्होने इस सारे संसार भर में अपना नाम कमाया और अपने को नेताजी उप पद लगा लिया। भारतवर्ष को स्वतंत्र करने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया और निर्वासित हो गये। मान लीजिये कि नेताजी क्रांतिकारी शहीद न बनते और महान् साधु महात्मा बनते तो?

यमस्थान या प्रथम स्थान

इन का जन्म ''धनु'' लग्नपर हुआ है। इस लग्न पर ''साधु महात्मा, क्रान्तिकारी, ज्योतिषी, कवि, उपन्यासकार कायदे आझम, हाईकोर्ट जज, तत्वज्ञ, संन्यासी,कॉलेज में पढ़ाने वाले प्रोफेसर, टीचर्स और Researchers ऐसे लोग पैदा होते हैं। नेताजी ये Evolved Type के है, इस Type का स्वभाव स्वातंत्र्यवादी होता है। इन में स्वतंत्रता की लालसा इतनी प्रबल रहती है कि परतन्त्रता से भिक्षांन् देही पसन्द करते है।

Sagittarius is the ninth sign and the nine muses of the Greeks are so many modes of mind-the higher mind which manifest as genius and transmutes consciousness from the abstract mental state to the menifested physical brain or which bridges over the gulf between life in the body and life out of the body. Hence this is the sign of Prophet. Sagittarius denotes an openminded honest systematic and sympathetic and generous disposition. The fate is dualistic and usually divided into two extremes of fortunes and misfortunes. The native is highly impressionable the fond of liberty and independence. He is often reckless and careless about his own body, wealth, wife and children.

When fully developed he is rebellious, anarchist, philosophical, a lover of law and order and more intuitive than imitative.

The third decanate of Sagittarius rising awakens the half of the duel sign Sagittarius and quickens the intuitive and inspirational nature of the sign giving the ability to prophesy and foresee the future.

आप परोपकारी, निःस्वार्थी, अव्याभिचारी, प्रेमी, दयालु, ज्ञानी, दूसरों के लिए कष्ट उठाने वाले, विश्वबंधुत्व का भाव रखने वाले, परमेश्वरी मार्ग पर चलने वाले, लोगों पर प्रेम से अधिकार चलाने वाले, न्यायान्याय पारंगत होते हैं। आप में सब सद्गुणों का समुच्चय पाया जाता है। नेताजी में "अनासक्तता" गुणधर्म अधिक पाया जाता है। महात्मा, साधु सत्पुरुष और क्रान्तिकारी इन दोनों का स्वभाव समान रहता है। इन के (Daily life) में एक आदत रहती है वह नीचे देता हूँ।

Sagittarius rising there is tendency to rapid walking and considerable physical strength evidenced by a Firm hand clasp. The head is held high and the gaze is sincere candid and independent. Sagittarius like to sit comfortable with an arm falling over each arm of the chair.

इन को कहीं भी नींद आती है। सोने के लिए गद्दी की जरुरत नहीं होती। ये लोग Easy Chair पर नींद लेते हैं। केवल इन को Pillows तकिये अधिक लगते हैं। इन की नींद कुत्ते के समान बड़ी ही जागरुक रहती है। लग्नेश गुरु भाग्यस्थान में है। लग्ने शे नवमे पुंसां भाग्यवान जनवल्लभः विष्णुभक्तो पटुर्वाग्मी पुत्रदार धनैर्युतः ॥ मूर्तिपतियदिनवमे तदाभवेत प्रचुर बांधव : सुकृतः ॥ समचित्तश्व सुशीलः सुकृतिख्यातवस्तु तेज रवीः ॥ इसी योग का फल बाबू सुभाषचंद्र को मिला है। इन का जितना विदेशों मे मान सन्मान हुआ है उतना केवल पं. नेहरु जी को ही मिला है। इसी प्रकार आखिर अन्दमान-निकोबर की जनता के अधिपति बन गये। इस धनु लग्न में और एक प्रमाण मिलता है। वह प्रमाण यह है कि ये लोग स्वयंभू होते हैं। Born not made योगशास्त्र के अष्टांग योग में पहली First Step "यम" नामक है। इस में "अहिंसासत्यमास्तेय ब्रह्माचर्य परिग्रहः" इतने गुणधर्म हैं। ये सब गुणधर्म नेताजी के अंग में पूर्ण रूप में बास करते हैं। ब्रह्मचर्य तो है फिर अपरिग्रह, १९२० साल में I.C.S. हो कर आये। सरकार इन्हें उस समय बड़ा अधिकार पद देना चाहती थी परंतु इन्होने स्वीकार नहीं किया।

नियमस्थान या धनस्थान- इस स्थान में मकर राशि उदित है। इस राशि का अधिपति शनि व्यय स्थान में है। इस का फल यह है कि पूर्वार्जित इस्टेट नही रहती। यदि रही भी तो उन्हें भोगने के लिए नहीं मिलती। धनेशो व्ययगे मानी साहसी धनवर्जिता। विक्रमीनृपमेधावी जेष्ठ पुत्रं सुखं नहीं ॥ विदेशगो, बलवान संग्रामिक : ख्यातोनरो भवेज्यात : ॥ इस स्थान में अष्टांग योग साधन में दूसरी सीढ़ी "नियम" है। इस नियम का पालन नेताजी भली प्रकार करते थे। इन्होने जो कुछ संपत्ति कमाई है वह "षट्साधन संपत्ति" है। इस संपत्ति के विषय में आद्य आचार्य जी ने अपने तत्त्वबोध में लिखा है कि वह " शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान"मय है। गहराई से देखा जाय तो यह संपत्ति इन के पास बहुत है और इसी संपत्ति से ये अच्छी स्थिति में मृत्यु तक रहेंगे।

इस स्थान में रवि, राहू और बुध हैं। रवि का फलादेश स्वतंत्र रह कर आजीविका चलाना, किसी का न सुनना, स्वेच्छा से चलना, योग्य अभिमानी रहना, दूसरों पर प्रेम से अधिकार चलाना होता है। " आझाद

हिन्द सरकार में सब जातियों के लोग थे। उस में भेद नहीं रखा था''यह अनुभव हो गया। अपने खाने पीने और कपड़े की कभी चिंता नहीं की। वर्तमान परिस्थिति से संघर्ष करते रहना इत्यादि राहु का फल Penny wise pound foolish ऐसा चालचलन न रखने वाला, उचित मार्ग से चलने वाला, निर्व्यसनी, हाथ में धन बहुत आता-जाता है, किन्तु संग्रह नहीं होता। अनाथ लोगों पर दयार्द्र दृष्टि से देखना, वाणी में तेज बहुत रहने से लोग दब जाते है। इस स्थान में बुध है। इस का फल विद्या पूर्ण होती हैं किंतु रुकावट से। अधिकार वाणी, निर्भीड़, बुद्धिमान् और लेखक होते है।

आसन स्थान या तृतीयस्थान- इस स्थान में कुंभ राशि उदित है। इस राशि का अधिपति शनि व्यय स्थान में है। इस योग का फल ऐसा है कि उन के व्यवसाय में इन को भाई-बहन मदद न करेंगे; भाई-बहन की बहुत ख्याति होगी। हाथ से पराक्रम खूब होगा; इस स्थान में शुक्र है यह ऐसा फल देता है कि बहिनें अधिक होती हैं। There are six sisters altogether षट भगिनी भार्गवे यह शुक्र छः बहिनें देता है।

गुरु भाग्य स्थान में रहने से ८ भाई होते हैं। इनमें से १९३० में एक भाई का देहावसान हो चुका, उस का नाम सतीशचंद्र था। उस समय राहू की दशा थी। लग्न में शनि और सप्तमस्थान में गुरु का भ्रमण चल रहा था। राहू का भ्रमण पंचम स्थान में से चल रहा था, इस भाई का देहावसान का काल बराबर मिला गया। दूसरी बहन प्रमिला का देहावसान सन १९३५ साल में हो चुका। इस समय दोनों भाई-बहनों के स्थान में पापग्रह भ्रमण कर रहे थे। जब नेताजी के भाई और बहन का देहावसान हुआ तब बाबू साहब की कुंडली में तृतीय स्थान में पाप ग्रह का भ्रमण हो रहा था तथा गुरु की महादशा भी चल रही थी। इस समय शनि कुंभ राशि में, गुरु तुला राशि में और राहू लग्न स्थान में भ्रमण कर रहे थे, यह भी बराबर मिल गया। आझाद हिन्द फौज के जरिए नेताजी ने दुनिया को अपने पराक्रम से पूर्ण परिचित करा दिया है और दुनिया में इसीलिए वे काफी मशहूर भी हो गये हैं। उपासना नैतिकता से धैर्य पूर्वक निभाने को ही हम पराक्रम समझते हैं।

इस स्थान में शुक्र शनि की राशि में है। यह नीचे दिया हुआ फल देता है -१. विवाह कर लेने की इच्छा नहीं होती। २. विवाह होने के लिए बहुत सी बाधाएँ आती हैं। ३. विवाह यदि हुआ हो तो स्त्री सौख्य पूरा नहीं मिलता। ४. पति-पत्नी में सुख का संबंध नहीं रहता। ५. दो-तीन विवाह होते हैं। ६. स्त्री अन्य धर्मियों की मिलती है। ७. उमर से बड़ी और गंभीरता रखने वाली मिलती है। ८. विवाह के पूर्व विधवा विवाह कर लेते हैं। ९. विवाह के पश्चात् आर्थिक तंगी निर्माण होती है। इस स्थान में पराक्रम देखा जाता है।

प्राणायाम स्थान या चतुर्थस्थान- इस स्थान में मीन राशि उदित है। इस राशि का अधिपति गुरु भाग्य स्थान में है। नवमगे सुखपेबहु भाग्यवान् पितृधनार्थ सुहृन्मनुजाधिप:। भवति तीर्थकरो व्रतवान क्षमी सुनयन: परदेशसुखीनर:॥ इन के व्यवहार से घराने का नाम इस संसार में गूँज रहा है और भाई-बहन आदि सब प्रेम करते हैं। वह गुरु वक्री होने से स्वकष्टार्जित नहीं होगा और पिता का सौख्य माता की तरह नहीं मिलेगा, थोड़ा मिलेगा। इन के पिताश्री ता ३-१२-१९३४ को स्वर्गवासी हो गये। इस समय धनस्थान में से रवि, राहू और बुध इन तीनों ग्रहों पर से शनि राहू का भ्रमण चल रहा था। कुटुंबस्थान यह घर के मालिक का स्थान है और रवि पितृकारक और बुध पितृस्थानाधिपति होते हैं। इसी कारण पिताश्री का देहावसान हो गया और माता जी पीछे रह गई। प्राण वायु इन के स्वाधीन है।

प्रत्याहारस्थान या पंचमस्थान- इन स्थान में मेष राशि उदित है। इस का अधिपति मंगल षष्ठस्थान में है। पंचमेश मंगल, षष्ठस्थान में वृषभ राशि में नेपच्यून के साथ ही बैठा है इस कारण ये भगवती काली के उपासक बने। ये भगवान महावीर जी के उपासक होने वाले थे, बाद में इस उपासना में बदल हुआ। इनके हृदय में माया मोह बिलकुल नहीं है।

"वे शक्ति के साधक थे ओर जब कभी उन पर आपत्ति आती थी या कोई नया कार्य आरंभ करते थे तो वे जगद्जननी माता दुर्गा की अर्चना

अवश्य करते थे । जेल से जब सरकार ने छोड दिया तो उन्होने फिर माता दुर्गा की अर्चना आरंभ कर दी '' ।

आझाद हिंद फौज पृष्ठ ७१
लेखक- रामशंकर त्रिपाठी, प्रकाशक- लोकमान्य
कार्यालय, १६० हॅरीसन रोड, कलकत्ता ।

यह योग यही बतलाता है कि शिक्षा पूर्ण होने के लिए बहुतसी बाधाएँ आती हैं । फिर गुरु भाग्य स्थान में रहने से शिक्षाक्रम पूर्ण होता है । सुभाषबाबू सन १९१३ साल में Matric हुए । इस समय गुरु लग्न मे था । सन १९१५ में Inter पास हुए । इस समय गुरु कुंभ राशि में था और १९१८ साल में B.A.. पास हो गये । इस समय गुरु वृषभ राशि में था और राहू लग्न में था क्यों कि मंगल पर से गुरु का भ्रमण चल रहा था । सन १९२० साल में I.C.S.पास हो गये । इस समय गुरु कर्क में, शनि सिंह राशि में और राहू तुला राशि में भ्रमण कर रहे थे । शनि और गुरु ये दोनों भी राजकीय राशि में थे इस कारण I.C.S.पास हो गये । इस समय राहू की महादश थी । सब बराबर मिला । पंचमेश मंगल, नेपच्यून षष्ठस्थान में रह कर शनि और हर्शल को प्रतियोग करता है, इसलिए इन को संतान नहीं है । (विवाह ही नहीं तब संतान कहाँ की ?)

धारणास्थान या चमत्कार स्थान- इस स्थान में वृषभ राशि उदित है । इस का अधिपति शुक्र तृतीय स्थान में है । यह योग यह बतलाता है कि इन की सब धारणा राष्ट्र कल्याण के लिए चल रही है । इसीलिए सरकार से लड़ रहे हैं । इस जगह पर मंगल और नेपच्यून हैं । षष्ठस्थान यह बड़ा मिस्टिक हाउस है । मिस्टिक हाउस में नेपच्यून यह बड़ा ही मिस्टिक ग्रह मंगल के साथ बैठा है । इस योग का फल ता. १५ या २१-१-४१ के दिन बंधन में से अदृश्य होकर झियाउद्दीन पठान बनकर पेशावर काबूल मार्ग से जर्मनी में जा पहुँचे । नेपच्यून ग्रह Criminal Investigation Department पर अमल करता है । गुनहगारों की तलाश करने के लिए वेषातंरी करना पड़ता है । नेपच्यून वेषांतर कराता

चित्र नंबर १७

है । इस समय गुरु-शनि मेष राशि में, राहु नेपच्यून की युति कन्या राशि स्थित चंद्रमा पर भ्रंमण करती रही है । इस जगह पर राहू नेपच्यून भी चंद्र पर भ्रमण करते थे, यह अनुभव मिल गया! सन १९२५ में मंडाले में तबियत खराब हो गयी । इस समय गुरु मकर राशि में रवि पर भ्रमण करता रहा । राहू अष्टमस्थान में शनि लाभ स्थान में से भ्रमण कर रहा था । जब रवि पर से गुरु का भ्रमण होता है तब तबियत अच्छी नहीं रहती । सन १९३५ के मार्च में पेट के दर्दपर आपरेशन किया गया । मंगल दशम स्थान में चंद्र पर, शनि कुंभ राशि में, राहू मकर में ऐसे ग्रह थे । यह भी ठीक-ठीक मिला । षष्ठ स्थान के मंगल, नेपच्यून ऐसे रोगों का निर्माण करते है कि बड़े-बड़े डॉक्टरों और वैद्यों से चिकित्सा नहीं हो सकती । अन्त तक प्रकृति ऐसी ही रहेगी । इन की धारणाशक्ति प्रबल रहने से ध्यान में अच्छा लाभ उठा रहे हैं ।

ध्यानस्थान या सप्तम स्थान- इस स्थान में मिथुन राशि उदित है । इस का स्वामी बुध धनस्थान में रवि राहू से युक्त है । इस कुंडली में आजन्म विवाह न होने के ग्रह योग हैं । वे नीचे दिये जाते हैं -१ सप्तमेश बुध धनस्थान में राहू रवि से युक्त है । २ शुक्र तृतीय स्थान में हैं । ३ व्ययस्थान में शनि हर्शल हैं । ४ शुक्र के सामने वक्री गुरु है । ५ धनस्थान में रवि और राहू ये पापग्रह हैं । इतने ग्रहयोग विवाह सौख्य नहीं देंगे । इन का ध्यान स्त्री में नहीं बल्कि स्वराज्य पाने और हिंदुस्थान को आजादी प्रदान करने में है ।

समाधिस्थान या मृत्युस्थान- इस स्थान में कर्क राशि उदित है । इस का अधिपति चंद्र दशमस्थान में है । मृत्यु दुर्घटना में कभी भी न होगी । मृत्यु योग शांति से, समाधान, और राष्ट्रकार्य करते-करते होगा । इस जगह पर एक आशंका निर्माण होती है कि ता. १६ अगस्त १९४५ के दिन नेताजी हवाई जहाज में बैठ कर रंगून से बँकाक को जा रहे थे, उस समय विमान दुर्घटना हो गयी और वह नीच गिर पड़ा । उस में नेताजी की मृत्यु हो गयी । इस समय का ग्रहयोग नीचे दिया गया है । गुरु-नेपच्यून कन्या राशि में जन्मस्थ चंद्र पर से भ्रमण कर रहे थे । हर्शल षष्ठस्थान में, शनि, शुक्र, और राहू मिथून राशि में, मंगल वृषभ राशि में

और चंद्रमा वृश्चिक राशि में, ऐसे ग्रहयोग थे। इस समय लग्नेश गुरु की दशा चल रही थी। इस ग्रहयोग से विचार किया जाय तो मेरे विचारानुसार निश्चित रूप में मृत्यु नहीं हुई है वे जीवित है, यह मेरा आत्मविश्वास है। इधर और एक शंका निर्माण होती है। कि उस दिन नेताजी उस हवाई जहाज में थे या नहीं ? इस का उत्तर ज्योतिष शास्त्र से कहा जाता है कि लग्नेश और रवि ये दोनों शरीर के मालिक होते हैं। यह दोनों ग्रह शनि, राहु मंगल, हर्षल से अलग थे और चंद्रमा वृश्चिक स्थिर राशि में था अतएव उस दिन वे उस हवाई जहाज में नहीं थे। यह बात स्पष्टतया मालूम होती है। सुभाषबाबू को यह मालूम था कि मुझे अपयश मिल रहा है, मैं अब अंग्रेजों के हाथों पकड़ा जा सकता हूँ इसीलिए वे किसी पनडुब्बी में बैठ कर किसी अदृश्य स्थान पर चले गये। तात्पर्य यह है कि उस दिन चन्द्र व्ययस्थान में और वृश्चिक जल राशि में था। व्ययस्थान महासागर का कारक है। इसे सिद्ध करने के लिए एक दूसरा प्रमाण भी सुनिये- इस शरीर का मालिक रवि कई घंटो के बाद अष्टम स्थान में से भाग्य स्थान में चला जाता है। ता. ५-९-१९४५ के दिन रवि जन्मस्थ गुरु को मिलता है। इस से यह सिद्ध होता है कि नेताजी जल मार्ग से हो कर किसी महान् साधु-महात्मा के आश्रय में पहुँच चुके हैं। वह स्थान इतना निर्भय है कि वहाँपर दुनिया के किसी भी व्यक्ति के जरिये उन के जीवन को धोखा नहीं पहुँच सकता।

हमारे प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु जी ने कई दिनों पूर्व रेडियो पर एक वक्तव्य दिया था कि हवाई जहाज के नष्ट होने पर नेता जी का देहान्त हो गया है। किन्तु भारत के कोने -कोने से अखबार वाले सुभाषबाबू के जीवित रहने की, अमुक तारीख को प्रकट होने की तथा अमुक स्थान पर प्रकट हो जाने की खबर प्रकाशित किया करते हैं। बहुत से विद्वान इस प्रश्न को हल करने में जुटे हुए हैं किन्तु विषय दिनों दिन वादग्रस्त होता जा रहा है।

अब तक जितनी भी खबरें उन के विषय में प्रकाशित हुई हैं उन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। ज्योतिष के गहरे अध्ययन के

बाद नेताजी के प्रकट होने का काल हमने इस प्रकार निश्चित किया है " धनु राशि में गुरु, सिंह राशि में शनि और मीन राशि में राहू, हर्षल मिथुन राशि में और नेपच्यून कन्या राशि में। इस प्रकार का संयुक्त काल सन १९४९ के सितंबर- अक्तूबर मास में आता है। मेरे अनुभवानुसार मृत्युकाल में ग्रह किस प्रकार आते हैं। इसे भी सुनिये- (१) शनि और राहू इन का गोचर भ्रमण धन, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम और व्ययस्थान में से चलता है। (२) ये जब भ्रमण करते हैं तब जन्म काल के रवि और चंद्र ये दोनों शनि से बिगड़ने लगते हैं। (३) गुरु रवि के साथ साढ़े साती करना चाहिए या रवि के केंद्र से भ्रमण करना चाहिए। (४) अथवा गुरु से चंद्र की साड़ेसाती रहनी चाहिए। (५) धनेश और सप्तमेश इन पर से शनि का भ्रमण शुरु रहना चाहिए। (६) यदि ऊपर के ग्रहयोग चालू रहते हैं तो उस समय धन, चतुर्थ, पष्ठ सप्तम और अष्टम स्थान के राश्याधिपति की दशांतर दशा चलनी जरूरी है। ऊपर दिये हुए ग्रहयोगों पर मानव प्राणी की मृत्यु निश्चित होती है। देखिये लेखक का "शनिविचार" पुस्तक। ऊपर दिये हुए मृत्युकालीन ग्रहयोग में से दुर्घटना के दिन, मृत्यु के लिए योग्य ऐसा एक भी ग्रहयोग नहीं था। सबब मृत्यु होना सर्वथैव असंभवनीय बात है, इसीलिए वे जीवित हैं यह निश्चित है।

ग्रहयोगों का उपर्युक्त विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि नेताजी जीवित हैं। आज की राजनैतिक हलचलों का भी गहराई से अध्ययन किया जाय तो तीसरा महायुद्ध अत्यंत निकट आया सा जान पड़ता है। इसी कारण रूस तथा इंग्लैंड के युद्ध काल में नेता जी प्रकट हो सकते हैं।

अब नेताजी के आयुष्यमान पर विचार करेंगे - शनि व्ययस्थान में वृश्चिक स्थिर राशि में है और यह ग्रह प्रत्यक्ष मृत्यु देने वाला ग्रह है। अतएव इन की मृत्यु धीरे से अर्थात् वृद्धावस्था में होगी। १९६७ ई.में इनकी मृत्यु है। उस समय निम्नलिखित ग्रहयोग मिलते हैं। शनि और राहू मीन राशि में, गुरु कर्क राशि में रवि के सामने, हर्शल दशम स्थान में और नेपच्यून वृश्चिक राशि में, उस समय शनि की दशा चलती है। इन की मृत्यु रुग्णावस्था में नहीं स्वेच्छा से होगी।

ज्ञानस्थान या नवमस्थान - इस स्थान में सिंह राशि उदित है। इस राशि का अधिपति रवि धनस्थान में हैं। "भाग्येशो सहजे वित्ते सदा भाग्यानुचिंतन:। धनवान गुणवान कामी पंडितोजनवल्लभ:॥" हिंदुस्थान का स्वातंत्र्यभाग्य कब खुलेगा इस की नेताजी दिनरात चिन्ता करते थे। उन्हों ने स्वयं के भाग्य की कभी भी चिन्ता नहीं की इस योग पर मनुष्य लोकप्रिय होता है। इस स्थान पर गुरु है। यह गुरु कॉलेज की बड़ी-बड़ी परीक्षा पास कराता है। सन १९२० साल में केंब्रिज विश्वविद्यालय की B.A. परीक्षा में भली प्रकार पास हो गये। उस समय गुरु कर्क राशि में था। सन १९-५-१९२१ में स्व. बाबू सी.आर. दास ने राष्ट्रीय कॉलेज शुरू किया, उस कॉलेज के नेताजी प्रिन्सिपल थे। इस समय गुरु सिंह राशि में राहु तुला राशि में था। यह गुरु Politics, Economics, Philosophy Sanskrit ये विषय बताता है। कॉलेज में B.A. इन विषयों में से एकाध विषय में उत्तीर्ण हुए है ऐसा मेरा ख्याल है। यदि गुरु आध्यात्मिक मार्ग बतलाता हैं इसलिये १९१५ साल में गुरु के लिए कुछ काल तक घूमने गये फिर नहीं मिले। इस समय गुरु कुंभ और मीन राशि में और शनि मिथुन राशि में तथा राहू मकर राशि में था। ये योग सद्गुरु नहीं देते। इस के बाद पुनः वापिस आये कारण इस काल में दशा अंतरदशा अनुकूल नहीं थी। जब धनु राशि में गुरु, शनि सिंह राशि में और राहु मीन में आ जाय तब सद्गुरु मिलेंगे। नेताजी के सिर पर प्रत्यक्ष भगवान महाबीर जी और भगवती काली इन दोनों देवताओं का वरदहस्त पड़ कर सद्गुरु की कृपा होने वाली है। इस प्रकार ये बड़े भाग्यशाली पुरुष हैं। उस समय गुरु दशा में राहू की अंतर्दशा रहेगी। यह गुरु सिंह राशि के २० वें अंश degree में है। इस का वर्णन सेफारिअल ने दिया है उसे यहाँ उद्धृत करते हैं। प्रथम २० अंश में जो दृश्य का दर्शन हुआ है वह यह है। "A crescent moon joined to a shining star" "इसका अर्थ यह है It denotes that the native will have many changes in life and will eventually become eminent through his association with some persons of high rank and merit. The native will be gifted with a powerful imagination, much

versatility and keen intuition. He will travel to distant countries, and will become eminent for his own mental brilliancy, apart from his associations which, however, will be the means of his success. It is a degree of Distinction." यह अर्थ नेताजी को कितना बराबर लगता है, यह विचार करने योग्य है ।

कर्मस्थान या पितृस्थान- इस स्थान में कन्या राशि उदित है । इस राशि का अधिपति बुध धनस्थान में हैं । धनस्थानेचकर्मेशोनरेंद्रमान्यों भवेच्चनरपालः । सौम्य ग्रहेच मातुः पितुश्च परिपालक पुरषः ॥ इस स्थान में चंद्र है । मातृसौख्य अधिक मिला । माता जी का देहावसान सन १९४३ में हुआ । इस समय गुरु और राहू कर्क राशि में थे और शनि षष्ठ स्थान में तथा मंगल नेपच्युन पर से जा रहा था । यहां तक सारी बातें बराबर मिलती हैं । यहाँ विस्तृत विचार करना आवश्यक है । इस स्थान में चंद्र स्वयं के लिए कुछ भी न करते हुए लोक सेवा करने के लिए उद्युक्त करता है । जयदेव कवि (ज्योतिषी) अपने ग्रंथ में कहते हैं कि "लक्ष्मी सुकीर्तिः कृत कार्य सिद्धिर्भूपेष्टताशौर्यं मिहास्तिखेन्दौ" । यह चंद्र संग्राहक और स्वयं शासित वृत्ति रखता है, फिर यह चंद्रमा इन को नेस्तनाबूत करने के लिए कारण हुआ, इस कारण चंद्र अष्टमेश होता है ।

वासनास्थान या लाभस्थान- इस स्थान में तुला राशि उदित है । इस राशि का अधिपति शुक्र तृतिय स्थान में है । इन का देहावसान होने तक हिंद की स्वातंत्र्य की वासना रहेगी । इन के रक्त के हर एक कण और हर एक रोम गर्जना करते रहेंगे कि मैं हिंदुस्थान को स्वतंत्र करूंगा और भारत वर्ष स्वतंत्र होगा । नेताजी अपने लिए विरक्त थे, अपने जीवन में कभी लाभ नहीं उठाया ।

मोक्षस्थान या कीर्तिस्थान- इस स्थान में वृश्चिक राशि उदित है । इस राशि का अधिपति मंगल षष्ठस्थान में है । यह योग यह बतलाता है कि जीवन भर बड़े प्रबल शत्रुओं से लड़ना है । नेताज़ी जीवन भर लड़ते रहे थे यह सब को मालूम है । इस स्थान में शनि है । यह शनि कीर्ति देता है,

वैसे ही निर्वासित होना पड़ता है । दीर्घकालीन सजा भोगना पड़ता है । किसी भी एक विषय में अग्रस्थान पाते हैं । बुद्धि बड़ी तेज रहती है और विद्वान होते है । कायदे पंडित, बैरिस्टर, वकील और राजनैतिक षड़यंत्र चलाने वाले होते है । व्ययस्थान के शनि का ऐसा गुणधर्म है कि इन को मौका मिल जाय तो बड़ी-बड़ी संस्थाएँ स्थापन करते और चलाते हैं । ये लोग घरबार को नहीं देखते । यह शनि परदेश को ले जाता है । अंत में इन को मोक्ष देता है । नेताजी ने सन १९२१ में राष्ट्रीय सैनिक दल स्थापित किया था, उस समय शनि कन्या राशि में था । इस कार्य में बंगाल सरकार ने छः मास की सजा दी । सन १९२२ के अक्टूबर में जेल से मुक्त हो गये । इस समय शनि कन्या राशि में, गुरु सिंह राशि में और राहू तूला राशि में था । यह बराबर मिल गया, क्यों कि शनि जन्मस्थ चंद्र पर से जा रहा था । इसी ग्रहयोग पर "यंग बेंगाल पार्टी" की स्थापना हुई । इस बारे में बंगाल सरकारने ता. २५-१०-२४ के दिन बेमुदद बिना तहकीकात के गिरफ्तारी में रखा । इस समय शनि तुला राशि में, राहू कर्क राशि में और गुरु वृश्चिक राशि में था, यह बराबर मिला । इस सजा में इन को हिंदुस्थान में न रखते हुए यहाँ से उठा ले गये और ब्रह्मदेश की मांडले जेल में रखा गया । किन्तु पुनः १६-५-२७ को उन्हें मुक्त कर दिया । इस समय शनि वृश्चिक राशि में, गुरु मीन राशि में और राहू मिथुन राशि में था । यह बराबर मिला । ऊपर दिये हुए ग्रहयोग पर "युवक संघ" और "हिंदी स्वातंत्र्य संघ" इन दो संघो की स्थापना की गयी । सन १९३० की जनवरी में नेताजी और श्री. श्रीनिवास अय्यंगार महोदय इन्होने इंडिपेण्डेन्स लीग की स्थापना की । इस समय शनि धनु राशि में, गुरु वृषभ राशि में और राहू मेष राशि में थे । ता २६ जनवरी १९३० के दिन "प्रथम स्वातंत्र्य दिन" मनाया गया । इस समय शनि धनु राशि में, गुरु वृषभ राशि में और राहू मेष राशि में थे, यह सब बराबर मिल गये । स्वातंत्र्य दिन २६ जनवरी को मनाया गया अतएव नेताजी को एक साल की सजा बंगाल सरकार ने दी । इस समय ग्रह योग उपर्युक्त थे । लाहोर में ता.३१-१२-१९३१ के दिन " स्वातंत्र्य दिन का स्मृतिदिन" मनाने के लिए नेता जी के

नेतृत्व में एक बड़ा जुलूस निकाला गया। उस जुलूस पर पुलिस ने लाठीमार किया। इस लाठीमार में नेताजी को बहुत सी चोटें लगी। इस समय रवि शनियुक्त धनु राशि में, गुरु सिंह राशि में, राहु मीन राशि में और मंगल के पीछे शनि इस प्रकार के ग्रहयोग थे। कलकत्ते में जनवरी १९३२ में राजबंदी दिन मनाया गया और एक विराट सभा का आयोजन हुआ। इस जमाव पर पुलिस ने लाठी चलायी। उस समय भी नेताजी कों चोट लगी। इस समय शनि-मंगल युति मकर राशि में गुरु कर्क राशि में थे इसी ग्रहयोग पर ता. २६-१-१९३१ के दिन ''स्वातंत्र्य दिन स्मृति'' का बड़ा जुलूस निकाला गया था और उस पर भी पुलिस ने लाठी चार्ज किया। इस विषय में नेताजी को छः मास की सश्रम सजा दी गई। वे दिसम्बर १९३१ में पूना गये। इस अवसर पर शनि धनु राशि में, गुरु सिंह राशि में और राहू मीन राशि में थे। इस प्रकार के ग्रहयोगों के कारण नेताजी को कल्याण स्टेशन पर हिरासत में ले लिया गया। सन १८१८ की ३ री धारा के अनुसार छानबीन किये बिना ही कारावास में रख दिया गया। कुछ ही दिनो के बाद उन के पेट में दर्द होना शुरू हुआ और क्षयरोग की झलक स्पष्ट दीखने लगी। इसी अर्से में २० तारीख को सिवनी जेल से जबलपुर जेल में पहुँचाये गये। ता. २३-२-३३ को सरकार ने बाबू सुभाषचंद्रजी को यह आज्ञा दी कि वे स्वास्थ्य सुधार के लिए यूरोप चले जायँ। उसी दिन नेताजी बंबई से यूरोप चले गये। इस समय शनि मकर में, राहू और गुरु कुंभ राशि में थे। यह भी बराबर मिलता है। ता. ३-५-१९३४ को नेताजी ने व्हिएन्ना में ''इंडो-यूरोपियन सोसाइटी'' की स्थापना की। उस समय गुरु कन्या राशि में, शनि कुंभ राशि में और राहू मकर राशि में, इस प्रकार के ग्रह थे। यह भी ठिक/ठिक मिलता है। इ.स. १९३६ में नेता जी आयलँड गये और वहाँ पर डी. वेलेरा से मुलाकात की।
इस समय मंगल कुंभ राशि में, गुरु वृश्चिक में और राहू धनु राशि में था। यह भी ठीक मिलता है। ८-३-१९३५ को नेताजी यूरोप से बंबई लौटे। उसी समय पुनः सरकारने इन्हें हिरासत में लिया। इस बार उन्हें १ साल तक जेल में रखा गया। इस समय राहु-गुरु धनु राशि में और शनि कुंभ राशि में था। पुनः बीमारियों का प्रकोप बढ़ा। इसी कारण सरकार को बिना शर्त उन्हें मुक्त कर देना पड़ा।

इस समय गुरु मकर राशि में; शनि कुंभ राशि में और राहू वृश्चिक

राशि में. इस प्रकार ग्रहयोग थे। यह भी बराबर मिलता है। सन १९३८ के दिसम्बर मास में बाबू सुभाषचंद्र जी हरिपुरा काँग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। इस समय शनि मीन राशि में, गुरु कुंभ राशि में और राहु तूला राशि में था. यह भी ठीक मिलता है। १९३९ में त्रिपुरा काँग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए पुनः आप हठ से खड़े हुये। यहाँ भी आप की विजय हुयी। यहाँ शनि मेष, गुरु-मंगल मीन राशि में और राहू तूला राशि में था, यह भी बराबर मिलता है। उपर्युक्त ग्रह योगों पर आप ने Forward Block की स्थापना की और महाराष्ट्र में संचार करने लगे। १९४० में आप बंगाल असेम्ब्ली के सदस्य चुन कर आये। इस समय शनि मेष राशि में, राहू कन्या में और गुरु मीन में थे। यह भी ठीक-ठीक मिलता है। इस साल हॉलवेल की पत्थर की मूर्ति उठाने के लिए एक बड़ा आन्दोलन चालू किया गया, मूर्ति वहाँ से हटायी गयी। इसी अर्से में फॉरवर्ड ब्लॉक के विषय में आक्षेपार्ह लेख प्रकाशित करने के संबंध में सरकार ने इन्हें कैद किया। इस समय शनि-गुरु मेष राशि में और राहू कन्या में था। इस समय इन की तबियत ठीक नहीं थी, अतएव जेल से छोड़ कर उन के मकान पर ही कड़े पहरे में रख दिया गया। १५-१ ४१ को मौलवी का भेष धारण कर बंगाल छोड़ कर काबुल मार्ग से जर्मनी जा पहुँचे। इस समय राहू चंद्र को ग्रस रहा था। पीछे नेपच्यून लग रहा था। ये ग्रह दशम स्थान में जन्मस्थ चंद्र को दोनों ही ग्रस रहे थे। इस कारण नेताजी वेषांतर करके जा सके। यहाँ देखने की बात यह है कि सब कितना बराबर मिलता है।

सन १९४२ साल में जर्मनी में आझाद हिंद फौज की स्थापना की। इस समय शनि वृषभ राशि में था। ३० जून १९४३ में बर्लिन से जापान में आये और नेतृत्व पद स्वीकार कर लिया। इस समय गुरु राहू कर्क राशि में थे, यह गुरु- राहू का फल मिल गया। ता. ४ जुलाई १९४३ में आझाद हिंद सरकार की स्थापना की गयी। इस समय गुरु-राहु कर्क में, शनि वृषभ में, नेपच्यून कन्या में, हर्षल वृषभ में, मंगल मेष में, ऐसे ग्रहयोग थे। इन सब ग्रहों को देखते हुए यह जान पड़ता है कि सब ग्रह प्रतिकूल थे।इसी ग्रहयोग पर ता. ५ जुलाई १९४३ के दिन "चलो दिल्ली" की

घोषणा की। ता. २५-८-१९४३ के दिन आझाद हिंद सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और सेनापति बन गये। इस समय राहू-गुरु कर्क राशि में, शनि मिथुन राशि में नेपच्यून कन्या में हर्षल और मंगल वृषभ में ऐसे ग्रह थे। यह भी बराबर मिलता है। ता. २१-१०-१९४३ के दिन आजाद हिंद सरक़ार की कायदे के अनुसार स्थापना की गयी और ता. २५-१०-४३ के दिन आझाद हिंद सरकार के मंत्रिमंडल ने ब्रिटेन, अमरीका के साथ युद्ध की घोषणा की। इस समय वृषभ राशि में मंगल, मिथुन राशि में शनि, कर्क राशि में राहू और गुरु सिंह राशि में थे इस में मंगल, शनि और राहू ये अनुकूल नहीं थे। उस दिन चंद्रमा अनुकूल नहीं था। इसलिए इन को आगे अपयश मिला। ता.२३-१-१९४४ में सिंगापूर में नेताजी की सुवर्ण तुला हुई, आप ने तुला का दान आझाद हिंद फौज को दिया। यह समारोह बड़े उत्साह भाव से और पूर्ण भक्ति भाव से हुआ। इस समय लग्नेश गुरु भाग्य स्थान में वक्री था। राहू जन्मस्थ राहू के सामने था। शनि जन्मस्थ शनि के सामने और नेपच्यून मंगल पर से जा रहा था। मंगल अपने जन्मस्थ मंगल पर आ गया था। प्रिय पाठक गण, नेताजी के ग्रह कितने ठीक मिलते हैं और इसीलिए उन की कुण्डली के अन्य लग्नों पर इतना मान-सम्मान होना संभव है क्या?

आझाद हिंद फौज पृष्ठ ७९
लेखक- रामशंकर त्रिपाठी
प्रकाशक - लोकमान्य कार्यालय,
१६० हॅरिसन रोड, कलकत्ता।

सन १९४४ से मणिपुर विष्णुपुर और इंफाल में इन को परास्त होना पड़ा। अन्त में ता. २१-८-१९४४ से सैन्य की सब हलचल बंद हो गयी। इस समय सिंह राशि में गुरु, शुक्र, बुध और रवि थे, शनि मिथुन में, राहू कर्क में थे ओर कन्या में मंगल था। इस ग्रहयोग में ता. १६ अगस्त, १९४५ को नेताजी रंगून से बैंकॉक को जाने के लिए निकले। ता. १८-८-१९४५ को विमान दुर्घटना हुई और नेताजी की मृत्यु हो गयी। बस सब मामला खतम। इसी का विवरण पीछे दिया गया है। इन

की मृत्यु हुई है या नहीं इस बात को तो भगवान महाबीर जी जाने या नेताजी जानें अथवा पंडित नेहरु ही जानें ।

अब ग्रह योग का विचार करेंगे

महान क्रान्तिकारी और महान महात्मा यह दोनों ही कर्क, वृश्चिक, धनु और मीन लग्न पर पैदा होते हैं । फिर क्रान्तिकारी और महात्मा इन दोनों में किचिंत फर्क रहता है । क्रान्तिकारी व्यक्ति ऊपर दिये हुए लग्न पर पैदा होते हैं । उन की कुंडली में शनि- मंगल की युति, प्रतियुति और मंगल के व्यय स्थान में शनि और मंगल के चतुर्थ और दशम स्थान में शनि ऐसे योग रहते हैं ओर महात्मा लोगों की कुंडली में ये योग नहीं रहते, इतना फरक है ।

अब नेताजी की कुंडली में यह योग हैं । शनि व्ययस्थान में और मंगल षष्ठ स्थान में है । यह योग यह बताता है ।

This combination is excellent for those who have to undergo hardship or danger. The martial influence is as it were tempered and more adaptable, or dered and controlled while the Saturnian energised and made more enterprising and courageous. Such people have as a rule small regard for personal comfort or even safety and may be excellent explorers, rulers of savage tribes of men needing firm control. It denotes orderly and courageous action, endurance and some practical ability. It tends to hardship, self-abnegation and a disciplined life. A powerful and in some cases dangerous combination, It other influences agree there may be a distinct danger of unusal physical suffering. It occurs in the nativities of several victims. Blows, cuts and stabs sometimes occur often as the result of falls.

The two so-called malefic planets Saturn and Mars is generally a very evil position but as the true astrology teaches that there is no real evil but only that which is relative: it is within your power to make this a good position and this you may do by allowing your ambition to conquer your senses but beware of escape from one danger to fall into another; for the mind is much more dangerous to cope with than the senses. It will give you a strong and powerful will and a fearlessness that will be favourable if seifishness is kept out of it. You will be able to hold very unique and also responsible posts where skill and courage are necessary but do not become overambitions. This aspect will cause you to be ambitious and make you persevering and eager to excel in whatevear enterprise you undertake. You are brave, courageous and fearless with regard to danger and you not only possess of force character but tactfulness also. There is much of the hero spirit in you and you love to be at the head of men and you would make a very capable leader.

व्ययस्थान में राष्ट्र का राजनैतिक आन्दोलन देखना पड़ता है। इसलिए इस स्थान का शनि यह पूर्णतया बताता है और षष्ठ स्थान यह बताता है कि राष्ट्र के शत्रु इसी कारण मंगल यहाँ रहने से इन को राष्ट्र के शत्रु के साथ झगड़ना पड़ता है। यह योग बताता है कि निर्वासित होना, हमेशा जेल में रहना, खून, विषप्रयोग, आत्महत्या, करना और सरकारी पैसा या रिश्वत लेने के दोषारोपण पर सजा मिलती हैं। इस योग में मनुष्य बहुत जल्दी ऊपर चढ़ता है। He comes as soon as possible in the public eye। इस योग में शरीर कष्ट बहुत होता है।

योग २ रा- मंगल नेपच्यून युति षष्ठस्थान में है-यह योग यह बतलाता है कि ये लोग बागी होते हैं। Anarchist होते हैं। स्त्री और बालबच्चों का सौख्य नहीं देता, विदेश घुमाता है। स्वप्न में देवता का दर्शन होता है। वेषांतर करना पड़ता है, पेट के दर्द होते हैं। अतएव डॉक्टर-वैद्य लोगों को Diagnosis करने पर बड़ी तकलीफ होती है।

योग ३ रा- शुक्र तृतीय स्थान में और गुरु भाग्य स्थान में है। इस योग का फल यह है कि वे वेदान्ती होते हैं। इस योग में स्त्री-बालबच्चों का सौख्य नहीं मिलता। शुक्र के सामने से गुरु वक्री होता है। इस का फल यह है कि पूर्वायुष्य में गुरु नहीं मिलेगा। वृद्धावस्था में गुरु मिलता है। सबब यह है कि मस्तक में एक काम वासना और दूसरा ज्ञान ये दोनों ही चलते हैं। इस में काम वासना मस्तक में से हट जानी चाहिए तब गुरु की कृपा होती है। गुरु लग्नेश हो कर शुक्र के सामने वक्री होने के कारण स्त्री के मुख के सामने से अपना मुँह फेर लिया। योगशास्त्र के अनुसार देखा जाय तो उन के शरीर में तीन चक्र प्रबल हैं। एक मणिपूर चक्र और दूसरा आज्ञाचक्र और तीसरा Pineal Gland किंतु गुरु कृपा से सब चक्र खुल जायेंगे। नेताजी की कुंडली पर से देखा जाय तो यह मालूम होता है कि ये बड़े महात्मा होने योग्य हैं लेकिन भवितव्यता अलग थी। हमारे एक महाराष्ट्रीय कवि ने कहा है।

देशभक्तां प्रासाद बंदिशाला।
शृंखलांच्या गुंफिल्या पुष्पमाला॥
चिता सिंहासन शूल राजदंड।
मृत्यु दैवत दे अमरता उदंड॥१॥
नहीं तो ! ऐसा क्यों न होता --
पर्ण कुटिका प्रासाद योगियांना।
अन्न वस्त्रे ना घेति कष्ट नाना॥
भूमि सिंहासन करी योग दंड।
मृत्यु दैवत दे अमरता उदंड॥२॥

आज भारत के कोने-कोने में नेताजी की कुण्डलियाँ तैयार हो रही है। कई ज्योतिषी मेष लग्न, वृषभ लग्न, तूला लग्न, मीन लग्न और कई कुंभ

लग्न बतलाते हैं। हमारे विचार से ये सब मनचाहा करना चाहते हैं। जब नेताजी नागपुर पधारे थे तब हम ने उन से उनकी जन्म तारीख और जन्मकाल का पता पूछा था। तब आप ने जन्म तारीख और जन्म काल उपर्युक्त ही बतलाया था। उन के कथन पर हम ने यह कुंडली तैयार की है, अतएव अन्य सारी कुंडलियों को हम असत्य मानते हैं।

नेताजी महापुरुष हैं। भारत के राजनैतिक इतिहास में इन का नाम बडे ही गौरव से सुवर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। इन की कीर्ति अमर रहेगी।

॥ इत्यलम् ॥

नवमभाव- इस भाव में धनु राशि का उदय होता है जिस पर गुरु का प्रभाव है। इस भाव के भावकारक ग्रह गुरु और रवि माने गये हैं। लग्न से ले कर अष्टमभाव तक योगी योगाभ्यास कर के यदि कुंडलिनी को ब्रह्मरंध्र में लाये तो क्या उस का कार्य पूर्ण हो जाता है ? नहीं। कबीर दासजी ने कहा हैं "कुंडलिनी को खूब चढावे ब्रह्मारंध्र में लावे, सोहि कच्चा बे कच्चा नहीं गुरु का बच्चा।" यद्यपि कुंडलिनी ब्रह्मरंध्र में स्थिर करने में योगी सफल हो जाय तो फिर भी उसे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। कुंडलिनी को ब्रह्मरंध्र में लाने से नादब्रह्म की प्राप्ति होती है; किन्तु "मै स्वयं ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परमार्थ मार्ग का मुख्य उद्देश्य यही है कि आत्मज्ञान को प्राप्त करना। चारों वेदों में 'अयमात्माब्रह्म', 'प्रज्ञानमानन्दब्रह्म', ॐ तत्सत्,' 'अहं ब्रह्मास्मि' यही कहा गया है।

आत्मज्ञान प्राप्त करना इसका अर्थ ही यह है कि "इस सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय करने वाला मैं ही हूँ" इस बात का ज्ञान होना। उसी तरह मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा कर्तव्य क्या है मुझे किस ओर जाना है? आदि के बारे में पहले ही ज्ञान प्राप्त कर शब्दरहित ब्रह्म के ऊपर उठना ही आत्मज्ञान प्राप्त करना है। इस नवमभाव में इसी आत्मज्ञान का विचार किया जाता है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की आश्यकता होती है। गुरु की व्याख्या हम पिछले परिच्छेदों में कर चुके है। आज कल कई भोंदू गुरु पाये जाते हैं। वे तो स्वयं ही कुछ नहीं जानते, फिर शिष्यों को किस प्रकार से भवसागर के पार ले जा सकते हैं ? इसीलिये इस स्थान में किस प्रकार का गुरु करना चाहिये? ज्ञानयोग

दीक्षा, पंथ, वज्रासन, स्वस्तिकासन, धनुष्यासन, वीरासन, गरुड़ासन, उष्ट्रासन, तीर्थयात्रा, उपदेश करना, सत्संग करना, अच्छे शिष्य बनाना, धर्म प्रचार करना, अध्ययन व अध्यापन करना आदि बातों का इस भाव में विचार किया जाता है ।

गर्भ के नववें माह पर चन्द्र का प्रभाव होता है । इस माह में पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण हो जाता है । इस भाव के अधिपति भगवान दत्तात्रय हैं ।

दशमभाव- इस भाव में मकर राशि का उदय होता है और इस राशि पर शनि का प्रभाव होता है । इस के भावकारक ग्रह रवि, गुरु, शनि और बुध ये चार ग्रह माने गये हैं । नवमस्थान में यदि योगी आत्मज्ञान प्राप्त करने में सफल होता है, तो वह किसी गिरिगुफा में पड़ा रहता है । जब तक योगी पुरुष विदेही स्थिति प्राप्त नही कर लेते तब तक उन्हें कर्म करने ही पड़ते हैं । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- "तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगी विशिष्यते ।" अर्थात्- उन दोनों मे भी कर्मों का संन्यास और निष्काम कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है । "एवंज्ञात्वाकृतं कर्म पूर्वेरपिमुमुक्षुभिः । कुरुकर्मेवतस्मात्वं पूर्वेः पूर्वतरं कृतम् ॥" अर्थात् पहले होने वाले मुमुक्षु पुरुषों द्वारा भी इस प्रकार जान कर ही कर्म किया गया है, इस से तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये हुए कर्म को ही कर । ज्ञानी पुरुष कर्म तो करते हैं किन्तु उन से अलिप्त रहते हैं । इसीलिए इस भाव में कर्मयोग का विचार करना चाहिए । योगि का पूर्वजन्म, संन्यासयोग, बाह्यकर्म, वैराग्य संतोष, आकाश धारणा, मुद्रा में विपरीत कर्णी, उत्कटासन, वृक्षासन, मकरासन धैर्य, आस्तिक बुद्धि, मायामोहपटल आदि बातों का विचार इस स्थान में करना पड़ता है । इहा मूत्रार्थ फलभोग विरागः ॥

गर्भ की प्रसूति इसी माह में होती है । इस माहपर रवि का प्रभाव होता है । स्वामी विवेकांनद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी श्रद्धानंद और आद्य आचार्य श्री शंकराचार्य आदि महापुरुष कर्मयोगी थे, जिन्होने ज्ञानोत्तर कर्म करने के पश्चात् समाधि ली थी । महामना श्रद्वेय पण्डित मदन मोहन मालवीय जी इस युग के कर्मयोगी थे । इस स्थान के अधिपति भगवान श्रीकृष्ण हैं ।

लाभभाव- इस भाव में कुंभ राशि का उदय होता है। और इस राशिं पर शनि का प्रभाव होता है। इस का भावकारक ग्रह शुक्र माना गया है। योगी को कर्मयोग का आचरण करते हुए व लोगों को सदुपदेश देते हुए एवं धर्म का प्रसार करते हुए राजयोग का अभ्यास करना पड़ता है। राजयोग का अर्थ होता है सहज समाधि लगाने का अभ्यास, बिना कष्ट से साध्य करना; अर्थात् दूसरे शब्दों में राजयोग का, कर्मयोग का आचरण करते-करते योगबल द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जैसे लोगों ने मठ बांधकर देना, द्रव्य देना व सर्व प्रकार के योगक्षेम चलाना। इस को ज्योतिष शास्त्र में राजयोग कहते हैं। इस भाव में वासनाक्षय, लोभ, यशस्विनी आदि का विचार करना पड़ता है। इस भाव की अधिपति देवी लक्ष्मी जी है।

व्यय भाव- इस भाव में मीन राशि का उदय होता है। जिस पर गुरु का प्रभाव होता है। इस भाव का भावकारक ग्रह शनि माना गया है। मैंने मीन राशि का अधिपतित्व राहू को दिया है। (प्रस्तुत लेखक का "ग्रहण विचार" देखिये)। योगी योगाभ्यास करते-करते जब सब प्रकार की वासनाओं का त्याग करते हैं तब उन की शरीर पर तनिक भी आसक्ति नहीं रहती। वे विदेही स्थिति को प्राप्त होते हैं अर्थात् शरीर रहते हुए भी शरीर के विषय में किसी प्रकार की सुधबुध नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ जहाँ बैठ गये वहीं बैठे रहे, खाना खाया तो खाया नहीं तो नहीं खाया। जन्मजात पागल और विदेही योगी इन में अन्तर यही है कि जन्मजात पागल अज्ञानी होते हैं और विदेही योगी- ज्ञानी। इस भाव में कोई भी योगी पुरुष विदेही स्थिति को प्राप्त होगा अथवा नहीं, लययोग, भक्तियोग, निर्गुण साक्षात्कार, ईश्वर प्रणिधान, मुमुक्षुत्व, इड़ा नाड़ी, चंन्द्रामृत, पाशिनी मुद्रा, नभोमुद्रा, मत्स्यासन आदि का विचार किया जाता है। राजा जनक विदेही योगी हो गये हैं। इस भाव के अधिपति भगवान् महाबीर जी हैं।

***

परिच्छेद पन्द्रहवाँ

द्वादश भावस्थित ग्रहों का फलादेश

प्राचीन काल से भारत वर्ष में जितने भी साधु-सत्पुरुष हो गये हैं वे सब कर्क, वृश्चिक,धनु और मीन इन चार लग्नों में से किसी एक लग्न के पाये जाते हैं। उपर्युक्त चार लग्नों के अतिरिक्त जो भी सत्पुरुष मिलते हैं उन्हें अपवाद समझना चाहिए। अतएव उपर्युक्त केवल चार लग्नों को लक्ष्य करते हुए द्वादश भाव स्थित ग्रहों का फल आगे दिया जा रहा है। इन चार लग्नों के अतिरिक्त दूसरे लग्न वाले साधु पुरुषों के विषय में भी यह फलादेश न्यूनाधिक प्रमाण में लगाने में कोई खास हर्ज नहीं है।

यम स्थान (लग्न)

इस स्थान में कर्क अथवा वृश्चिक राशि में रवि हो तो स्वभाव अभिमानी, पूर्वायुष्य अर्थात ५२ वर्ष तक निर्लोभी, माया रहित और निष्प्रेम रहता है। ५२ वर्ष के बाद स्वभाव लोभी और क्रोधी बनता है। केवल धन एकत्रित करने की इच्छा होती है और तदनुसार ही उस से कार्य भी होते हैं। किन्तु इन के क्रोधी स्वभाव का दूसरों पर कुछ भी असर नहीं होता। अधिक शिष्य बनाने की इन की इच्छा नहीं होती। जीवन में उन्हें एकाध शिष्य तो अवश्य बनाना पड़ता है। वह शिष्य बिलकुल निष्क्रिय होता है। ये लोग आत्मविश्वासी, दृढ़निश्चयी,मितभाषी और उदार होते हैं। इन में दैवी चमत्कार दिखलाने की इच्छा प्रबल होती है। इस के विरुद्ध लग्न में धनु अथवा मीन राशि में रवि हो तो स्वभाव निर्लोभी, प्रेमी, उदार, क्रोधरहित तथा सामान्य लोगों को उपदेश देने की प्रबल इच्छा वाला होता है। इस प्रकार के महानुभाव अपने मत प्रचार के लिए शिष्यों की वृद्धि करते है। इस प्रकार पंथ निर्माण कर अपना उद्दिष्ट कार्य सिद्ध करते हैं। इन में स्वाभिमान होता हैं किन्तु व्यर्थ स्वाभिमान नहीं। इन कें मन में दैवी चमत्कार दिखलाने की इच्छा नहीं होती। हमेशा ऊँचे विचार तथा सादगी से रहना यह इन की विशेषता है। Plain living and high thinking

यह कहावत उन्हें ठीक लगती है। माया और मोह से ये परे होते हैं। ज्ञानवान होते हुए भी इनका व्यवहार अज्ञानियों का सा होता है। अर्थात् अपने ज्ञान को रोचकता से प्रदर्शन करने की इन में प्रवृत्ति नहीं होती। हमेशा जागृत रहकर न्याय और अन्याय की छानबीन किया करते हैं। ये हमेशा प्रसन्न वदन रहते हैं और इसीलिए इन के पीछे लोगों की भीड़ लगी रहती है।

इन के ज्ञान तथा स्वभाव के कारण मोहित हो कर लोग इन के पीछे पड़े रहते हैं। इन की आज्ञा का लोग सदैव स्वेच्छा से पालन करते हैं। मीन लग्न वाले लोगों में प्रेम और भक्ति का अधिक प्रमाण रहता है। अतएव इन्हें शीघ्र ही विदेही स्थिति प्राप्त हो जाती है। धनु लग्न वाले लोग हमेशा जागृत रहते हैं। धनु लग्न वाले लोगों को मान-अपमान, सर्दी गर्मी,तथा सुख-दुख आदि समान होते हैं। "अभयंसत्वसंशुद्धीर्ज्ञान योग व्यवस्थिती। दानंदमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ तेजः क्षमा घृति शौचम् अद्रौहोनाति मानिता। इस प्रकार का स्वभाव होता है।

लग्न में चन्द्र रहा तो- स्वभाव बड़ाही प्रेमी, लोगों को प्रेम से वश करने में तत्पर, कभी कुछ अंश तक लोभी तथा सात्विक होता है। कर्क और वृश्चिक लग्न वालों के बारे में उच्च पद से नीचे गिरने का योग रहता है। पूर्व जन्म में इन लोगों द्वारा कुछ तपश्चर्या की होती है और इस जन्म में उनका स्वभाव ऐषो आराम, शांति से खा-पी कर मजा करने वाला होता है; और इसीलिए इनका अन्त में अधःपतन (Downfall) होता है। धनु और मीन लग्न वाले शान्त, परिश्रमी, एकान्त प्रिय, स्त्रियों से दूर रहने वाले तथा किसी से लेन-देन न रखनेवाले होते हैं।

लग्न में मंगल रहा तो- ये लोग योगीश्वर होते हैं। मंगल कर्क अथवा वृश्चिक लग्न में हो तो स्वभाव बहुत क्रोधी ओर शाप देने की इच्छा वाला होता है। प्राचीन कालीन शाप देनेवाले ऋषि-मुनि मंगल के अमल वाले थे। इन लोगों की वृत्ति उन्मत रहती है। इन का स्वभाव राजगुरु बनने योग्य होता है। यें बड़े ही उदार तथा त्यागी होते हैं। किसी

भी वस्तुका अधिक संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं होती। शिष्य न बनाना मठादि की स्थापना न करना, सदा इधर-उधर घूमते रहना आदि इन में अधिक प्रमाण में पाया जाता है।

लग्न में बुध रहा तो- स्वभाव शान्तचित्त, हर दम भक्ति में लीन, सदा आंनदी किसी भी काम को सोच कर करने की वृत्ति, सामान्य लोगों को वेदान्त का उपदेश देने की इच्छा तथा बड़े-बड़े ग्रंथ लिखने की प्रवृत्ति इन में अधिक प्रमाण में पायी जाती है।

लग्न में गुरु रहा तो- कर्क और वृश्चिक लग्न वालों की इच्छा हमेशा शिष्यों की संख्या में वृद्धि करने की होती है। पंथों का निर्माण तथा उपदेश देने की इच्छा भी इन में अधिक होती है। इस लग्न वाले महात्मा किंचित अहंकारी किन्तु शान्त स्वभाव वाले होते हैं। धनु और मीन लग्न वाले ज्ञानी, तेजस्वी और शान्तचित्त वाले होते हैं। ये लोग 'अभयंसत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थिति। दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्, इस प्रकार के गुणों से युक्त मिलते हैं गुरुपदेश देना, लोगों पर प्रेम करना; यह इन का मुख्य कर्तव्य होता है। कर्क, वृश्चिक और धनु लग्न वाले विशेषतः लोगोपयोगी काम अधिक करते हैं। कर्क वृश्चिक वाले लोग अधिकतर घूमते रहते हैं। किन्तु धनु और मीन लग्न वाले लोग स्थिर रह कर काम करते रहते हैं। धनु और मीन लग्न वाले नित्य आनंदी, माया-मोह से रहित, अहिंसा और सत्य स्वभाव वाले होते हैं।

लग्न में शुक्र रहा तो- कर्क और वृश्चिक लग्न वालों की कुंडली में शुक्र लग्न में हो और शुक्र के समीप रवि ग्रह न हो तो पूर्वायुष्य में ये लोग साधु महात्मा के नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं। किन्तु उत्तरायुष्य में मोह में पड कर स्त्रीलंपट तथा द्रव्य लोभी हो जाते हैं। इन की उपासना समाधि लेने तक चलती है। किन्तु वही शुक्र धनु और मीन लग्न में हो तो माया, मोह, स्त्री अथवा द्रव्य के वशीभूत न होते हुए ये लोग पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं। इन की वृत्ति हमेशा आनंदी होती है। प्रेमी, मधुरभाषी और परोपकारी होना इन की विशेषता है।

लग्न में शनि रहा तो- कर्क और वृश्चिक लग्न वाले लोग कभी-कभी

दूसरों में नहीं मिलते। पूर्वायुष्य में छोटी सी लंगोटी लगा कर रहते हैं, भिक्षा माँग कर जमीन पर सोते हैं, दूसरों को स्वयं के ज्ञान का पता न चले इसलिये ये बड़ी ही गंदी अवस्था में रहते हैं। कभी-कभी जंगलो में जा कर गुफाओं में रहते हैं। उत्तरायुष्य में दुनिया अपनी भूल को स्वीकार करती है और इन्हें ज्ञानी समझने लगती है। ज्ञानी हो कर भी पागलों का सा व्यवहार करते हैं। इस प्रकार इन की दैनंदिन क्रिया विचित्र ही रहती है। धनु और मीन लग्न में शनि रहा तो इन की वृत्ति बालकोचित होती है। हमेशा अस्थिर अर्थात् इधर-उधर घूमते रहते हैं।

लग्न में राहू रहा तो- जिन लोगों के लग्न स्थान में राहू, कर्क अथवा वृश्चिक राशि में है वे लोग सिद्धि-सामर्थ्य प्राप्त कर अपनी शक्ति लोगों के समक्ष बतलाते रहते हैं और इस प्रकार वे स्वयं का प्रचार किया करते हैं। सिद्धि प्राप्त करने का इनका उद्देश्य केवल ख्याति प्राप्त करना ही होता है। यही राहू, धनु और मीन राशि में हो तो पिशाच्च वृत्ति उत्पन्न करता है।

शनि और राहू ये दोनों ग्रह पूर्ण वैराग्य उत्पन्न करते हैं। माया और मोह को नष्ट करते हैं। इस प्रकार के साधु-महात्माओं से राष्ट्र तथा समाज को कुछ भी लाभ नहीं होता। केवल एक शिष्य बना कर ये लोग अपने उद्धारार्थ चल बसते हैं।

लग्न में नेपच्यून रहा तो- इस योग के लोग ज्ञानी होते हैं। तथा भक्ति उपासना का प्रचार करते हैं। कभी-कभी दूसरों के स्वप्नों में जा कर दृष्टांत देते हैं, विश्वबंधुत्व का भाव, प्रेमी और देवता दर्शन रूप होते हैं, अंतर्ज्ञान प्रदान करने वाले तथा दूसरों के मनोविकारों को शीघ्र समझने वाले होते हैं।

हर्षल ग्रह लग्न स्थान में रहा तो क्या फल मिलता है इस विषय में मेरा निजी कुछ भी अनुभव नहीं है, अतएव इस ग्रह का फलादेश बतलाने में मैं असमर्थ हूँ।

जब शनि, राहू, मंगल, रवि और नेपच्यून इन ग्रहों का अधिक असर होता है और शेष ग्रह निष्फल होते हैं, तब मनुष्य महात्मा बन कर संसार से विरक्त हो कर चारों ओर भ्रमण किया करता है। सांसारिक कामनाओं पर विजय पा कर शरीर वासनारहित हो जाता है। इन्हें आत्मसाक्षात्कार होता है और ये स्वयं पूर्ण परब्रह्म हो जाते हैं। जिन का लग्न कर्क और

वृश्चिक है वे योगाभ्यासी होते हैं और जिन का लग्न धनु और मीन है उन्हों ने पूर्व जन्म में योगाभ्यास के द्वारा ज्ञान संपादन किया हुआ होता है। फिर भी इस जन्म में उन्हें ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती ही है।

लग्न में रवि, मंगल हो तो शरीर की तन्दुरुस्ती सूचित करता है। किन्तु शनि और राहू लग्न में हो तो जन्म के शेष कष्ट इस जन्म में बुढ़ापे की अवस्था में भोगने पढ़ते हैं। इन की वृद्धावस्था कष्टमयी होती है।

कुछ मनुष्य अपने पूर्व जन्म के पुण्यकर्मों के फलानुसार इस जन्म में भी श्रेष्ठ साधु-महात्मा के नाम से ख्याति प्राप्त करते हैं। इस ख्याति को 'अनेक जन्म संसिद्धः'' कहा जा सकता है। दूसरे इस प्रकार के साधु महात्मा भी होते हैं जो कि इसी जन्म में अपने प्रयत्नों के बलपर प्रख्यात हो जाते हैं। किन्तु इन के विषय में संपूर्णतः ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि इन का स्वभाव अन्त तक एक सा पवित्र ही रहेगा। इन की प्रवृत्ति संसार में किस समय आसक्त हो जायेगी, यह कहा नहीं जा सकता। पहले प्रकार के सन्त पूर्व पुण्यों की प्रबलता के कारण कभी भी पथभ्रष्ट हो कर संसार में नहीं फँसते। पहले प्रकार के सन्तों में गोस्वामी तुलसीदास जी, कबीर दास, स्वामी रामदास, ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम एकनाथ, श्रीमत् ब्रह्मचैतन्य गोंदावलेकर महाराज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंदे तथा काशी के तैलंग स्वामी आदि हैं।

इस प्रकार शनि और राहू का ज्ञान और भक्ति पर अमल होता है और रवि-मंगल का शरीर पर असर पड़ता है। जो पूर्वजन्मार्जित पुण्यों के बल पर साधु होते हैं, उन की कुंडली में धन स्थान अर्थात् द्वितीय स्थान, पंचम स्थान, दशम और व्यय अर्थात् बारहवें में स्थान में पाप ग्रह रहते हैं। जिन का कर्क अथवा वृश्चिक लग्न रहता है वे लोग कुछ पूर्वजन्मों के और कुछ इस जन्म के सुकर्मों के बल पर महात्मा बन जाते हैं। परंतु धनु और मीन लग्न वाले अपने पूर्वकृत सुकर्मों के बल पर महात्मा बन कर पूर्णत्व को प्राप्त करते हैं! गोस्वामी तुलसीदास जी तथा भगवान् रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ भक्तियोगी तथा ज्ञानयोगी थे। इन का

लग्न मीन था। स्वामी विवेकानंद, ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदावलेकर धनु लग्न के ज्ञानी थे, इस प्रकार लग्न स्थान का विवेचन पूर्ण हुआ। लग्न में धनु और मीन राशि में रवि, मंगल, शनि, राहू रहा तो सहस्त्रार और आज्ञा चक्र प्रबल रहते हैं, शेष राशि में नहीं।

नियम स्थान (धन स्थान)

जिस प्रकार संसारी लोगों के विषय में इस स्थान से संपत्ति, परिवार की व्यवस्था का बोध होता है; इसी प्रकार साधुमहात्माओ का परिवार तथा सम्पत्ति का ज्ञान भी इसी स्थान से हो सकता है।

कर्क और वृश्चिक लग्न वालों की कुंडली में धन स्थान में सिंह या धनु राशि आयेगी। अगर इन दो राशियों में इस स्थान में रवि हो तो पूर्वायुष्य में तपश्चर्या से कुछ षड्साधन सम्पत्ति प्राप्त करने का योग होता है। उत्तरायुष्य में ये लोग मठ बाँध कर रहते हैं। और उपार्जित धन अर्थात् षड् साधन सम्पत्ति खो देते हैं। इस प्रकार ये लोग अज्ञानी होते हैं। यह धन ग्रहण करना अनुचित है। यह जानते हुए भी लोभवश धन ग्रहण कर लेते हैं। धन का उपभोग प्रारंभ होते ही उन की दैवी सम्पत्ति का नाश हो जाता है। सिद्ध वाणी के कारण लोग इन के पीछे पीछे घूमते रहते हैं। "नारायण तेरा भला करेगा ! नारायण तुझ को आनन्द देगा !! इत्यादि आशीर्वाद देते हैं आधिभौतिक तथा आधिदैविक ताप से पीड़ित जनता के रोग हरण करते हैं, लड़के देते हैं, नौकरी दिलवाते हैं अथवा धन देते हैं। इस प्रकार का इन का व्यवहार कुछ समय तक जनता में चलने के पश्चात इन के पास भी धन संग्रह बढ़ने लगता है और कुछ ही दिनों के बाद इन का राज सी ठाट बाट तथा खाना-पीना जारी हो जाता हैं। यहाँ इन का राजयोग शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे इनके पास धन का संग्रह बढ़ने लगता है वैसे-वैसे इन का पूर्वाजित दैवी धन संग्रह अर्थात् षड्साधन सम्पत्ति नष्ट होने लगते हैं। वाणी सिद्धि भी धीरे-धीरे चल बसती है और शनै-शनै अधःपतन होने लगता है। परंतु यही रवि, मेष और मकर राशि में हों तो ये लोग अपनी षड्साधन सम्पत्ति का खूब जतन करते हैं। वाणी सिद्धि का खूब सोच कर और कंजूसी से उपयोग करते हैं। यतयो भोग

संग्रहात् अर्थात भोग करते ही यतियों का नाश होता है, इस सिद्धान्त को उपर्युक्त लोग भली प्रकार जानते हैं और संसारिक धन से अलिप्त रहते हैं। इन की आत्मा बड़ी ही प्रबल और तेजस्वी होती है। धन स्थान में मंगल ग्रह हो तो उपरिनिर्दिष्ट किया हुआ फल मिलता है। इसी प्रकार मेष और मकर राशि के शनि-राहू इस स्थान में रहें तो वे साधु पुरुष बड़ी ही सावधानी से व्यवहार करते हैं। पूर्वकर्मानुसार विपुल धन प्राप्त होने पर भी गुरु के बतलाये हुए भक्ति मार्ग पर ही नित्य चला करते हैं। त्यागी वृत्ति से रह कर अपनी दैवी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं। कभी-कभी इन लोगों में प्रापंचिक भी मिलते हैं। जिन्हें बालबच्चे आदि सभी सांसारिक चीजें प्राप्त रहती हैं किन्तु इन का मूल ध्येय कदापि छूट नहीं पाता। अपनी सिद्धि वाणी का भूल कर भी उपयोग नहीं करते, केवल भक्तिमार्ग का उपदेश करते रहते हैं। कर्क और वृश्चिक लग्न के महात्माओं की कुंडली में धन स्थान में रवि, मंगल शनि और राहू रहा तो वे नियमों का पालन नहीं करते। धनु और मीन लग्न वाले महात्माओं की कुंडली में धन स्थान में अर्थात् मकर और मेष के रवि, मंगल शनि और राहू हो तो बहुत ऊपर तक बढ़ जाने के कारण नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं समझते और इस प्रकार समझते हुए भी वे नियमों का परिपालन नही करते

धन स्थान से विशुद्ध चक्र का योग भी देखा जाता है। धनु और मीन लग्न वालों के धनस्थान में रवि-मंगल होने से विशुद्ध चक्र बड़ा प्रबल रहता है, अतएव इनकी वाणी बहुत ही मोहक होती है। शनि अथवा राहू रहा तो विशुद्ध चक्र थोड़ा सा नरम गरम रहता है।

आसन मुद्रा स्थान (तृतीय स्थान)

इस स्थान में आसन और मुद्रा का ज्ञान होता है। कन्या अथवा मकर राशि का रवि या मंगल इस स्थान में हो तो आसन और मुद्रा सहज प्राप्त हैं। परंतु शनि अथवा राहू के रहते हुए थोड़ा परिश्रम और विलम्ब से साध्य होने का योग है। इन्हें किंचित् अहंकार होता है। आयु के ४० साल तक तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं। ४० वर्ष के बाद एक स्थान पर स्थिर हो कर रहते हैं। दूसरे साधु-महात्माओं से अधिक मिलना जुलना इन्हें पसन्द नहीं आता। दूसरों से अधिक बातचीत करना भी इन्हें नहीं सुहाता। जन समुदाय पीछे पड़ा रहता है किन्तु इस प्रकार के महात्मा किसी

पर उपकार करना नहीं जानते। स्वयं का उद्वार करने के बाद इस संसार से चल बसते हैं। कुंभ अथवा वृषभ राशि इस स्थान में हो तो ये लोग पूर्वजन्म के योगाभ्यासी अर्थात् Born योगाभ्यासी रहते हैं। इस जन्म में आसन, मुद्रा वगैरह करने की आवश्यकता नहीं होती। ये लोग स्वयंभू और पूर्ण होते हैं। दूसरों पर बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ता है। हमेशा दूसरों को मदद पहुँचाते हैं। दान देना, प्रवास करते-करते प्रवचन करना यह इन का मुख्य काम हैं। धनु लग्न वाले लोग स्थायी कार्य करते हैं। किन्तु दूसरे लग्न वाले साधुओं का कार्य केवल उन के जीवन तक ही रहता है। उन के शरीर छोड़ने पर उन का समूचा कार्य भी नष्ट हो जाता है। ये प्रवास अधिक करते हैं।

प्राणायाम स्थान (चतुर्थ स्थान)

इस चतुर्थ स्थान से प्राणायाम का बोध होता है। तुला या कुंभ राशि का रवि, मंगल इस स्थान में हो तो ये महात्मा की कठिंन तपस्या और पंचाग्नि साधन करते हैं। इन को प्राणायाम साध्य करने में बड़ी तकलीफ होती है, कारण इन के प्राणायाम से कुंभक साधन करने में देरी लगती है। गुरु जितना बतलायेगा उतना ही ये लोग करते रहते हैं। वृद्धावस्था बड़ी ही आनंदमय बीतती है। किन्तु इस स्थान में शनि और राहू रहे तो प्राणायाम शीघ्र साध्य होता है। पूर्वायुष्य में केवल कौपीन धारण किए हुए विचरते रहते हैं, किन्तु उत्तरायुष्य में मठ स्थापन कर एक ही स्थान पर रहा करते हैं। इन के बहुत से शिष्य होते हैं। ऐश्वर्य भोग प्रारंभ होते ही द्रव्य मोह उत्पन्न हो जाता है। अतएव वृद्धावस्था में वासनाओं में लिप्त हो जाते हैं ओर इसीलिए इनकी मृत्यु शांति पूर्वक नहीं होती। मृत्यु काल का ज्ञान भी इन के पास नहीं रह पाता। इस प्रकार ये अज्ञानावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

इसी स्थान में अगर मीन अथवा मिथुन राशि का रवि, मंगल हो तो प्रखर ज्ञानी और तेजस्वी रहते हैं। मठ न बाँधना, स्थिर न रहना, वैराग्य पूर्ण विचरते रहना, मोह के वश न होना तथा अनासक्त रहना इत्यादि इन के स्वभाव के प्रमुख अंग होते हैं। इन की वृद्धावस्था शान्तिमय व्यतीत होती है।

इन्हें अपने मृत्युकाल का ज्ञान होता है। जब इन का मृत्यु काल समीप आ पहुँचता है, तब ये दूसरों को सूचित कर देने के पश्चात् बड़ी ही शान्ति के साथ जीवित समाधि ले लेते हैं। इस स्थान में शनि, रवि, मंगल रहा तो अनाहत चक्र प्रबल रहता है। शेष ग्रहों से निर्बल रहता है।

प्रत्याहार और शिष्यस्थान (पंचम स्थान)

इस स्थान में प्रत्याहार और शिष्य बनाने के योग का बोध होता है। इस स्थान में रवि, मंगल, शनि अथवा राहू इन में से कोई भी एक ग्रह हो तो पूर्व जन्म से ही प्रत्याहार पूर्ण हो कर आता है, कारण वे लोग मूलतः माया मोह रहित होते हैं। सांसारिक व्यक्ति की कुंडली में पंचम स्थान में ये ग्रह रहे तो स्वभाव बड़ा ही दुष्ट और निष्प्रेम होता है। किन्तु साधु-महात्माओं के विषय में इंस का मतलब इस नश्वर जगत पर प्रेम न करना तथा स्वयं के शरीर पर भी प्रेम न करना होता है और इसी से ये लोग माया मोह रहित होते हैं। इन का एकाध शिष्य होता है। कर्क, वृश्चिक लग्न वाले महात्मा अपने शिष्यों से भी प्रेम नहीं करते। परन्तु धनु और मीन लग्न वाले साधु अपने शिष्यों पर बहुत ही प्रेम करते हैं। उपर्युक्त महात्मा अपने शिष्यों से पुत्रवत् प्रेम करते हैं। पंचम स्थान में गुरु का निवास अधिक शिष्यों का होना बतलाता है। ऐसे महात्मा मठ और पंथ की स्थापना करते हैं।

धारणा स्थान (षष्ठ स्थान)

इस स्थान से धारणा का योग देखा जाता है। मेष अथवा धनु राशि का रवि अथवा मंगल का इस स्थान में होना उत्तम धारणा और स्थिर चित्त का होना बतलाता है। शनि अथवा राहू के होने का मतलब यह है कि धारणा थोड़े समय के बाद नष्ट हो जायेगी। मंगल ग्रह अभ्यास का कारक होने से राहू की युति में रहा तो अभ्यास गलत होता है। "अयुक्ताभ्यास योगेन सर्व रोग समुद्भवः ॥"

शनि, रवि अलग रहे तो योगाभ्यास पूर्ण होता है। अगर इन दो ग्रहों से चन्द्र की युति हो तो पूर्वायुष्य में तनिक शारीरिक बीमारी भोगनी पड़ती है। युवावस्था में ये लोग कुछ नहीं कर सकते। वृद्धावस्था में बवासीर

खांसी, दमा आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं। कहीं तो दुष्ट रोग की बीमारी भी देखने में आयी है। वृषभ राशि का शनि योगाभ्यास पूर्ण नहीं होने देता। मंगल, रवि और राहू ये ग्रह योगाभ्यास पूर्ण करने देते हैं। सिंह राशि इस स्थान में हो तो कोई भी ग्रह योगाभ्यास करने देता है। परंतु राहू का एक विचित्र फल यहाँ पर मिलता हैं, वह यह कि बहुत प्रकार के विचित्र स्वप्न हमेशा पड़ते रहते हैं। इस स्थान में पापग्रह रहने से मणिपूर (Solar plexus) चक्र बड़ा प्रबल रहता है, शुभ ग्रहों से नहीं।

ध्यान स्थान (सप्तम स्थान)

धारणा के बहुत काल तक रहने को ध्यान कहते हैं। ध्यान दो प्रकार के होते हैं। पहला निर्गुण परब्रह्म का और दूसरा कुछ सगुण देवताओं का ध्यान। शनि और रवि ये ग्रह निर्गुण उपासना का ध्यान बतलाते हैं और मंगल सगुण मूर्ति का ध्यान बतलाता है। राहू पहले निर्गुण उपासना का ध्यान करते-करते सगुण मूर्ति की भक्ति करने में रूपान्तर होना बतलाता है, इसलिए मकर और वृषभ राशि में मंगल तथा राहू रहा तो सगुण मूर्ति का ध्यान बहुत अच्छा होता है। शनि, रवि रहे तो यह सगुण ध्यान पूर्ण नहीं हो पाता। मिथुन और कन्या राशि में शनि- राहू का होना निर्गुण ध्यान का बहुत अच्छा होना बतलाता है। रवि, मंगल रहे तो सगुण मूर्ति का ध्यान अच्छा नहीं होता। इस स्थान पर गुरु, शुक्र चंद्र रहने से स्वाधिष्ठान चक्र ऐहिक दृष्टि से प्रबल रहता है और पापग्रहों से पारमार्थिक दृष्टि से यह चक्र प्रबल होता है।

समाधि स्थान (अष्टम स्थान)

इस स्थान में समाधि अवस्था का विचार किया जाता है। संमाधि दो प्रकार की होती है। प्रथम प्रकार की निर्विकल्प समाधि कहलाती है तथा दूसरे प्रकार की समाधि को सविकल्प समाधि कहते हैं। रवि और मंगल सविकल्प समाधि बतलाते हैं। शनि और राहू निर्विकल्प समाधि बतलाते हैं। मिथुन और कुंभ राशि इस स्थान में हो तो सविकल्प समाधि और कर्क अथवा तुला राशि का होना निर्विकल्प समाधि का योग दर्शाता है।

रवि अथवा मंगल ग्रह मिथुन अथवा कुंभ राशि में रहने में सविकल्प समाधि अच्छी लगती है। परन्तु इन ग्रहों का कर्क अथवा तुला राशि में होना सविकल्प समाधि अच्छी न लगने का योग सूचित करता है। किन्तु शनि और राहू के विषय में केवल यह नियम है कि निर्विकल्प समाधि किसी भी राशि में होते हुए भी भली प्रकार लगा सकते हैं। रवि, मंगल शनि और राहू ये चार ग्रह इस स्थान में रहने से अपनी मृत्यु का ज्ञान प्राप्त करा देते हैं। कई महात्मागण भूमि में जीवित समाधि लेते हैं। कई अग्निकाष्ठ भक्षण कर के समाधि लेते हैं और कई जलसमाधि लिया करते हैं। जो योगाभ्यासी महात्मा होते हैं इन की आयुमर्यादा का निर्णय ज्योतिष शास्त्र कदापि निश्चित नहीं कर सकता, कारण योगाभ्यासी महात्मा की मृत्यु, उन के स्वाधीन होती है तथा स्वेच्छापर निर्भर करती है। इस स्थान पर शनि,राहू, रवि, मंगल रहा तो मूलाधार चक्र बड़ा प्रबल रहता है। शुभ ग्रहों से कम ताकतवान होता हैं। पाप ग्रहों से कुण्डलिनी बड़ी तेज होती है। शुभ ग्रहों से उतनी तेजस्वी नहीं होती। इसी कारण से कई महात्मा बड़े तेजस्वी और अधिक ज्ञानी तथा कई महात्मा कम तेजस्वी होते है।

सद्‌गुरु या ज्ञान स्थान (नवम स्थान)

योगाभ्यास पूर्ण होने के बाद इस स्थान से जो ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् जो ज्ञान आत्मज्ञान के नाम से जाना जाता है, उस नाम का और गुरु का बोध होता है। इस स्थान में गुरु और राहू न हों तो शेष सब ग्रह निष्फल हो जाते है। भाग्येश जिस राशि स्थान में हो उस राशि की दिशा से आध्यात्मिक गुरु मिलते हैं। गुरु मेष, सिंह, धनु पूर्व दिशा। वृषभ, कन्या, मकर दक्षिण और मिथुन, तूला, कुंभ पश्चिम। कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का उत्तर दिशा का गुरु कर्मवान और ज्ञानवान मिला देता है। वे तत्वज्ञानी होते हैं। स्वयं को गुरुत्व प्राप्त करा देते हैं। बहुत से शिष्य बनाते हैं। पंथ की स्थापना कर के उसे आगे चलाना, ज्ञान और दान देना वगैरह काम करते हैं। अगर इस स्थान में राहू रहा तो महावीर के भक्ति की आवश्यकता पड़ती है। सिंह राशिमें गुरु रहा तो ज्ञानी गुरु मिलता है।

वह पूर्व दिशा का होना चाहिए। नीचे अलग-अलग सभी ग्रहों की भक्ति और उपास्य देवता दिये गए हैं।

रवि, चंद्र --भगवान् शंकर की उपासना करनी चाहिए !

मंगल, बुध --पुरुष राशि का मंगल हो तो भगवान् गणेश और स्त्री राशि का मंगल हो तो देवी माता जी

गुरु -- दत्तात्रेय।

शुक्र -- पुरुष राशि में शुक्र हो तो श्रीकृष्ण और विष्णु भगवान्। स्त्री राशि में शुक्र होने से काली, चण्डी चामुण्डा तथा दुर्गा वगैरह की उपासना करनी चाहिए।

शनि-- राम उपासना, राहू-- मारुती की उपासना } निर्गुण ब्रह्म की उपासना

शनि- मंगल युति, मंगल के पीछे शनि अथवा शनि-मंगल प्रतियोग--श्रीराम और मारुती की उपासना करनी चाहिए।

शनि, राहू-- मारुती की उपासना

पूर्वजन्म में श्री भगवान् शंकर जी की भक्ति की हो तो इस जन्म में भगवान् श्रीराम की भक्ति करनी होगी। यदि पूर्व जन्म में भगवान् श्रीराम की भक्ति की गयी हो तो इस जन्म में श्री शंकर जी की भक्ति करनी पड़ती है। पूर्वजन्म में यदि भगवान् विष्णु की भक्ति की गयी हो तो इस जन्म में गुरु दत्तात्रेय की भक्ति करनी होगी।

कर्म स्थान (दशम स्थान)

ज्ञानवान होने के बाद महात्मा लोग कौन सा क्रियाकर्म करते हैं यह इस स्थान से जाना जाता है। इस स्थान में शनि, राहू, नेपच्यून और गुरु इन तीन ग्रहों का केवल फल मिलता है। कन्या अथवा मेष का शनि दूसरों को ज्ञान देना और शिष्य सम्प्रदाय बढ़ा कर अपने मत का प्रचार करना इत्यादि काम करता है। ये मठादि की स्थापना नहीं करते। इन का दूसरों

पर खूब प्रभाव पड़ता है। ये लोग पूर्ण विरागी, माया-मोह रहित, निर्गुण उपासक होते हैं। इस स्थान में राहू या नेपच्यून रहा तो निष्काम-कर्मयोग से चलते हैं। सिंह का शनि जिन महात्माओं की कुंडली में दशम स्थान में है वे महात्मा ज्ञान प्राप्त होने पर किसी प्रकार का भी कार्य न करते हुए केवल बैठे रह कर आराम से जीवन व्यतीत करते हैं। इन में जनता को चमत्कार दिखलाने की आदत दृढ़ हो जाती है। धनु राशि का शनि महात्माओं को भक्ति मार्ग में लीन कर विदेही स्थिति में ले जाता है। इन के कभी कभी एक अथवा दो शिष्य होते हैं। चारों राशियों में राहू रहा तो फल एक सा ही मिलता है। स्वयं ज्ञानी बनने के पश्चात् जनता की सेवा करना, इसे ही अपना धर्म समझना, मोहवश न होना इत्यादि इन के प्रमुख लक्षण हैं। इन चारों राशियों में गुरु होने से महात्मा लोग " नारायण तेरा भला करेगा " इत्यादि आशीर्वाद दे कर लोगों से बहुत सा धन एकत्रित कर मजे से खाते बैठते हैं। इन के हाथों कोई भी स्थायी कर्म नहीं हो पाता। इन का कोई भी शिष्य नहीं होता, अतएव समाधि लेने के बाद मठ की गद्दी के हक दारों में झगड़े खड़े होते हैं।

राजयोग स्थान (लाभ स्थान)

इस स्थान में राजयोग का ज्ञान होता है। राजयोग दो प्रकार के होते हैं। सद्य परिस्थिति से अच्छी परिस्थिति में पहुँचना यह पहला प्रकार है; दूसरा प्रकार "क्षये संकल्प जालस्य जीवो ब्रह्मत्व माप्नुयात्" के अनुसार मन को धीरे-धीरे मायावी संसार से पृथक कर वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात् सभी प्रकार की कल्पना का लोप हो जाता है। इस स्थान पर वृषभ, कन्या, तुला और मकर का शनि हो तो पूर्वायुष्य में दूसरे प्रकार का राजयोग देता है और उत्तरायुष्य में प्रथम प्रकार का राजयोग देता है। किन्तु इन सारी अवस्थाओं में भी मन पूर्ण वैराग्य युक्त रहता है। राहू और गुरु इन चारों राशियों में रहने से महात्मा लोग उच्च परिस्थिति में आ जाने का योग है।

भक्ति या विदेही स्थान (व्यय स्थान)

भक्तियोग का ज्ञान इस स्थान से होता है। इस स्थान में चारों में से किसी भी राशि में शनि रहा तो प्रथम ज्ञान और बाद में भक्ति का पट

खुल जाता है । राहू और मंगल की जोड़ी रही तो सामर्थ्य, वैभव और भक्ति के योग रहते हैं । इस स्थान में गुरु का फल नहीं मिलता । इस स्थान में पापग्रह होना आवश्यक है, कारण पापग्रह होने से मोक्ष मिलता है । शुभ ग्रह मोक्ष नहीं देते । इस स्थान के स्वामी भगवान् महावीर जी है ।

आज तक आर्यावर्त में बहुत से भक्तियोगी महात्मा हो गये हैं । उन में से भगवान् हनुमान जी सर्वश्रेष्ठ भक्तियोगी रहे हैं । इसीलिए इन का नाम सदा के लिए अमर हो गया है और ये देवत्व को प्राप्त हो गये हैं । यहाँ यह शंका होती है कि हनुमान जी के गुरु कौन थे? अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीकृत रामायण में इस विषय की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है । विज्ञ पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे मेरी शंका का निवारण करने में मुझे सहायता करें ।

***

परिच्छेद सोलहवाँ

ग्रहयोग फल

महात्माओं की कुंडली में निम्नलिखित ग्रह मिलते हैं --

प्रथम योग- शनि और चन्द्र युति दशम स्थान में बहुत ही अच्छा फल देती है। इस युति का सप्तम स्थान में थोड़ा कम फल मिलता है। सप्तम से कम लग्न में और लग्न से कम फल चतुर्थ स्थान में मिलता है। यह युति पूर्ण वैराग्य सूचित करती है। मायामोह का पूर्ण नाश होता है। वह मनुष्य निश्चयी, निग्रही और एकाग्र चित्तवाला होता है। प्राप्त परिस्थिति में समाधान मानने वाला, दयालु तथा प्रेमी स्वभाव बनता है। माता की मृत्यु बचपन में ही हो जाती है। इस प्रकार की मृत्यु न हुई तो पिता के पश्चात् माता की मृत्यु होती है। माता की अनुपस्थिति में भाग्योदय होता है।

द्वितीय योग- रवि, शनि युति चारों केन्द्र त्रिकोण अथवा धन स्थान में हो तो परिणाम दीर्घायुष्य तथा आत्मा प्रबल बनती है। इस युति का अधिक अधिकार शरीर पर होता है। स्वभाव निर्भय और तेजस्वी बनता है। यह युति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करवाती है। शीतोष्ण में तथा मानापमान से न घबरानेवाला स्वभाव बनता है। इस योग में गुरु द्वारा आत्मसाक्षात्कार हो कर ज्ञानयोग प्राप्त होता है। पिता की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो जाती है या पितृपश्चात् भाग्योदय होता है।

तृतीय योग- तीसरा योग अर्थात् शुक्र-शनि युति का है। इस योग में स्वजातीय युवती से विवाह हो कर उस स्त्री से होने वाली संतान से दारिद्रय का संचार होता है। काम काज में शिथिलता आ कर दिवाला निकलता है। आधिदैविक और आधिभौतिक बहुत से कष्ट उठाने से संसार में वैराग्य निर्माण होता है। स्त्री-पुरुष दोनों में से कम से कम एक व्यभिचारी होता है। इस योग के लोग हरदम साधु-महात्मा होने के लायक

होते हैं। ऊपर दिये हुए तीन योगो के बिना दूसरे किसी भी ग्रहयोग में वैराग्य निर्माण करने का गुणधर्म नही हैं।

चतुर्थ योग- ऊपर दिये हुए तीनो योगों को छोड़ कर एक और योग होता है, वह है गुरु शुक्र युति का। इस युति का फल ऐसा होता है कि मनुष्य अलौकिक बुद्धिमान, अध्यात्मज्ञानी तथा वेदान्तज्ञानी, वादविवाद पटु दयालु और प्रेमी होते हैं। ये ग्रहयोग बहुत से महात्माओं की कुण्डली में विपुलता से पाये जाते हैं।

❋❋❋

परिच्छेद सतरहवाँ

पूर्व जन्म कर्म संशोधन

पूर्व जन्म के अंत में याने मृत्यु के समय जो वासनाएँ या इच्छाएँ अतृप्त रहती हैं, वे वासनाएँ अथवा इच्छाएँ पूर्ण करने के लिए फिर से जीवमात्र को जन्म लेना पड़ता है । इसलिए अंतिम वासनाओं का और इच्छाओं का सूक्ष्म विचार करना याने इच्छाएँ तथा वासनाएँ कौन सी थीं औंर किस लिये थी इस का विचार करना जरूरी है । सब से प्रथम यह ध्यान रखने योग्य बात है कि मनुष्य प्राणी जो भी कर्म भोगता है वे कर्म आठ प्रकार के होते है । इन आठ कर्मों को अलग-अलग ग्रहों में निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है ।

कर्म प्रकार पहला– इसे पूर्वजन्म कर्म कहते हैं । यह कर्म जीवात्मा को भोगना पड़ता है । इस कर्म पर शनि का प्रभाव रहता है ।

कर्म प्रकार दूसरा– इसे घराने का कर्म कहते हैं । अँग्रेजी में इस को Hereditary Estate कहते हैं । हिंदू तत्वज्ञान के मुताबिक यह शरीर परदादा, दादा, पिता, परदादी और माता इन सब के रक्त से बना हुआ होने से उन सब के कर्मो का असर अपने शरीर पर होता है । महाभारत में शांति पर्व में धर्मराज भीष्म पितामह से अपनी एक शंका पूछते हैं कि -"हे पितामह, एक आदमी बहुत पापकर्म करता है तो भी उस पापकर्म का फल उस आदमी को नहीं भोगना पड़ता, ऐसा क्यों ?" इस शंका का निवारण करते हुए भीष्म पितामह ने उत्तर दिया कि "हे धर्मराज, पापकर्म कृत किंचित यदि तसिन्न दृश्यते। नृपतेतस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपिच नप्तृषु ॥" याने ज़ो आदमी पापकर्म करके भी उस पापकर्म के अनिष्ट फल भोगने का भागी नहीं होता यह बात यद्यपि सत्य है तो भी वे खराब फल नष्ट नहीं होते और उन खराब फलों को उस के पुत्र पौत्रादि कों को भोगना पड़ता है । इस कर्म को आनुवंशिक कर्म भी कहते है । इस कर्म पर राहू

का प्रभाव रहता है। जब कुंडली में राहू अनिष्ट रहता है तब घराने में कोई न कोई जीव खराब काम किया हुआ रहता है। इस को Family Trait भी कह सकते हैं।

उदाहरणार्थ - महारोग, श्वेत कुष्ठ, आधा सिर दुखना वगैरह जो रोग होते हैं वे सब रोग वंश परंपरासे चले आते हैं और उन को आनुवंशिक रोग कहते हैं।

कर्म प्रकार तीसरा - इस में उन कर्मों का समावेश होता है जो कि पिता ने किये फल लड़के को भोगना पड़ता है। इस प्रकार के कर्मों पर रवि ग्रह का प्रभाव होता हैं।

कर्म प्रकार चौथा- इस में उन कर्मों का समावेश होता है जो कि माता ने किये फल लड़के को भोगना पड़ता है। इस प्रकार के कर्मों पर चंद्र का प्रभाव होता है।

कर्म प्रकार पाँच - इस जन्म के पत्नी के संबंध में जो-जो अच्छे या बुरे कर्म पूर्व जन्म में अपने हाथ से हुए उन सब कर्मों का समावेश इस प्रकार में होता हैं। इन कर्मों पर शुक्र ग्रह का प्रभाव रहता हैं।

कर्म प्रकार छठवाँ - इस में अपनी संतति के और अपने खुद के परस्पर हुए और होने वाले संबंध तथा कर्मों का समावेश किया जाता है। इन कर्मों पर गुरु ग्रह का प्रभाव रहता है।

कर्म प्रकार सातवाँ - इस में अपने इष्टमित्रों के कर्मों का समावेश किया गया है। इन संगति कर्मों पर बुध का प्रभाव रहता है। अगर बुध अच्छा रहा तो साधु-महात्माओं की संगति होती है और उद्धार होता है। परंतु बुध खराब रहा तो नीच लोगों की संगति में लगकर आदमी गिर जाता है और इस दुनिया की इनसानियत से गिर पड़ जाता है।

कर्म प्रकार आठवाँ - इस को भूमि कर्म कहते हैं यानेे जिस- जिस भूमिं से अपना संबंध आता है उस-उस भूमि पर हुए और होने वाले कर्मों को इस में अंतर्भूत करते हैं। इन कर्मों पर मंगल ग्रह का प्रभाव रहता है। अगर कुंडली में मंगल शनि से शुभ योग करता है तो जिस मकान में रहते हैं या जिस खेती को बोते हैं उस से भाग्य उदय होता हैं। परंतु

अशुभ योग रहने पर भाग्य नष्ट हो जाता है। ऊपर दिये हुए कर्मों को आठ प्रकार में विभाजन कराके हर एक कर्म पर किस-किस ग्रह का प्रभाव है यह बताया गया। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि मनुष्य को इस जीवन में इन सब कर्मों को भोगना पड़ता है और वह भोगने के दो मार्ग हैं। पहला मार्ग शरीर द्वारा और दुसरा मार्ग जीवात्मा द्वारा।

पूर्वजन्म के कर्म का संशोधन करने के पहले यह बता देना अच्छा होगा कि जो मनुष्य पूर्वजन्म से सच्चा साधु बनने आता है उसकी कुंडली में शनि यह ग्रह वृषभ, कन्या या मकर इन राशियों में से किसी भी एक में होना चाहिए। इन तीन राशियों को उत्पात राशि कह सकते हैं। इन राशियों की हमेशा Destructive Policy रहती है। इन राशियों में से किसी भी एक राशि में शनि रहा तो पूर्व जन्म से ही संसार अच्छा नहीं होता। विवाह नहीं होता, अगर विवाह हो गया तो संतति नहीं होती। विवाह हो कर संतति भी हो गई तो दारिद्रय योग रहता है। सिवाय वैराग्य उत्पन्न करना यह प्रधान धर्म होता है। परंतु कर्क,वृश्चिक अथवा मीन इन तीनमें राशियो में किसी से एक में शनि रहा तो प्रपंच और परमार्थ दोनों भी साध्य होते हैं। ये लोग पूर्वजन्म से ही साधु बन कर आते हैं। मेष, सिंह,धनु, मिथुन तुला और कुंभ इन राशियों मे शनि रहा तो पूर्वजन्म से महात्मा बन कर नहीं आते किंतु इन जन्म में महात्मा बनने का ये लोग प्रयत्न करते हैं। यह नियम कभी-कभी अपवाद रूप में देखने में आता है।

अब हम पूर्वजन्म के कर्म का संधोधन किस प्रकार करना चाहिए यह बताते हैं। इस संशोधन का नियम ऐसा है कि कुंडली में जिस स्थान में जिस राशि में शनि हो उस राशि को लग्न में लिख कर कुंडली को रखना चाहिये। उदाहरणार्थ नीचे हम कुंडली लिख कर उससे किस प्रकार फल बता सकते हैं यह दर्शाते हैं। जन्म शके १८१३ माघ शुक्ल सप्तमी सह अष्टमी, सूर्योदयात् इष्ट घटी ५६ ता. ६-२-१८९२ को ४ बज के २० मिनिट पर सबेरे बेलगांव (अक्षांश १५-५२ रेखांश ७४°-५०) में हुआ, पलभा ३-२६ लग्न धनु, अंश २५।

चालू जन्म कुंण्डली

१० र. बु.
८ मं.
११ गु.शु.
९
७ ह.के.
१२
६ श. (वक्री)
१ रा.
३
५
२ चं ने.
४
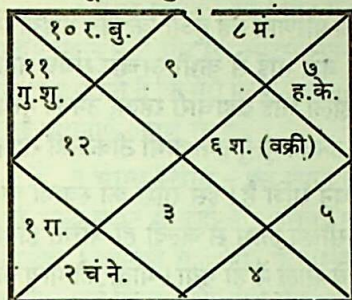
पूर्व जन्म कुण्डली
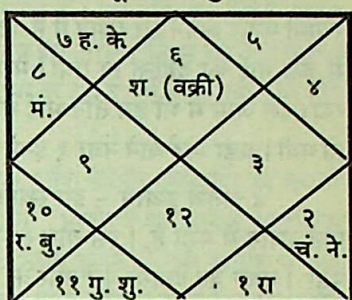
लग्न मे कुन्या राशि होकर शनि वक्री है। यह शनि पंचमेश और षष्ठेश होता है। कन्या लग्न के लोग व्यापारी होते हैं। बड़े ऑफिसों में लिपिक या पोष्ट ऑफिस में और रेल्वे, म्युनिसिपाल्टी में बड़े बाबू रहते हैं। इन लोगों का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं। "सुखं सुविद्या रति मंत्र सिद्धिः ।। शास्त्रणि जानाति सुकर्मकारी । रागांडःयुक्त खलु विष्णु भक्तः ।। याने ये लोग शास्त्र जाननेवाले, अच्छा कर्म करनेवाले, मंत्र से सिद्धि प्राप्त करनेवाले और विष्णु के भक्त होते हैं । शनि षष्ठेश होने से षष्ठेशे सप्तमें लाभे लग्ने वा पशुमान भवेत। धनवान गुणवान मानी साहसी पुत्र वर्जितः ।। याने यह आदमी पशुमान,धनवान,गुणवान, मानी, साहसी और पुत्र रहित होता है। इस कन्या लग्नवाले लोग अधिकारी स्वभाव वाले, बहुत कामी और किसी पर भी विश्वास न रखनेवाले ऐसे होते है । लग्नस्थान में शनि होने से पिताकी मृत्यु बाल्यावस्था में होने का योग बताता है । पिता के देहान्त के समय उमर २ वर्ष की थी। मै जात से ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण था , इसलिए बाल्यावस्था एक ब्राह्मण के घरपर बितानी पड़ी। लग्न स्थान का शनि युवावस्था तक बहुत कष्ट देता है।

२ धन स्थान - इस स्थान में तुला राशि उदित है। इस राशि का स्वामी शुक्र षष्ठ स्थान में है। बापदादाओं की संपूर्ण इस्टेट चाचा तथा अन्य लोगों ने उड़ाकर खत्म कर दी। इसके बाद मेरे देहान्त होने तक मैंने पैसा संग्रह नही किया। तात्पर्य यह हुआ कि मैं इस जन्म में दरिद्री पैदा हुआ ।

३ तृतीय स्थान - इस स्थान में वृश्चिक राशि उदित है। इस राशि का स्वामी मंगल अपने स्व स्थान में है । इसका परिणाम यह हुआ कि तीन भाईयों में से बड़े भाई का देहान्त हो गया। मेरा मेरे बड़े भाई से कभी अच्छा संबंध नही रहा। इस जन्म में भी हम तीन भाई थे। मझला भाई ब्रह्मचारी रहकर उनकी मृत्यु हो गयी। बड़ा भाई याने नंबर १ इनमे मेरा उनकी मृत्यु तक कभी ठीक नही रहा।

४ चतुर्थ स्थान - इस स्थान में धनु राशि है। इस राशि का स्वामी गुरु षष्ठ स्थान में पड़ा है । इस योग से मातृ सौख्य लाभ से जल्दी ही वंचित होना पड़ा । माता का देहान्त मेरी उमर के २० वें साल में हो गया। माता की मृत्यु के बाद मुझे नाथपंथी गुसाई बनकर वन में जाकर एक नदी किनारे रहना पड़ा।

५ पंचम स्थान - इस स्थान में मकर राशि है और इस राशि का स्वामी शनि लग्न में वक्री है। फल यह हुआ कि मेरी शिक्षा अधुरी रह गई । जिस ब्राह्मण के घर में रहता था उसी के यहां ज्योतिष शास्त्र का थोड़ा बहुत अभ्यास किया। लग्न कन्या है। इस लग्न का गुणधर्म ज्योतिषी बनने का है । इसके अलावा इसी स्थान पर रवि तथा बुध भी हैं । इस स्थान में बुध, षष्ठ स्थान में शुक्र, भाग्य स्थान में चंद्र-नेपच्यून इस प्रकार ग्रहयोग होने से ज्योतिष का अभ्यास हुआ। विवाह न होने से संतति होने का सवाल नहीं उठता । इसके बाद गुसाई बन गये किंतु कोई शिष्य नहीं बनाया।

६ षष्ठ स्थान - इस स्थान में कुंभ राशि उदित है। इस राशि का स्वामी शनि लग्न में है । इस स्थान में शुक्र और गुरु ये दोनों ग्रह संपूर्ण युति में हैं । इस योग से वैवाहिक जीवन नष्ट हो गया और स्त्री को बीमार बना दिया। इस स्थान का शुक्र ज्यादा स्त्रीलंपट होना बताता है ।

७ सप्तम स्थान- यहाँ मीन राशि उदित है और राशि का स्वामी गुरु षष्ठ स्थान में हैं । इस गुरु के साथ शुक्र होने से विवाह नहीं हुवा। 'जायेशे चाष्टमे षष्ठे सरोषा कामिनी भवेत् । क्रोध युक्तो भवेत् वापि न सुखं लभते क्वचित् ।' इस योग का परिणाम आगे सिलसिलेवार दिखाया है ।

८ मृत्यु स्थान- इस स्थान में मेष राशि है । इस राशि का स्वामी मंगल तृतीय स्थान में है और इस अष्टम स्थान में मेष इस अग्नि राशि में राहू है । ये सब योग यह बताते हैं कि मेरी मृत्यु दुर्घटना से उमर के ३६ वे वर्ष में हो गयी और मेरी कुछ वासनाएँ अपूर्ण रह गई ।

९ भाग्य स्थान - इस स्थान में वृषभ राशि है और इस राशि का स्वामी शुक्र षष्ठ स्थान में पड़ा है । इसका परिणाम "भाग्येशो मारकस्येषु जातभाग्य निरर्थकं । भाग्येशे मातुलेरिः फे भाग्यहीनो भवेद् ध्रुवम।" इस श्लोक में कहे अनुसार पूर्ण मिला । मेरे हाथ से न पूर्ण प्रपंच हुआ और न परमार्थ हुआ । याने मतलब यह हुआ कि मैं भाग्यहीन हो गया । इस नवम स्थान पर चंद्र और नेपच्युन भी हैं यह युति ज्योतिषियों को भविष्यवेत्ता बनाती है । ईश्वर की भक्ति कराती है और साक्षात्कार भी होता है । थोड़ा थोड़ा योगाभ्यास भी शुरु था ।

१० कर्म स्थान - इस स्थान मे मिथुन राशी है । मिथुन राशी का स्वामी बुध पंचम स्थान में है। इस योग के कारण अध्ययन और अध्यापन का कार्य हुआ। ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन चल रहा था परंतु इसी वक्त मेरे गुरु की मृत्यु होने से मुझे मठाधिकारी बनना पड़ा ।

११ लाभ स्थान - इस स्थान में कर्क राशि का स्वामी चंद्र भाग्य स्थान में है । इस योग से यह मालूम पड़ता है कि ज्योतिषशास्त्र का पूरा ज्ञान मिलाकर इस शास्त्र में पूरे संसार में नाम प्रतिष्ठित होने की इच्छा अपूर्ण रह गई ।

१२ व्यय स्थान - इस स्थान में सिंह राशि का स्वामी रवि पंचम स्थान में है । इसका परिणाम याने मरने के पहले मै जिस स्त्री-व्यसन में पड़ा था, वह व्यसन मृत्यु तक नहीं छुटा और लोग विरोधक बना । मठ खाली हो गया ।

योग विचार

अब इस पूर्वजन्म की कुंडली में जो ग्रहों के योग हुए हैं वह नीचे देता हूं ।

योग पहला - शनि, बुध और चंद्र ये तीनों ग्रह नवपंचम योग करते है । इस योग का फल बुद्धि में शुद्धता और पवित्रता, दृढ निश्चयी, न्याय और अन्याय की बराबर छानबीन करना और उसे ठीक समझना । हरएक बात के अंततक जाकर उस के सूक्ष्म भागों को जानने की कोशिश करना ।

योग दूसरा - मेरा आयुष्य जो इतना खराब हो गया, उसका कारण निचे लिखा हुआ योग है । चंद्र नेपच्यून भाग्य स्थान में और मंगल तृतीय स्थान में है । जब मेरी उपासना जोरोंसे चल रही थी और मैं योगाभ्यास कर रहा था तब याने मेरी उमर के २८ वर्ष के करीब आगे दिया हुआ किस्सा हो गया । एक पड़ोसी गाँव की पतिव्रता युवती मेरे स्थापन किये हुये भगवान् महावीरजी के दर्शन और पूजा के लिए रोज आया करती थी । एक दिन मठ में कोई नही था, यह मौका पाकर मैने उस स्त्री पर जुलूम बलात्कार किया और उसे भोग लिया । दुर्दैववश उसी वक्त एक अन्य स्त्री आई और उसने यह सब तमाशा देखा और गाँव में जाकर पूर्ण वृत्तांत उस पतिव्रता युवती के पति को सुना दिया। परंतु उस गाँव के किसी भी आदमी में मुझे शासन करने की ताकत न थी । गाँव वाले मुझ से डरते थे; इसी कारण वे मेरा कुछ भी न बिगाड़ सके । हाँ इतना जरुर हुआ कि उस स्त्री के पति ने अपनी स्त्री को घर से बाहर निकाल दिया । जब मुझे वह बात मालूम हुई तो मैने उस स्त्री को अपने मठ में ला कर रख लिया । मेरी कामेच्छा पूर्ण करने में वह इन्कार किया करती थी । इससे चिढ़कर मैं उसे मारता पीटता था और दो-तीन दिन तक खानेपीने के लिए कुछ भी न दिया करता था । इन यन्त्रणाओं से पीड़ित हो कर बेचारी मुझे रोज शाप दिया करती "अगले जन्म में मै तुम्हारी पत्नी बनकर आऊंगी और इसका बदला चुकाऊंगी । तुम्हें भी इसी तरह खाने को कुछ भी न मिलेगा । और न स्त्री सुख ही प्राप्त होगा" एक दिन लड़की के माँ बाप को इस बात का पता चल गया । वे लोग मेरे पास आकर मुझ से लड़की वापस ले जाने के लिए कहने लगे । मै चुपचाप लड़की को अपने गाँव ले आया और वहाँ उसको अपने अधीन रखा । परन्तु वहाँ भी लड़की के माँ बाप पता लगाते हुए आ पहुँचे और गाँव के पटेल की सहायता से लड़की को

वापस ले गये पर साथ ही यह कहते गये कि वे लड़की का बदला अवश्य ही चुकायेंगे ।

चंद्र-मंगल युति और प्रतियोग में बलात्कार संभाव्य है ।

योग तिसरा - धनेश शुक्र और सप्तमेश गुरु- ये दोनों पापी ग्रह छठवे स्थान में पड़े हैं जो कि अशुभ फल देनेवाला स्थान है। यही कारण है कि मेरा विवाह न हो सका और फलतः मुझे स्त्री सुख नहीं मिला । यह युति संन्यासी और वेदान्तियों की ही है । इस प्रकार से मैने पूर्वजन्म में अगले जन्म के लिए निम्नलिखित संचित कर्म किया । (१) दो आदमियों की दुश्मनी मोल ली, (२) एक साध्वी स्त्री का शाप, (३) उपासना और योग मार्ग का त्याग ।

यहाँ तक मैंने पूर्वजन्म का वृत्तांत कन्या लग्न से शनि कुंडली से बतलाया अब यह देखना है कि इस जन्म की कुंडली से पूर्वजन्म की कुंडली किस तरह मिलती-जुलती है । इस जनम में मेरा जन्म लग्न धनु है; पिछले जन्म का लग्न कन्या। कन्या लग्न ज्योतिषियों का है और धनु लग्न वाले जन्मजात ज्योतिषी (Born astrologers) होते है। इन दोनों लग्नो में समान गुणधर्म मौजूद है । कन्या लग्न के लोग जिस प्रकार से आजन्म अविवाहित रह सकते हैं उसी तरह धनु लग्न के लोग भी अविवाहित रह सकते हैं । मेरा विवाह हुआ था किन्तु मेरी स्त्री का स्वर्गवास शीघ्र ही हुआ । इस के बाद मैंने दूसरी शादी नहीं की । कन्या लग्न उपासनावादी है किन्तु धनु लग्न ज्ञानवादी । इस प्रकार दोनों में समान गुणधर्म विद्यमान होने के कारण धनु-लग्न का स्वभाव पूरी तरह से मुझ में उत्तर आया है ।

धन स्थान - इस स्थान का अधिपति शनि वक्री होकर दशम स्थान में है । पूर्वजन्म में धनसंग्रह करने की कोशिश ही नही की थी फिर इस जन्म में पैसा कहाँ से प्राप्त होगा? इस स्थान में रवि, बुध ये दोनों ग्रह आर्थिक कठनाइयों को दर्शाते है । पूर्वजन्म में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन करने की कोशिश की, उसका फल इस जन्म में प्राप्त हुआ । यही कारण है, बचपन से ही ज्योतिषशास्त्र की ओर मेरा ध्यान लग गया है । और इसी शास्त्र का मैंने परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया। इस योग के प्रभाव से पारिवारिक सुख कम प्राप्त होता है

और वाणी में सच्चापन आता है ।

तृतीय स्थान - पूर्वजन्म कुण्डली में इस स्थान में मंगल और भाग्य स्थान में चन्द्र-नेपच्यून हैं । पूर्वजन्म में हम तीन भाई थे । उनमें से सबसे बड़े की मृत्यु हुई । बड़े भाई में और मुझ में मेलजोल बिलकुल ही न था । इस जन्म की कुण्डली में तृतीय स्थान में गुरु, शुक्र और शनि वक्री है । इस जन्म में भी हम तीन भाई थे, उनमें से मुझ से बड़े भाई की मृत्यु हो गई । सबसे बड़े भाई की मृत्यु ३ सितम्बर, १९३३ को हुई । दोनों भाईयों में अनबन बनी रहती थी ।

चतुर्थ स्थान - पूर्व जन्म की कुंडली में इस स्थान में धनु राशि है और उसका अधिपति गुरु छठवें स्थान में है, जिसका नतीजा यह हुआ कि मातृसुख नहीं मिला । इस जन्म की कुंडली में इस स्थान में मीन राशि उदित है और भावेश गुरु तृतीय स्थान में याने दुःस्थान में है, जिसका फल यह हुआ कि इस जन्म में मातृसुख अंत्यल्प मात्रा में प्राप्त हुआ क्यो कि माँ मेरी उम्र के ४३ वें साल में स्वर्गलोक चल बसी । पिछले जन्म में जायदाद नहीं बनाई और इस जन्म में भी मैं जायदाद न बना सका ।

पंचम स्थान - पिछलें जन्म में इस स्थान में मकर राशि उदित है । और शनि वक्री लग्न में है । एवं इस जन्म में इस स्थान में मेष राशि उदित है और भावेश मंगल व्ययस्थान में है । इसी कारण सन्तान नहीं हुई । किन्तु पिछले जनम में लग्नेश बुध पंचम स्थान में और पंचमेश शनि लग्न में है । इस जन्म मैं पंचम स्थान में राहू होने के कारण ग्रन्थ का निर्माण मेरे हाथों से हो सका । पंचम स्थान कें राहू के प्रभाव से ही चिकित्सा बुद्धि प्राप्त हुई ।

षष्ठ स्थान - पिछले जन्म में इस स्थान में गुरु, शुक्र होने के कारण एक स्त्री कई लोगों की दुश्मनी मोल लेनेका कारण हुई, क्योंकि सप्तमेश भाग्येश छठवें स्थान में थे । इस जन्म में ये ही गुरु और शुक्र तृतीय स्थान में होने के कारण विवाह होने के बाद जिन्दगी दर्द भरी कहानी हो गई, क्यो कि स्त्री के साथ जीवन सुख से न बीत सका ।

सप्तम स्थान - पिछले जन्म में सप्तमेश छठवें स्थान में होने के कारण

किसी भी प्रकार का उद्योग धन्धा मुझ से न हो सका । इन जन्म में भी यही हाल रहा है । पूर्वजन्म में जिस स्त्री के साथ मेरा दुर्व्यवहार हुआ था, वही स्त्री इस ज़न्म में मेरी पत्नी हो कर आई । यह स्त्री भी जल्द ही स्वर्गलोक चल बसी ।

अष्टम स्थान - पिछले जन्म में अष्टमेश तृतीय स्थान में और अष्टम स्थान में राहू होने के कारण केवल ३६ वर्ष की आयु मिली थी । इस जन्म में चन्द्र षष्ठ स्थान में उच्च का होने कारण आयु की मर्यादा अधिक वर्ष की होगी और मृत्यु उच्च अवस्था में होनी चाहिए । किन्तु वृषभ यह जंगली राशि होने के कारण मृत्यु जंगल में होना चाहिए ।

नवम स्थान - पिछले जन्म में इस स्थान में चन्द्र और नेपच्यून की युति है जिससे यह पता चलता है कि हम पूर्वजन्म में नाथपंथीय हनुमान जी की उपासना किया करते थै । इस जन्म में यह युति छठवें स्थान में होने के कारण उपासना की और प्रवृत्ति नहीं है; हाँ ईश्वर के बारे में स्वप्न में आभास जरुर मिलता है । इस जन्म में तीर्थयात्रा बहुत कर चुका हूँ ।

दशम स्थान - पिछले जन्म में दशमेश पंचम स्थान में है, इसलिए ज्योतिषशास्त्र में पारंगत होने की कोशिश की थी । इस जन्म में धनस्थान में रवि बुध आने के कारण ज्योतिष शास्त्र विषयर्क २४ ग्रन्थ अभीतक मैंने लिखें है और अभी बहुत कुछ लिखना बाकी है । इस योग का फल याने पितृसुख उम्र के ४१ वर्ष तक प्राप्त हुआ है । किन्तु उनसे अब तक न बनी रही क्योंकि इस जन्म में दशम स्थान में शनि है। दशम स्थान में शनि होने के कारण क्या फल प्राप्त होते है, इस विषय में चमत्कार चिंतामणिकार लिखते है- ''अजातस्य माताः पिता बाहुरेव'' । मुझे माता का दूध न मिल सका इसलिए मेरा पालनपोषण बकरी के दूध पर हुआ है ।

लाभ स्थान - पिछले जन्म में लाभेश चन्द्र भाग्य में होने के कारण ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग से कोई लाभ न हो सका । इस जन्म में लाभेश शुक्र तृतीय स्थान में होने के कारण हानि हुई है, लाभ नहीं ।

व्यय स्थान - पिछले जन्म में व्ययेश पंचम स्थान में है । इस जन्म में पचंम स्थान में राहू होने के कारण बुढ़ापे में ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग से कुछ लाभ

अवश्य होना चाहिए । पिछले जन्म में जेल में नही गया था किन्तु इस जन्म में मंगल व्ययस्थान में होने के कारण जेल में जाना पड़ा ।

योग - विचार

इस जन्म में निम्नलिखित ग्रहयोग पाये जाते हैं ---

पहला महत्व का योग - पंचम स्थान में राहू, व्यय स्थान में मंगल दशम स्थान में शनि ओर छठवें स्थान में चन्द्र-नेपच्यून । इस योग के कारण किसी भी प्रकार का धन्धा न हो सका । पूर्वजन्म में किसी एक स्त्री पर बलात्कार करने से और उसके अभिशाप के कारण स्त्री सुख बिल्कुल ही प्राप्त नही हुआ। अन्न वस्त्र के लिए मुहताज रहना पड़ता है । किन्तु इसी योग के कारण ज्योतिषशास्त्र पर ग्रन्थ लिखकर हिन्दुस्थान में नाम होना चाहिए । इसी तरह ईश्वर -प्राप्ति के लिए हर प्रकार के प्रयत्न चालू रहने चाहिए ।

Rising sign Sagittarius is in 25th degree "A man in a balloon with the dark clouds beneath him" Denotes an experimentalist, an investigator of impounderables one whose life will abound with trials but success will ultimately crown his labour.

Sun in Capricorn in 24th degree " A man struggling in a lake only the head out sometimes the head appears to sink under but it rises again and again until at last a lifebuoy is thrown to him by a person witnessing his position finally he is saved" Denotes one who will always be in trouble through debt always involved, always on the verge of bankruptcy finally by some unlooked for and unexpected "Gôd-Send" he or she delivered.

Mercury is in 5th degree- "A very small unpretentious window in the wall of a massive tower"

Donotes one whose native powers and mental resources are so great and abondant that the native will be independent of his external aids and will feel ever happy amidst the offspring of his own genious. Further such persons will never seek display; these are creators not imitators.

Moon is in 2nd degree of Taurus " A large figure 2 comes before my vision' Denotes that he born under this degree will live alone.

Mars is in 15th degree of Scorpio "Around temple with pointed roof" Denotes a person partial to the outward observances of religious rites; very superstitious regarding its mysteries.

Jupiter & Venus are in 30th degree of Aquarius "A sceptre surrounded by a crown' Denotes one who will rise to distinction and offices of great powers and influence. He will disply capacity for government and rulership and however humble his origin; will speedily attain to a foremost position in his own sphere and may successfuly attempt even greater heights than many of his predecessors and contemporaries In mind he will show himself to be rigid strict upright and unbending in his intery. His affections although by no means warm are yet sincere and constant and his ambitions are compassed by the one word Authority.

Saturn is in 12th degree of Virgo - 'Several figures of eight in row thus : 8 8 8 8 8 8 8 8. Thus you see the square of eight' Denotes a man or woman of mystery; a lover of mystical, a sutdent of mystical, a secretive

person, a profound understanding he will leave for himself a name a history.

Rahu is in 30 degree of Aries 'A horseman armed as if for battle is watching the waning moon.' It denotes a person of an independent domineering nature who will be forsaken by his friends and colleagues on that account and whose fortunes will be severely hurt by a female. Serving himself alone he will not receive assistance. "The dog and his bone are belt left alone.' It is the degree of Isolation.

Neptune is in 11th degree of Taurus- 'A man seated on thrown holding a sceptre crowned and with signs of wealth around him' Denotes one who if born wealthy will attain eminence by means of his care in the affairs of life. if born poor he will acquire both wealth and fame. The position will be due to his shrewdness rather than his integrity for the chief characteristic here is Watchfulness.

ऊपर दिया हुआ प्रत्येक ग्रहों के अंशों का वर्णन और उसका फलादेश है । ये मुझको अंशतः लगते है ।

Alan Leo नामक एक सुप्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथकार लिखते है कि धनु लग्न का तीसरा द्रेष्काण जन्मजात ज्योतिषियों (Born Astrologers) का निर्माण करता है । मेरी कुंडली में धनु लग्न का तीसरा द्रेष्काण है ।

C.E.O. Carter लिखते है कि जिनकी कुंडली में चन्द्र-नेपच्यून की युति होती है, वे जन्मजात ज्योतिषी होते हैं और उसे स्त्री सुखं प्राप्त नहीं होता । मेरी कुंडली में षष्ठस्थान में चंद्र-नेपच्यून की युति है ।

रतलाम के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी स्वर्गवासी महादेवजी पाठकजी ने अपने जातक ग्रंथ में 'ज्योतिर्विंद निपुणता योग' दिया है, जिसमें उन्होंने लिखा है- 'जिनकी कुंडली में धन और तृतीय स्थान में रवि, बुध और शुक्र इनका योग हो तो वे ज्योतिषियों में श्रेष्ठ होते है ।'

शनि के दशम स्थान में होने से भी ज्योतिषी होते है ।

इस प्रकार से मैने खुदकी कुंडली लेकर पूर्वजन्म के बारे में किस प्रकार अन्वेषण करना चाहिए, यंह स्पष्ट किया है । इसका कारण यह है कि किसी भी राष्ट्र के महान् क्रांतिकारक नेता लोग और महान साधु, सत्पुरुष, महात्मा पुरुष, एकही ग्रह योग में जन्म लेकर इस अवनीतल पर आते हैं ।

यह पूर्वजन्म कथन Dreams स्वप्न,भावना,क्रिया (Daily life) और वासना इस Natural instinct मार्ग से पृच्छक का सामाधान कर सकता है ।

❄ ❄ ❄
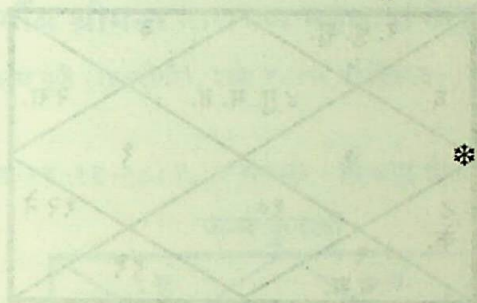
परिच्छेद अठारहवाँ

महात्माओं की कुंडलियों का विवेचन

बाबू अरविंद घोष (योगी)

जन्म तारीख १५-८-१८७२, सबेरे ५ बजे, जन्मस्थल कलकत्ते के नजदीक

जन्म कुंडली
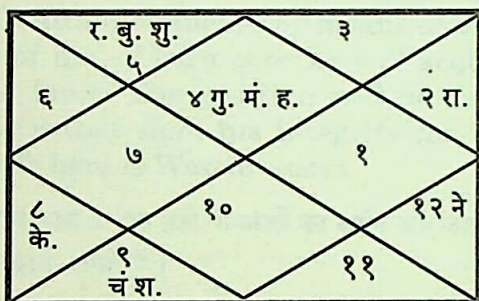
कर्क लग्न योगियों का लग्न है । इनके लग्न में कर्क का उच्च गुरु और नीच मंगल है । "जन्म लग्ने गुरुश्चैव रामचन्द्रवनागतः" यह कर्क के गुरु का वर्णन है । इस नियम के अनुसार इन्हें भी जीवन के अन्तिम दिनों मे पाँडीचेरी के

जंगलो में बसना पड़ा और इनका मंगल नीच होने कारण सारे हिन्दुस्थान में इनका नाम गूँजने लगा । धनस्थान में स्व राशि में रवि है और उसके साथ ही बुध व शुक्र भी है । इन्होंने प्रचुर लेखन कार्य किया है । अँग्रेजी में इन्होंने वेदान्तपर बहुत ही अच्छे ग्रन्थ लिखे है । ये योगी होते हुए राजयोगी हैं । रवि, बुध और शुक्र ये तीनों ग्रह यह दर्शाते है कि आप नियम और व्रतोंका कड़ा पालन करते हैं । साल में आप सिर्फ दो ही दिन लोगों को दर्शन देते हैं । छठवें स्थान में शनि व चन्द्र है। यह योग सरकारी नौकरी में बाँधनेवाला था किन्तु दैव योग से पाँडीचेरी में आत्मबंधन में ही रहे । लग्न में का मंगल हठयोगी होना चाहिए ऐसा बतलाता है, लेकिन इन्हों ने किस से दीक्षा ली, योगाभ्यास का गुरु कौन, अभ्यास पूरा होने के उपरान्त आत्मदर्शन हुआ या नही, आदिका वृत्तान्त विदित न होने के कारण इस विषय में कुछ लिखना असंभव है । ये योगी हैं ऐसी सारे हिन्दुस्थान में ख्याति है।

स्वर्गीय श्रीमन्त नारायण महाराज केड़गाँवकर

जिला पुणे (राजयोगी), शके १८०५ कार्तिक ३०, गुरुवार सूर्योदय के समय ।

जन्म तारीख २९-११-१८८२, जन्मस्थल - विजापुर जिले में बागलकोट ।

जन्म कुंडली

९ शु.
७ रा.
१०
८ र.बु. चं.
६ ह.
११
५
१२
२श.
४ गु.मं.
१ ने. के.
३
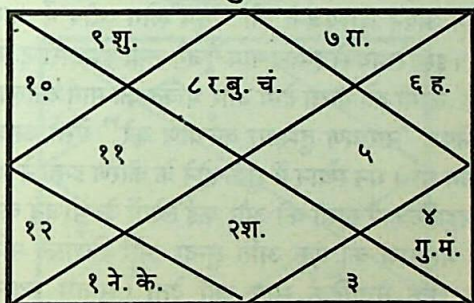
इनका जन्म वृश्चिक लग्न में हुआ है । वृश्चिक लग्न हठयोगी होने का लग्न होता है । लग्न में ही रवि-चंद्र हैं । ये वृश्चिक लग्न को राजयोग देते है, उसी तरह भाग्य में के गुरु-मंगल भी राजयोग देते हैं । यह राजयोग कारक योग नवपंचम स्थान से लग्न व नवमस्थान से हुआ है। इससे एकही बात स्पष्ट दिखाई देती है कि पूर्वजन्म में योगाभ्यास करते समय बीचमें ही अष्टसिद्धियाँ आ उपस्थित हुई। उनमें से एक क्षुद्र सिद्धि लेकर वापस लौंटे, इसलिए प्रस्तुत जन्म में उन्होंने राजा के समान ऐश्वर्य का उपभोग लिया है । रवि चन्द्र के सामने शनि होने के कारण बचपन में ही मां-बाप इन्हें छोड़कर परलोक सिधारे । ये कुछ दिनतक गाणगापुर में श्रीदत्त महाराजा की सेवा करते रहे किन्तु बाद मे आगे चलकर सन १९०५ के करीब पुणे जिले में केडगाँव नामक गाँव में एक छोटे से व्दीप के पास जाकर बसे ।

सन १९०५ के करीब अहमदनगर जिले में प्रवरा नदीके किनारे बेलापुर नामक एक गाँव है । इसी गाँव के जंगल में ब्रह्मीभूत विद्यानंद सरस्वती बेलापूरकर नामक एक महान् विभूति रहा करती थी । ये महाज्ञानी, हट्टेकट्टे, उंचेपूरे, अति तेजस्वी, (इनके समान तेजस्वी पुरुष फिरसे कभी आजतक देखने में नही आया है), वर्ण पूर्ण पके हुए कागजी नीबू के समान । इनके विषय में ध्यान में रखने योग्य खास बात यह है कि इनके शरीर से नैसर्गिक सुगंधि फैलती थी । ('सौगंधी योगिनो हे जायते बिन्दुधारणाात्' - हठयोगप्रदीपिका) इनका शिष्य सम्प्रदाय नेपाल तक फैला हुआ था । अपने समाधिस्थ होने के समय (सन १९०५ के करीब) इन्होंने अपने शिष्यजनों को "तुम लोग व्दीप में जाकर बसो" ऐसा आदेश दिया । इसी समय से इनका नाम गूँजने लगा । महाराष्ट्र में इनका शिष्यवर्ग काफी बड़ा हैं लोगों को दीक्षा देना और भक्ति का मार्ग बतलाना अथवा लोगो के कुछ पूछनेपर "नारायण तुम्हारा कल्याण करे" ऐसा आशीर्वाद देना यही इनका कार्यक्रम था । धन स्थान में शुक्र होने के कारण इन्हो ने प्रचुर धन कमाया; बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ खड़ी की और कई लोगों के भोजन का प्रबन्ध किया । साथ ही दत्त महाराज का एक अति सुन्दर और विशाल मन्दिर बांधा है । धनुराशि का शुक्र वैवाहिक सुख नहीं देता । सप्तम स्थान में वृषभ इस

उत्पात राशि में वक्री शनि होने के कारण और राहू व्ययस्थान में होने के कारण ये आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी बने रहे । ये खुद को विद्यानंद का शिष्य कहते हैं । राहू के सामने षष्ठ स्थान में नेपच्यून है । कई साल पहले ये खुले हाथ से 'जय गुरुदेव दत्त' कहकर तीर्थ देने का चमत्कार किया करते थे । भाग्य में गुरु-मंगल हैं । वृश्चिक लग्न में यह गुरु बहुत प्रबल होने के कारण श्री दत्त महाराज की उपासना करनी पड़ी । व्ययस्थान में राहू भक्ति मार्ग दर्शाता है । इन्होंने कोई अधिकारी शिष्य किया हुआ नहीं दिखाई देता । इसके कारण गद्दी के लिए झगड़े-बखेड़े उपस्थित होने की आशंका है । इनकी मृत्यु १-९-१९४५ को बंगलोर में ह्रदय क्रिया बंद पडने से हुई । महाराज की मृत्यु योग मार्ग से नहीं हुई, सामान्य मनुष्य की तरह हुई । इन्होंने अपनी मृत्यु के बाद भक्तगणों ने किसके पास जाना चाहिए, यह नही बताया है । अब देखना चाहिये कि इनकी गद्दी के लिए किन किन शिष्यो में झगड़े मचते हैं । विद्यानन्द महाराज ने आपका समाधि दिन दो साल पहले बताया था ।

इनकी कुंडली में एक भी ग्रहयोग पंचम, दशम और व्यय इन स्थानों में न होने के कारण पूर्णास्था को पहुंच न सके होंगे ऐसी मेरी समझ है ।

मेरे गुरु ब्रह्मी भूत सद्गुरु

ब्रह्मचैतन्य महाराज गोंदावलेकर

मुकाम- गोंदावले बुद्रक-जिला सातारा । (ज्ञानयोगी और भक्तियोगी)

जन्म - शके १७६६ माघ शुद्ध १२ बुधवार, रात्रि को ३ बजे ।

जन्म स्थल - गोंदावले,जिला सातारा ।

जन्मकुंडली

लग्न धनु । इस लग्न में धर्मसंस्थापक, ज्ञानी, सद्गुरु कायदे आजम क्रान्तिकारक, सुविख्यात कवि, उपन्यासकार, नाटककार और ज्योतिषी ऐसे लोग जन्म लेते हैं। चतुर्थ स्थान में लग्नेश गुरु होने के कारण ईश्वरी ज्ञान प्राप्त होने के उपरान्त भी इन्हें खुद का घरबार छोडने की जरुरत नहीं पड़ी । धनु लग्न के साधु-सद्गुरु बड़े सावधान होते है । ये संसारी थे परंतु माया मोहके परे ।

धन स्थान में शनि, बुध और शुक्र हैं । शनि के कारण शुरु-शुरुमें तपश्चर्या व गुरु सेवा कर जो षट्साधन सम्पति कमाई थी, वह जिन्दगी के आखीर तक समाधिस्थ होने तक काम में आई । बुध त्र शुक्र के कारण उम्रभर अन्नवस्त्र की कमी महसूस न हुई । वाणी में मिठास किन्तु अप्रिय सत्य बोलनेवाली । इसी कारण इन्हें दो औरतें थी । इस मे विशेष बात यह है कि दूसरी औरत जन्मांध थी ।

तृतीय स्थान में रवि नेपच्यून-यूति है । इस युति में लोगों को स्वप्न के व्दारा दृष्टांत देने का कार्य निरंतर अभी तक चालू है । इन्होंने एक दूसरा चमत्कार किया था। इनके एक सच्चे शिष्य थे जिनका नाम इन्होंने ''ब्रह्मानंद'' लिखा था । ब्रह्मनंदजी विजापूर जिले के बदामी तालुका में जालीहाल नामक एक छोटेसे देहात के मूल निवासी थे । युवावस्था प्राप्त होते तक इन के हाथ से अस्वाभाविक तया चमत्कार हुआ करते थे । इस प्रकार से ये एक पूर्वजन्मार्जित सिद्ध पुरुष थे । आप बाद में अध्ययन के लिए काशी गये और वहाँ से महापंडित बनकर आप पंडितों को वादविवाद में हराते हुए और जयपत्र लेते हुए इन्दौर में आ पहुंचे । इस शहर में गोंदावले कर महाराज का उस समय मुक्काम था । आप इन के पास जाकर पहुँचे और वादविवाद के लिए उनसे आग्रह करने लगे । महाराज ने तो पहले उसे खूब समझाया कि भाई मैं तो तुम्हारे समान पंडित नहीं हूँ, केवल एक जंगली अनपढ़ आदमी हूँ,परन्तु ब्रह्मानंदजी ने उनकी एक भी बात न सुनी । महाराज ने सोचकर देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि वह पूर्वजन्म से ही अपना शिष्य है और वही मौका है जब कि उसे आत्मज्ञान देना चाहिए । यह सब सोचकर महाराज ने उसे दूसरे रोज वादविवाद के लिऐ निमंत्रण दिया ।

दूसरे दिन आप वादविवाद की खूब तैयारी कर महाराज के पास आये तो वहाँ उन्होंने देखा कि महाराज ने हनुमान जी का बड़ा ही भयंकर उग्र स्वरूप धारण किया है। ऐसे उग्र स्वरूप को देख कर ब्रह्मनंद जी दौड़ कर महाराज के चरणों में जा गिरे और आत्म ज्ञान देने के लिए महाराज से विनंती की। महाराज ने उस से कहा कि तुम अपनी सर्व विद्या प्रथम भूल जाओ, फिर मैं तुम्हें आत्मज्ञान दूंगा। इस तरह कुछ काल बीत जाने पर इन्होने महाराज से आत्मज्ञान प्राप्त किया। बाद में आप कर्नाटक में जा बसे और ब्रह्मानंद के नाम से प्रसिद्ध हुअे। महाराज का काशी से लें कर रामेश्वर तक नाम गूँजता था। लोंगों को स्वप्न में जा कर दृष्टान्त देना और अन्य प्रकार का देवी देवता स्वरूप धारण करना आदि बातें केवल धनु व मीन लग्न में तथा नेपच्यून से युक्त रवि-चन्द्र में ही पाई जाती है।

चतुर्थ स्थान में मीन का गुरु है। महाराज ने बचपन में ही घर बार छोड़ा और आत्मज्ञान प्राप्त करने के इरादे से अक्कल कोट के स्वामी महाराज के पास आये। परन्तु स्वामी महाराज ने खुद आत्मज्ञान न दे कर उन्हें नायझाम प्रांत में के येलेगाँव के तुकामाई के पास भेज दिया। तुकामाई पूर्णावस्था को पहुँचे हुए ज्ञानी और भक्तियोगी पुरुष थे। इन्होंने महाराज की अच्छी तरह परीक्षा ली और कसौटी में पूरी तरह उतरने के बाद उन के शीर्ष पर अपना वरदहस्त रख कर राम नाम की त्रयोदशाक्षरी का मन्त्र दिया और भक्तिपन्थ आगे चलाने के लिए उन्हें आदेश दिया। उसी प्रकार महाराज ने रामभक्तिपन्थ को चलाया और सर्वत्र राम नाम की महिमा को बढ़ाया। रामभक्ति महिमा बढ़ाने का कारण यह है कि इन के व्ययस्थान में मंगल और राहू हैं।

पंचमेश व्यय स्थान में राहू से युक्त होने के कारण सन्तान लाभ अवश्य हुआ किन्तु टिक न सकी। व्ययस्थान में राहू-मंगल होने से ये पूर्ण भक्तियोगी थे और इन्होने मोक्ष प्राप्ति की। चन्द्र अष्टम स्थान में स्वराशि में होने के कारण इन्होने अपनी इच्छा से देह त्याग कर समाधि ली। उस समय मठ में किसी को भी समाधि के लिए आप ने न तो बतलाया और न किसी को अपने पश्चात् मठाधिकारी नियुक्त किया।

भगवान् रामकृष्ण परमहंस
(पूर्ण भक्तियोगी किन्तु ज्ञानी)
जन्मकुंडली
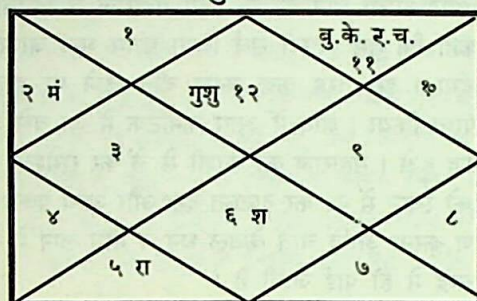
मीन लग्न,भक्तियोग का लग्न। लग्न में गुरु-शुक्र की युति ज्ञान की या भक्ति की चरम सीमा होने की निदर्शक है। पारमार्थिक मार्ग की ओर जाने पर विवाह होने पर भी न हुए समान ही था; क्यों कि इन दोनों ग्रहों के सामने वक्री शनि था। गुरु मीन राशि में लग्न में ही होने के कारण "तोतापुरी" नामक महात्मा पुरुष इन के गुरु थे। कलकत्ते में आ कर बसने के बाद आप का नाम मशहूर हुआ।

भाग्येश मंगल तृतीय स्थान में वृषभ जैसी लड़ाकू वृत्ति (fighting instinct) वाली राशि के पास होने के कारण युद्धप्रिय भगवती काली देवी के आप उपासक थे। पंचमेश चंद्र कीर्ति स्थान में और कुंभ राशि में होने के कारण इन्होने हजारों शिष्य बनाने की अपेक्षा एक ही शिष्य ऐसा बनाया कि जिस ने आर्यधर्म का ध्वज अखिल संसार मे लहराया और शिकागो में १८९३ साल के सितम्बर महीने में जो धर्म परिषद् हुई थी, उस में सब धर्मो में हिन्दूधर्म श्रेष्ठ है, ऐसा सिद्ध किया। इस शिष्य का नाम स्वामी विवेकानन्द है। गुरु-शिष्य की यह जोड़ी अभूतपूर्व और अलौकिक थी। ("एक श्चंद्रस्तमोहन्तीनच तारागणो-पिच") यह जोड़ी याने महाराष्ट्र के श्री समर्थ रामदास और कल्याण हैं। इसी ने फिर से बंगाल में जन्म ले कर राष्ट्र कार्य किया है।

इन्होंने अपने जीवन में कभी चमत्कार नहीं किये। ये विदेही स्थिति को पहुँचे हुये थे और अपनी इच्छा से समाधिस्थ हुए। स्वामी विवेकानन्द जी ने इन का नाम सारी दुनिया में फैलाया।

स्वामी विवेकानन्द

ज्ञानयोगी ब्रह्मचारी

ता. १२-१-१८६३, शके १७८४ पौष कृष्ण सप्तमी, सोमवार सबेरे ६-३३ मि. ३३ सेकंड, कलकत्ता टाईम जन्मस्थल कलकत्ता।
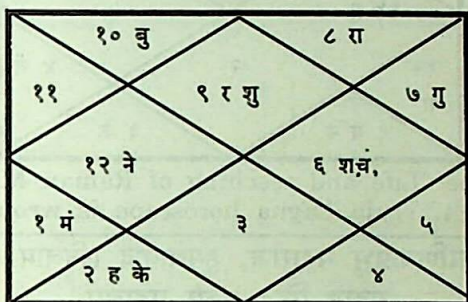
स्वामी रामतीर्थ

प्रापंचिक ज्ञानयोगी और हठयोगी

ता. १२-१०-१८७३ इष्टघटी २५-१५ जन्मस्थल-मुरलीवाला, जि. गुजरन-वाला, पंजाब।
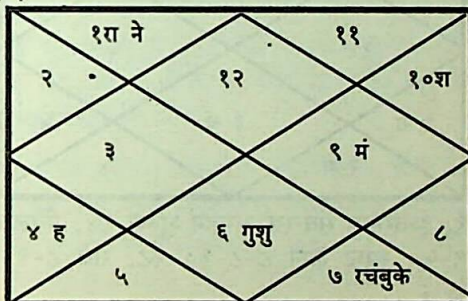
रमण महर्षि

हठयोगी मौनी, स्व. नारायण महाराज के समान

शके १८०१ अगहन कृष्ण द्वितीया, मंगलवार, सबेरे, ता. ३०-१२-१८७९

लग्नकुंडली
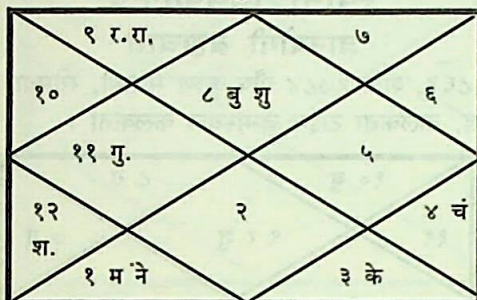
Please see "Life and teaching of Raman Maharashi Page 14," Tula Lagna horoscope is wrong one

---

श्री माणिकप्रभु महाराज, हुमणाबाद (निजाम स्टेट)

महान सिद्ध पुरुष महात्मा

जन्मकुंडली
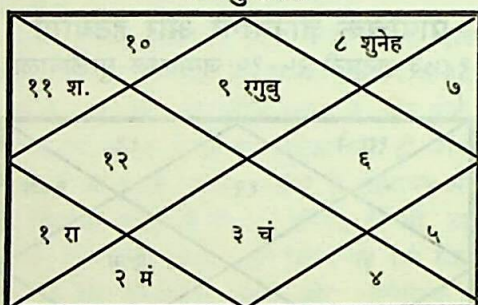
श्री शके १७३९, ईश्वरनाम संवत्सर अगहन शुल्क १४, मंगलवार सूर्योदयात् गतेष्ट घटी ५९-५० स्पष्ट लग्न ८-८-१०-२८, रवि ८-९-४०-२०. ता. २२-१२-१८१७ ।

आप ने बचपन से ही सिद्धि के बहुत से चमत्कार किये। मुसलमानों ने इन चमत्कारों से घबरा कर आप को उच्च श्रेणी की "पीरानपीर दस्तगीर" ऐसी उपाधि प्रदान की। आप बे गुरू हो कर भी जन्म से Born सद्गुरु थे; आप मुक्त हो गये।

श्री संत तुकडोजी महाराज

आप का जन्म ता. १७-११-१९१०, सूर्योदय प्राक् घड़ी ५, जन्म स्थल- वरखेड, जिला वर्धा।

जन्मकुंडली

इस वरखेड में पहले बहुत वर्षों से एक महात्मा अडको जी महाराज नाम से रहा करते थे। बड़े ज्ञानी वैराग्य संपन्न और साधारण उन्मत्त अवस्था में गाँव के बाहर एक कुटी में अपना जीवन व्यतीत करते थे। आप बचपन से अडको जी महाराज के पास भजन हेतु बैठा करते थे। आप ने विवाह नहीं किया। आप के बचपन में ही माता का स्वर्गवास हुआ और पिता का सन् १९४४ में हुआ, ऐसा मालूम होता है। आप रात दिन वैराग्य वृत्ति में रहकर भजनानंद का लाभ उठा रहे थे।

आप का शिष्य समुदाय काफी है। राजनैतिक कार्य में भी आप भाग ले रहे हैं। इस का ज्ञान चिमूर-आष्टी के हत्याकाण्ड से मालूम होता है। आप हिन्दी और मराठी भाषा में ईश्वर गुणानुवाद पर अच्छी कविता लिख कर प्रकाशित कर रहे हैं। आप गुरुदेव सेवादल नामक एक दल स्थापित कर

उस के द्वारा लोगों को भजन का आनंद देने का प्रबन्ध कर रहे हैं। आप एक गुरुदेव मासिक और गुरुदेव प्रेस चला रहे है।

आप का तुला लग्न होने से और पंचम, दशम और व्यय इन स्थानों में पाप ग्रह नहीं हैं। इसलिए आप को आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होगा ऐसा मुझे विश्वास है। आप के विषय में हाल में जनता ऐसा बोल रही है कि पहले आप जैसे भजन में देहावस्था में नहीं रहते थे,वैसी अवस्था बाद में नहीं है। अब आप पूर्णतया देहावस्था में रहते हैं। इस जन्म में आत्म साक्षात्कार न होते हुए उमर के ६०-६२ या सन १९७२ में आप का देहावसान हो जायगा।

श्री लाटणे महाराज

इन महाराज के दर्शन के लिए मैं गया था। तब मुझे निम्नलिखित इन का इतिहास मिला, परंतु कुंडली नहीं मिली। आप के चेहरे और मस्तक पर से ज्ञात होता है कि आप पूर्वजन्म से ही सिद्ध पुरुष होते हुए राजयोगी मालूम होते हैं। बचपन से ही सिद्धावस्था में व्यवहार चल रहा है। आप का विवाह नही हुआ, उमर हाल में ५० साल की होगी। आप तहसील उमरेड, नागपुर के समीप श्रीमान बुटी के महल में रहते हैं। यह सिद्ध पुरुष हमारे केडगाँव के नारायण महाराज के समान मालूम होते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुष अंत तक सच्चे शिष्य नहीं बनाते यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। इन का देहावसान उमर के ७१ वर्ष में होना संभव है।

महान् भगवती कालीभक्त

श्री. श्री. मा आनंदमयी देवी

देवी जी का जन्म त्रिपुरा रियासत में खेऊडा नामक देहात में हुआ। जन्म ता. ३० अप्रैल १८९६, रात को ३ बजे दूसरे दिन गुरुवार था।

माता जी का जन्म मीन लग्न पर हुआ है। यह राशि भक्तियोग पूर्ण होना बताती है।

जन्मकुंडली
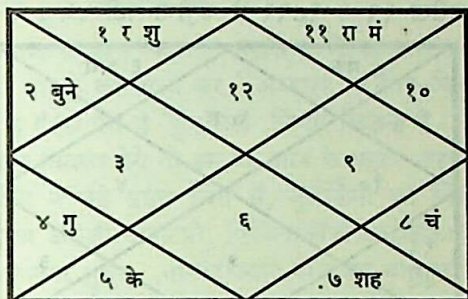
माता जी का विवाह १३ साल की उमर में एक गरीब युवक के साथ हुआ ।

पंचम स्थान में उच्च गुरु रहने से पुत्र संतान नहीं हुई । कुंडली में रवि, गुरु और शनि उच्च रहने से उमर भर दारिद्र्य योग दिखाता है । ये उच्च ग्रह संन्यासी बना देते हैं परन्तु स्त्री होने से संन्यासी नहीं हो सकी ।

व्ययस्थान यह भक्ति, मोक्ष ओर विदेही स्थिति बताता है । भक्ति और मोक्षस्थान में मोक्ष और भक्ति देने वाले राहू और मंगल ये दोनों ग्रह बैठे हैं । इस कारण माताजी को १२ वे वर्ष सन् १९०८ में कुलगुरु ने शक्ति मंत्र की दीक्षा दी । माँ ने काली का नाम जपना शुरू किया और कुछ दिनों के बाद पूर्वजन्म की पुण्याई से काली माता जी का साक्षात्कार हुआ । माता का चरित्र पढ़ने से मालूम होता है कि उनके शरीर में सिद्धि के बहुत से चमत्कार हैं और भक्ति योगिनी हैं परंतु महान् भगवद्भक्त मीरा के समान नहीं हैं । (देखिये ''मातृदर्शन'' श्री ज्योतिषचंद्र राय, (भाईजी) कृत गुजराती अनुवाद, भट रत्नेश्वर भवानी शंकर वकील, श्री रामकृष्ण सेवा समिति, अहमदाबाद) ।

Y .S. Athle Maharaj

Kolhapur S. M. C.

जन्म तारीख १९-१-१८९२ में जन्मेष्ट घटी ४५ ।

जन्म कहाँ हुआ, यह ज्ञात नहीं ।

इन का जन्म तूला लग्न पर हुआ है। इस लग्न वाले लोग साधु महात्मा नहीं बनते, Exceptional में मिलते हैं। बंगाल के भगवान् महाप्रभु गौरांग इन का तूला लग्न था, महात्मा जी तूला लग्न के थे। महात्मा जी ने आत्मा साक्षात्कारी न होते हुए दुनिया का उद्धार करने के लिए कष्ट उठाये और महात्मा पद पर अमर हो गये। आप के माता पिता का देहावसान बचपन में हुआ।

शिक्षा का प्रबंध न होने से कानडी ४ कक्षाएँ और अँग्रेजी ३ कक्षाएँ पढ़ शिक्षा त्याग कर उमर के १७-१८ साल में योगाभ्यास करने जंगल में चले गये। इस समय निजाम स्टेट में रहते थे। पंचम स्थान में गुरु शुक्र की पूर्ण युति रहने से इन को आध्यात्मिक गुरु मिल गये। यह युति पूर्ण ज्ञानावस्था बताती है जैसे भगवान रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ। इन के ज्ञान का एक अनुभव मुझे मिला, वह कहता हूँ -सन् १९४४ के अगस्त महीने में मेरी इन महात्मा से प्रथम भेंट कोल्हापुर में हुई। आप के शिष्य ने कुंडली मेरे पास अवलोकनार्थ लाई। मैने कुंडली देखी और कह दिया कि ये महात्मा आत्म साक्षात्कारी ब्रह्मज्ञ सत्पुरुष होते हुए वहाँ से वापस लौट कर पुनश्च देहावस्था पर आ गये हैं। यह बात सच्ची थी। वे ब्रह्मज्ञ होते हुए भी पूर्वकर्मानुसार कुछ शरीर भोग भोगने के लिए वापस लौटे थे। ये दमा और खांसी की बीमारी

से बहुत जर्जर हुए थे। और उन का अंतकाल भी समीप आया था। उस दिन रात को मुझे मुलाकात के लिए बुलाया। मैं उन के निवास स्थान पर गया, तब हमारी कुछ बातचीत हुई।

मैंने महाराज से प्रश्न किया - महाराज, मैं योगशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र इन दोनों शास्त्रों को मिला कर "अध्यात्म ज्योतिष-विचार" नामक ग्रंथ लिख रहा हूं। इस ग्रंथ मे 'कुंडलिनी' विचार लिखना है। सो आप कृपा कर कर हमें कुछ विवरण देंगे तो हम पर आप के बहुत उपकार होंगे। यह सुन कर महाराज ने बड़े प्रसन्न चित्त से, कुंडलिनी का विचार शुरू कर दिया। उस समय अँग्रेजी अॅनॉटमी, फिजियालॉजी साईकॉलाजी और हमारे प्राचीन वैद्यक ग्रंथकार सुश्रुत, वाग्भट आदि और सब योग शास्त्र के ग्रंथ इन सब आधारों से इतना सुंदर विवेचन अँग्रेजी भाषा में किया। यह विवेचन करीब-करीब पाँच घंटे चला। उस समय आपकी आवाज चढ़ती गई, कहीं भी रुकावट नहीं, न दमा, न खाँसी। यह देख कर हम आश्चर्य से दिग्मूढ हो कर घर लौटे। इतना ज्ञान स्वामी जी को कैसे प्राप्त हुआ, यह गुरु-शुक्र का फल है।

स्वामी जी आजन्म नैष्ठिक ब्रह्माचारी थे, कारण धनस्थान में, चतुर्थ स्थान में और व्ययस्थान में पापग्रह और गुरु-शुक्र युति इस योग पर विवाह नहीं होता।

जिस योग से विवाह नहीं हुआ, उस योग से आत्मज्ञान हुआ, लेकिन शनि, चंद्र ये व्ययस्थान में रहने से दमा और खाँसी पैदा हो कर इसी रोग से उन का अंतकाल मार्च १९४५ में हुआ। मृत्यु के समय आप गाणगापुर जा रहे थे। गाणगापुर स्टेशन नजदीक आ ही रहा था कि आप ने शिष्य से पूछा गाणगापुर स्टेशन आया ? शिष्य ने कहा, क्यों स्वामीजी, क्या बात है? स्वामीजी ने कहा मुझे अपनी देह छोड़नी है। शिष्य ने स्वामी जी से कहा कि आप तो श्रीगुरुदत्त के सामने गुरु को देख प्रणाम करते हुए देह छोडेंगे न? स्वामी जी ने कहा शरीर की तैयारी नहीं है। शरीर छोड़ने की गडबड़ चल रही है। ऐसा कह कर स्टेशन पर गाड़ी आते ही श्रीगुरुदत्त का नामस्मरण करते-करते स्वामी जी ने शरीर त्याग दिया। आप की इच्छानुसार भिमा-अमर

जा संगम पर आप की समाधि बनाई गई है। (मैने खुद आप को कुछ लोगों के सामने कहा था आप की मृत्यु मार्च १९४५ में होगी, वैसा ही हुआ) इन महाराज को फिर से जन्म लेना पड़ेगा।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी

नेहरू जी पूर्वजन्म में "नाथ पंथीय गुसाई" थे चालू जन्म में भारत के प्रधान मंत्री हैं।

जन्म तारीख १४-११-१८८९, रात को १-५ A.M. जन्म स्थल इलाहाबाद।

जन्मकुंडली

६ मं
४ चं
६ रवुशु
५ शह
३ रा
८
२ ने
९ गुके
११
१
१०
१२
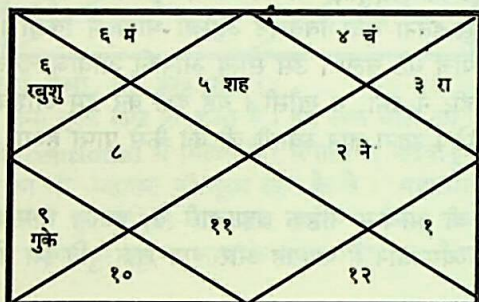
नेहरू जी के कुंडली परसे देखा जाय तो ये पूर्वजन्म में नाथ पंथीय गुसाई थे। जब आप अपने गुरु के आश्रम में रहा करते थे तब योगाभ्यास होता रहा, योग अभ्यास पूर्ण होने के बीच में दो बातें आड़े आईं। पहली बात-बुद्ध धर्म के होने के लिये योग अभ्यास छोड़ दिया। दूसरी बात एक स्त्री के अधीन होना पड़ा। यह स्त्री बड़ी भाग्यशाली थी। वह स्त्री इस जन्म की पत्नी श्रीमती कमला देवी जी हैं।

पूर्वजन्म में इस प्रकार से चलता रहा, फिर देहावसान के समय आप को राजकारोबार की वासना निर्माण हुई। इस का तात्पर्य "शुचीनाम श्रीमताम गेहे योगभ्रष्टोऽभिजयते" इसी न्याय से स्व. श्रीमान् मोतीलाल जी और देवी स्वरूपरानी जी के परम पवित्र उदर में प्रवेश किया। वहाँ से

जीवन क्षेत्र मे अग्रसर हुए और राज्य कारोबार में व्यस्त हो गये। आप का जन्म सिंह लग्न पर हुआ है। यह राशी राजकीय राशी होती है। इस राशि का मूल स्वभाव स्वयं राजा बनना या राज प्रतिनिधि बनना और देश का राज़नैतिक कारोबार चलाना, यह बतलाता है। सिंह लग्न का स्वभाव नीचे देता हूँ। Leo was rising at your birth a sign belonging to the element of fire and the fixed quality. This gives you an open, candid and honourable disposition, magnanimous and generous. You have dignity and self-confidence that will sustain you in trouble and difficulty and that will bring you to the front in life if you use your opportunities wisely. You do not under-rate your own value but are ambitious and masterful with large and farreaching aims and schemes. You have some degree of pride and fondness for display and ostentation at times and the sense of the dramatic is strong in you. You have a warm heart and ardent affections and make a very faithful friend one not liable to change or vacillate. You are compassionate, tender and sympathetic and anxious to give help to those who need it and to protect those who need protection. Your pride is rather easily touched and anger is sometimes quick to rise but you are a forgiving enemy and prefer peace to war. You have a firm strong will and do not readily change your course when you have once decided on it but are capable of persistent affort extended over a long period. You are cheerful, hopeful, sociable and companionable. Your feelings and emotions are quickly roused. You are rather fond of luxury and pleasure and may need to put some curb upon this side of your nature. The Sun is the ruler of the sign Leo.

A Pyramidal figure with a maltese cross at the top or rather on the apex. This is possibly as Glorious a

degree as any in the Zodiac. This degree is impinged by a ray from transeendental sun, one of those suns which with our sun revolves round the grand central sun. Denotes the greatest good the sublime gives, prophetic inspirations rules the wonderful and fills the soul with a flood of celestial glory.

Charubel.

"A sceptre on the crest of which shines a diamond like a magnificent star." The native is born to power eminence fame. He will be the use of his many talents supplemented by a powerful will rise to a foremost position in his sphere of life. There is in the character a large amount of courage, nobility, energy and endurance and the free use of such qualities will under benign fate bring the native into a field of life where he will be a central figure. It is a degree of Superiority

Sepharial.

Daily habits of Leo person is defiant and sweeping in their gestures. Very often the Leo person thumps his fist into his hand. When clinching an argument and the office employee who has worked under an Leo "Chief" will surely have noticed that " danger signals are up". "If the boss" smasks his desk or arm of the chair with open hand when issuing instructions.

A Defiant look :-

The Leo looks at competitors defiantly and with swearing gaze. He walks quickly. He usually sits up right and will back in his chair his feet firmly planted on the floor. He eats that is he takes his meal within few minutes. He takes sleep soundly but he will not awake in early morning.

लग्न का अधिपति तृतीय स्थान में है। लग्नेशो तृतीये षष्ठे सिंह तुल्य पराक्रमी। सर्व संपत्‌युतो मानी द्विभार्यो मतिमान सुखी॥ जब कि लग्नेश तृतीय या षष्ठस्थान में हो तो वह पराक्रमी सब प्रकार की संपत्ति-मान होता है। अति बुद्धिमान होता है। लेकिन एक बात हो सकती है कि वह द्वितीय विवाह कर ले, लग्न में सिंह राशि का शनि है।

Saturn in Leo at your birth will help you in life giving you power, authority, or responsibility and in some measure you will stand outside the crowd. This Saturn denotes that your birth is not fortunate so far as your wordly prosperity is concerned as it indicates that the environment into which you were born was not the most favourable for progress or prosperity. You will have to suffer from many obstacles to contend with and your success depends more upon your own efforts than upon any help from outside. Your goal eventually must be chasity and justice : the more you cuitivate moral virtues the nearer will you approarch the true Saturnine qualities- Meditation, Contemplation, Truth, Justice, Equality.

धनस्थान

इस स्थान में कन्या राशि उदित है। अधिपति बुध तृतीय स्थान में है। ''धनेशे तृतिये तुर्ये विक्रमी मतिमान गुणी॥'' जब धनेश तृतीय स्थान में हो तो पराक्रमी होता है। बुद्धिमान और गुणवान होता है। इस स्थान में मंगल है। यह मंगल, मंगल ही करता है। खाने पीने की कमी नहीं करता। बादशाही रुआब में रखता है। और पितृ धन भी देता है। फिर अपनी कमाई का धन उस में न पड़ेगा। स्वर्जित धन ४८ की उमर से देता है। अपनी कमाई से अपने घर का खर्चा चले। संग्रह की वृत्ति नहीं रखता।

यह ग्रह इस स्थान में रहने के कारण बड़ा धैर्यशाली, अपने जीवन वित्त की पर्वाह न करने वाला, ऐश आराम से जन्म लेकर शरीर पर आसक्ति न

रखनेवाला, अपने व्यक्तिगत जीवन को महत्व न देते हुए सारे संसार की चिंता करने वाला, ऐसे पुरुष को मंगल बनाता है।

तृतीय स्थान

इन स्थान में तुला राशि उदित है। इसका अधिपति शुक्र इसी स्थान में है। इस का फल यह है कि शुक्र तुला स्व राशि में है। सहजगते सहजपतौ नृपमंति सौहृदेऽतिनिपुणश्च। गुरुपुजन निरतो वै नृपतो लाभं परं कुरुते॥ जब कि तृतीय स्थान का अधिपति तृतिय स्थान में हो तो यह राजमंत्री, मित्र बहुत सरकार से लाभ उठाना,और अपने कार्य में निुपण हो कर अपने गुरुजन को मानता है। देखिये कि महात्मा जी पर कितना प्रेम था। इस स्थान में रवि, बुध, शुक्र, हर्षल ये चार ग्रह हैं। रवि इस स्थान में रहने से भाई लोगों का सौख्य नहीं मिलता। यह तूल राशि रवि की नीच राशि है। रवि नीच राशि में बहुत अच्छा फल देता है। पितृ सौख्य बहुत काल तक मिल कर पिता के साथ मिलजुल के चलते हैं और कायदे आजम बनाता है।

इस स्थान पर बुध रहने के कारण इन के लेखादि बहुत अच्छे बन पड़ते हैं। देख लीजिये कि नेहरु जी ने अपनी लड़की को लिखा हुआ पत्र व्यवहार कितना सुंदर है। इस स्थान में स्वराशि का शुक्र है। पत्नी को बहुत मानते है कि यह देवी हैं। स्त्री सुख ज्यादा नहीं देता (देखिये सुभाष के कुंडली विवेचन में)।

चतुर्थ स्थान

इस स्थान में वृश्चिक राशि उदित है और अधिपति मंगल धन स्थान में है। इस योग का फल Family में मेंबर्स बहुत कम रखता है। सर्व संपद्युतो मानी साहसी कु. सुखन्विताः पितृभक्ति धनाश्रयः शुभ युतः श्रुतिशास्त्र विशादः॥ पित्रार्जित सब धन मिलता है। स्वभाव बड़ा तेज रखता है और साहसी होता है कुछ स्थावरादी प्राप्त होती है और पिता पर प्रेम करते हैं। कुछ शास्त्र Science जानते हैं। अंतकाल याने बुढ़ापे का काल बहुत अच्छा

गुजरता है। In oldage मान सन्मान ज्यादा होता रहेगा। The end of the life will be the Sunny and most glorius. Pandit Motiḷal Nehru died on 6-2-1931

पंचम स्थान

इस स्थान में धनु राशि उदित है। इस राशि का अधिपति गुरु पंचम स्थान में है। सुतेशः पंचमें यस्य तस्य पुत्रो न जीववति। क्षणिकः क्रूर भाषीच धार्मिको मतिमान भवेत ॥ जब पंचमेश पंचम स्थान में रहता है तब संतति जीवित नहीं रहती। प्रसंगवशात् थोड़ासा कठोर बोलने वाला, अपने धर्म पर श्रद्धा रखने वाला और बुद्धिमान होता है। इस स्थान में गुरु धनु राशि में है। धनु राशि का वर्णन नेता जी की कुंडली में देखें। ऐसी राशि में गुरू Law की शिक्षा पूरी कराता है। जिस तरह की शिक्षा ली उस का फल अंत तक नहीं मिलता। कन्या संतति देता है। पुत्र संतति नहीं। आज हिदुस्थान की प्रजा इन को पिता मानती है। विश्व कुटुंब को पालने वाला हो तो प्रजा को पुत्रवत् मानता है।

षष्ठ स्थान

इस स्थान में मकर राशि उदित है और अधिपति शनि लग्न में बैठा है। षष्ठेशे सप्तमें लाभे लग्नेवा पशुमान भवेत। धनवान गुणवान मानी साहसी पुत्रवर्जितः ॥ जब षष्ठेश लग्न में हो तो धनवान, गुणवान, मानी और साहसी परंतु पुत्र से वर्जित होता है। यह षष्ठेश शनि होने के कारण प्रबल शत्रु से लड़ना पड़ता है और उस में यश मिलता है। इसी के फलस्वरुप आज तक ब्रिटिश सरकार के साथ लड़े और स्वराज्य प्राप्त हुआ। यह शनि तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं रखता। मस्तिष्क की बीमारियाँ होना संभव है, परंतु आयु अच्छी देता है।

सप्तम स्थान

इस स्थान में कुंभ राशि उदित है। अधिपति शनि लग्न में है। जब सप्तम स्थान का अधिपति लग्न में हो तो पत्नी अपने पति पर प्रेम बहुत करती और पति को देवता मानती है। पति की आज्ञा पालन करने वाली अपने घर कारोबार में दक्ष और सब लोगों के साथ अच्छी तरह से बर्ताव करने वाली होती है। लेकिन स्व. श्रीमती कमला देवी जी को अपने पति को

भारत वर्ष का प्रधान मंत्री होते हुए देखने का उनके भाग्य में नहीं था In 1936 Kamla Devi died. आप की पत्नी का स्वभाव Saturn governing the seventh house denotes should marriage take place however it promises a faithful and steady partner one who is just though rather grave and serious very industrious. preservering. careful. thrifty and economical. It is not a very favourable testimony for prosperity but it denotes a faithfulness in the marriage state although care should be taken not to allow coldenss to spring up between you at any time for your partner will not be over demonstrative in affection and will prefer action to speech and loving deeds in preference to the use of many words of enderment.लग्न में सप्तमेश शनि बैठा है, आप पर शनि का अमल है। शनि वृद्धावस्था में बहुत अच्छा फल देता है। यह शनि सिंह राजनैतिक राशि में रहने के कारण Those born under the influence of Saturn you will find the best outlet for their particular talents in legal works philosophy. With suitable training they exel as barristers and Judges. and make successful ambassdors and diplomats. The ministry is a suitable career for them.

मृत्यु स्थान

इस स्थान में मीन राशि उदित है, अधिपति गुरु पंचम स्थान में है। यह योग यह बताता है कि आप की आयुमर्य्यादा कम से ६५ और ज्यादा से ज्यादा ७०. वर्ष की है। यदि भगवान् राम जी की कृपा हो तो ७५ वर्ष की आयु मिलेगी। मेरी समझ में ७५ वर्ष तक आप जीयेंगे। आप की मृत्यु अच्छी होगी। सावधान रहना कि कहीं आप पर गोलाबारी न हो, क्यों कि आप की कुंडली में मंगल के पीछे शनि है, लेकिन एक बात सत्य है कि आप की मृत्यु सामान्य आदमियों की तरह नहीं होगी।

भाग्य स्थान

इस स्थान में मेष राशि उदित है । अधिपति मंगल धनस्थान में है । आप का भाग्योदय बचपन से ही है, लेकिन आप का भाग्य मेरी समझ में श्रीमती कमला देवी जी की मृत्यु के पश्चात उदय हुआ है और वह अंत तक रहेगी

दशम स्थान

इस स्थान में वृषभ राशि उदित है । अधिपति शुक्र तृतीय स्थान में है। धने मदेच सहजे कर्मेशो यदि संस्थितः। मनस्वी, गुणवान, कामी सत्य धर्म समन्वित ः ॥ जब दशम स्थान का अधिपति तृतीय स्थान में हो तो बहुत गुणवान होता है। सत्य धर्म का पालन करने वाला होता है। इस स्थान में नेपच्यून है । ये यह बताता है कि कॉलेज में जिस तरह की शिक्षा प्राप्त कर ली है, उस विद्या पर आजीवन नहीं चलने देगा और दूसरा कुछ जीवन का मार्ग बताता है । यह जीवन में बहुत कष्ट दे कर मान सन्मान देता है । जनता प्रेम करती है। और लोकाग्रणी बनते हैं। आयु के अंत तक मान सन्मान बढ़ता जाता है ।

लाभ स्थान

इस स्थान में मिथुन राशि उदित है । अधिपति बुध तृतीय स्थान में है। कुशलः सर्व कार्येषु सहज वत्सल एव नर : सदा सहज गे भव भावपती शुचि : स्वजन मित्र जननतिलाभदः ॥ सब कार्य करने में कुशल, अन्य लोगों पर अपने लड़के के समान प्रेम करना । शुचिता, आचरणशील और सब लोगों से फायदा मिलत्ता है, यह योग अंतिम अधिकार देता है । परदेश में रहना पड़ता है । निर्वासित हो कर कष्ट उठाना पड़ता है । मृत्यु के समय लोक सेवक बने रहना, यह वासना बनी रहेगी ।

व्यय स्थान

इस स्थान में कर्क राशि उदित है । अधिपति चन्द्र व्यय स्थान में स्वर राशि में है । यह योग पुत्र संतान को धोखा देता है, बहुत बुद्धिमान होता है । स्थिर कार्य करने वाला विभूतियुक्त, दीर्घायु होता है। यह चन्द्र कष्ट देता है, इस का अनुभव जेल यात्रा करनी पड़ी, कुछ काल तक निर्वासित होना पड़ा। इस का

परिणाम यह हुआ आज भारत के प्रधान मंत्री हो कर हमारे सामने खड़े है । यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप के शरीर में ईश्वरांश ज्यादा होने से महात्मा जी की संगति बहुत काल तक मिली।

योग विचार

पंडित जी की कुंडली में कुछ ग्रह.योग बहुत अच्छे है ।

पहला योग– दशम स्थान में नेपच्यून, लाभस्थान में राहू, व्ययस्थान में चंद्रमा, लग्न में शनि, धनस्थान में मंगल, तृतीय स्थान में रवि, शुक्र और बुध। इस योग का नाम छत्र योग होता है लेकिन सप्तम स्थान में ग्रह नहीं है। यह योग बताता है कि पूर्वजन्म में योगी थे। उस जन्म में योगभ्रष्ट हुए थे। भगवद्गीता में कहा है ''शुचिनाम श्रीमंतागे हे योग भ्रष्टोऽभिजायने'' इस नियमानुसार पंडित जी का जन्म संपन्न घर में हुआ और इस योग का फल पूर्वायुष्य में कष्ट उत्तर आयुष्य में सुखी, अधिकार भोगना, लोक सेवक बनना राष्ट्र के नेता बनना, ये फल हैं ।

दूसरा योग– मंगल के पीछे शनि इस का फल नेता जी की कुंडली में शनि-मंगल के प्रतियोग का फल दिया है, वही फल यहाँ लगता है। इधर एक आशंका उत्पन्न होती है । कि महात्मा जी के अनुसार इन की मृत्यु तो न हो Can he be assinated like Mahatmaji? I have much doubt about it ! यह अधीर घटना सन् १९५२ साल के आखीर तक होना ज्यादा संभव है ।

तीसरा योग– गुरु राहू का प्रतियोग पंचम और एकादश में हुआ है । इस योग का प्राचीन-अर्वाचीन ज्योतिष ग्रन्थ में अच्छा फल नहीं दिया है । मैने इस का फल अपने ग्रंथ में यह दिया है कि ''जिस की कुंडली में यह प्रतियोग या युति है, वह स्वयम् शिक्षा लेता है और आगे आता है याने लोगों में नाम बहुत, या वह लोगों का नेता होता है। लाखों लोग इनके अनुयायी होते हैं परंतु पुत्र संतति नहीं होती, हुई तो भी आगे नहीं चमकती । ये लोग सामाजिक या राजकीय क्रान्ति के लिए पैदा होते हैं और बडे महात्मा होने के लायक होते हैं । ''

इस का एक उदाहरण आप के सामने रखते हैं । एक वड़ा महात्मा योगीश्वर एक बडे वट वृक्ष के नीचे बैठा है, उसके मस्तक पर पाँच मुख वाला सर्प डोल रहा है। हजारों लोग पैर पर शीश नमा रहे हैं; सामने आध्यात्मिक शिष्य बैठे हैं। ''मेरे सामने इस का एक व्हीजन vision आया, वह यह है की एक वडी भारी भयंकर तेजस्वी आँख है । वह इतनी तेजस्वी है कि आप देख नहीं सकते। उसं तेज में से बहुत सुंदर प्रकाश फैल कर वहुत दूर तक जा रहा है। उस प्रकाश में लाखों लोग चुपचाप चले जा रहे है।'' इस दृश्य का अनुभव हम कर रहें है और इतना सच्चा हो रहा है कि देखिये पंडित जी के एक शब्द के अनुसार हिंदुस्थान की करोडों जनता झूल रही हैं और चुपचाप चल रही है ।

इस योग का एक फल मिलना जरूर है। वह फल है अध्यात्म ज्ञान। ये भगवान् महाबीर जी के उपासक हैं। इन के मस्तक पर सद्‌गुरु की कृपा वरद का हस्त पड़ने का काल दिसंबर १९४९ में है।

''ऊपर गुरु-राहू का जो vision दे दिया है वह मैने सन् १९४२ में ''ग्रहण विचार'' नामक राहू पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखा है, उस में आप को पढने को मिलेगा ।'

महादशा विचार

चालू महादशा विंशोत्तरी मान से मंगल की दशा चल रही है। यह दशा ता. २५-११-१९५१ तक रहेगी । कुंडली में धन स्थान में मंगल है। इस से उच्च श्रेणी का अधिकार मिल जायगा । मानसिक कष्ट उठाना पडेगा। शारीरिक कष्ट भी उठाना पड़ेगा। (कोई बम फेंकेंगा या दनादन गोली चलायेगी । या ऐक्सिडेंट होगा।) सारे संसार में हिंदुस्थान का नाम गूँजता रहेंगा, ऐसी करामात आप के हाथ से होगी। इस से आप का नाम लोग दुनिया में बहुत आदर से लेते रहेंगे। आप पर भगवान की कृपा होने वाली है। इसमें World tour होगा ।

राहू की महादशा

ता. २५-११-१९५१ से ता. २५-११-१९६९ तक इस महादशा में सब तरह का

उच्च श्रेणी का अधिकार भोगने और राष्ट्र की सुरक्षा रख कर राष्ट्र का नाम सब दुनिया में हो जायगा । यह देख कर आप को खुशी होगी कि मैं जिस वासना को पूर्ण करने के लिए पैदा हुआ वह कार्य पूर्ण हुआ । इसी से आप को मन में मृत्यु के समय ऐहिक वासना तनिक भी नही रहेगी । और मृत्यु अति शांति से होगी । यह ऐसा कैसा हुआ

आप पूर्व जन्म में नाथ पंथीय गुँसाई थे । पूर्वजन्म में उच्च श्रेणी का अधिकार भोगने की वासना उत्पन्न हो गयी और मृत्यु के समय यह व्रासना प्रबल रही है। इस वासना- प्रभाव से आप फिर जन्म ले कर आये थे परन्तु इस में यह हुआ कि आप सिंह लग्न पर पैदा हुए । इस लग्न के लोग कभी भी सच्चा संन्यासी या महान् महात्मा नहीं होते, क्योंकि यह सिंह राशि Kingly sign रहने से नहीं होते। आप पूर्व जन्म में नैष्ठिक ब्रह्माचारी रह कर नाथ पंथीय गुसाईं हो कर सच्चे महात्मा का जन्म ले कर धार्मिक और पारमार्थिक कार्य में संशोधन कर पंथो पंथ के झगड़े मिटाने के लिए पैदा होंगे, इसलिए इन जन्म में मृत्यु के समय में यही वासना रहेगी । इधर एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि आप और सुभाष दोनों के शरीर में भिन्नता मालूम होती है। फिर दोनों की आत्मा और जीवात्मा एक ही है। आप ने सच्ची शक्ति को खो दिया है । जब तक वह शक्ति से आप पूर्णतया नहीं मिलते तब तक आप पूर्णावस्था को नहीं पहुँच सकते। जब वह शक्ति आप को मिलेगी तब आप पूर्णावस्था में आ जायेगें । आप दोनों जोड़ी से कार्य करते रहेंगे , तव हिन्दुस्थान आप पर निर्भर रहेगा ।

॥ इति शिवम् ॥

एक - क्ष

ये एक मुझ पर वहुत प्रेम करने वाले बोहरा जाति के गुरु (Priest) है। जन्म तारीख २२-१-१८९१, दोपहर के २ बज कर ३५ मिनट P.M. जन्मेष्ट घड़ी १७-५८ पल, अक्षांश २३-१, रेखांश ७३-५।

जन्म कुंडली
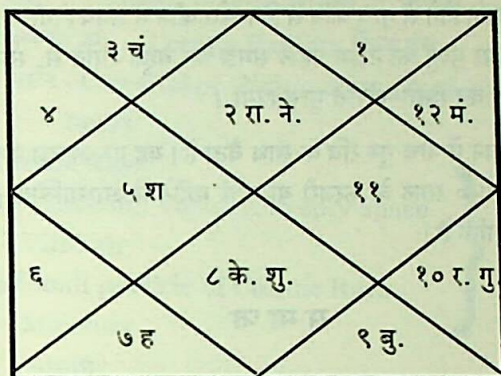
आप का वृषभ लग्न होने से और लग्न में राहू-नेपच्यून रहने से स्वभाव वहुत शान्त, समाधानी और सावधानी से चलने वाले ईश्वरनिष्ठ Very secretive and reserved, ये देवी देवता, गुरु और जनों पर भक्ति रखते हैं, और कोई भी कार्य स्थिर बुद्धि से करते हैं। विषयोपभोग की ओर इन की प्रवृत्ति कम होती है। ये साहसी, निर्लोभी, मृदुभाषी, त्यागी, क्षमाशील, विश्वसनीय और आस्तिक होते हैं। संसार में क्लेश सहन करते हैं। स्वजनों पर प्रेम करते हैं और लोग भी इन्हें खूब चाहते हैं। मित्र परिवार काफी बड़ा रहता है।

आप हिंदू तत्वज्ञान से अच्छे परिचित हैं और ज्योतिष भी जानते हैं।

वृषभ लग्न के लोग उपासना और जपजाप्य में बहुत ही दिलचस्पी लेते हैं। इस नियमानुसार इन की उपासना और जपजाप्य चल रहा है। सितंबर - अक्टूबर सन् १९५० साल में आप को उपासना में सफलता मिलेगी और साक्षात्कार होगा।

सप्तम स्थान में शुक्र वृश्चिक राशि का होने से स्त्री सौख्य पूरा नहीं मिला।

अष्टम स्थान में धनु यह ज्ञानी राशि का बुध होने से और चतुर्थ स्थान में सिंह राशि का शनि होने से मृत्यु कौन से दिन ओर कौन से समय होगी यह तब पूर्ण सूचित हो कर या मृत्यु का टाईम पहले समझ कर बहुत शांति से, समाधान से वासना रहित हो कर हँसते-खेलते मृत्यु होगी ।

गुरु स्थान में नीच गुरु रवि के साथ बैठा है। यह गुरु अच्छा फल देता हैं यह गुरु सन् १९५० साल के फरवरी या मार्च महीने में आध्यात्मिक गुरु मिल जायेगा, यह दर्शाता है।

स मा प्त

GLOSSARY

गंगानदी या सुधासिंधु - Cerebrospinal Fluid

सहस्रार चक्र - Choroid plexus सुरविटप या वटवृक्ष

सहस्र कमल या दल - Corona Radiata दिव्य मंच

अनाहत ध्वनि - Celestial or Divine Sound which arose from heart

तेज - Cosmic Rays
आकाश - Vaccum, Vacuity, Empty space
हवा - A Vital air
बिंदु - a Small particle of Cosmic Rays
आर्दता - Moisture
अणुरेणु - Atoms
} अदृश्य

आकाश - Sky
वायु - Wind
अग्नि - Fire
जल - Water
पृथ्वी - Solid Substance of matter
} दृश्य

कुंडलिनी या चित्रिणी नाड़ी - Filum - Terminal

तृतीय नेत्र - Pineal gland

मरुदण्ड - Spinal Cord

मूलाधार - Pelvic Plexus

स्वाधिष्ठान - Hypogastric Plexus

मणिपूर - Solar Plexus

अनाहत - Cardiac Plexus

विशुद्ध - Carotid Plexus

आज्ञा - Pineal Galnd

विवर - Canalis Centrlis

स्वयंभु लिंग - Glomus Coccygeal body, Gland of Lashka

असत - Non-Entry Non Existence - महाब्रम्ह spirit

सत् सृष्टी - Matter

ब्रह्मद्वार - Sacral Canal

आधार ग्रंथ

१ आनंद लहरी

२ ऋग्वेद (हिंदी भाषा टीका)

३ कंकाल मालिनी

४ गोरक्ष पद्धति

५ गोरख संहिता

६ घेरण्ड संहिता

७ तंत्रसार

८ त्रिशिख ब्राम्हण उपनिषद्

९ देवी पंचस्तवी

१० देवी तंत्र

११ ध्यान विंदु उपनिषद्

१२ ध्यान योग प्रकाश (स्वामी) लक्ष्मणानंद जी आर्य समाजी कृत)

१३ नासदीय सूक्त (पूना के आहिताग्नि राजवाडे कृत मराठी)

१४ पंचदशी

१५ पंचिकरण और मूलस्तंभ (मराठी)

१६ पातज्जल योगदर्शन

१७ प्रपंचसार तंत्र

१८ भगवद्गीता

१९ भैरवयामल

२० महायोग विज्ञान

२८ योग तत्वामृत

२९ योग तारावली

३० योग बीज

३१ योग शिखोपनिषद्

३२ योग सोपान (मराठी)

३३ रमल

३४ रुद्रयामल

३५ लघुस्तुति

३६ ललिता सहस्त्र नाम

३७ लक्ष्मीस्तुति

३८ लिंग पुराण

३९ वामकेश्वर तंत्र

४० विश्वसार तंत्र

४१ वेदान्त ग्रंथ (मराठी)

४२ शक्तिसंमोहन तंत्र

४३ शिवसंहिता

४४ षड्चक्र निरुपण ओर पादुका पंचक

४५ सूर्यचक्र (शिवचन्द्र भरतिया इन्दोर विरचित)

४६हठयोग प्रदीपिका

४७ हंसोपनिषद्

४८ ज्ञानयोग (हिंदी गोरखपूर प्रेस)

२१ यजुर्वेद

२२ याज्ञवल्क्य संहिता

२३ योगांक (कल्याण मासिक)

२४ योग कल्पद्रुम

२५ योग कुण्डल्योपनिषद

२६ योग चूडामणी उपनिषद्

२७ योग तत्व प्रकाश

४८ ज्ञानार्णव तंत्र

४९ ज्ञानेश्वरी } मराठी

५० दासबोध } मराठी

५१ मनाचे श्लोक } मराठी

५२ आझाद हिंद फौज (हिन्दी)

* * *

ENGLISH BOOKS

1 Gray's Anatomy
2 American Anatomy
3 German Anatomy
4 Dissectional Anatomy- by Late Dr. Cunningham.
5 Pocket Diary of Anatomy
6 Anatomy of Brain and Cord and Autonomic System : Practice of Medicines and Surgery of America.
7 Anatomy and Physiology by - Jessie Farring.
8 Anatomy of Brain and Spinal cord by - J. Ryland Whiteker.
9 Halliburton's Physiology
10 The Serpent Power.
11 Esoteric Astrology } Alan Leo and
12 Planetery Infulences } Bassle Leo
13 Key to your own Nativity
14 The Element of Esoteric Astrology by Dr. A.. H. Thierens M. A Ph.D.
15 Esoteric Astrology (The key of science of life) by Alvidas
16 The Path way of the sole by Henery. J. Van Stone
17 Twelve Great Gates by Elinor Kirk.
18 The Degrees of the Zodiac Symbolised.
19 Yoga Kundalini by Swami Shiwanand Hardwar
20 Mysterious Kundalini By Late Dr. Rele. Bombay.

21	The Chakras	No Permission Was given by The Theosophical Society of Banaras for the use of these books
22	Lotus Fire	
23	Secret Doctrine	

I am highly and greatly indebted to the authors of the the books mentioned above for the help which I received from these books without which it would not have been so easy for me to finish the work undertaken by me.

H. N. K

फल ज्योतिष्यशास्त्र पर सर्वोत्कृष्ठ व अद्वितीय ग्रंथ
लेखक स्व. ज्यो. पूज्य ह. ने काटवे

मराठी मध्ये	किंमत	हिन्दी भाषा में	किमत
रवि विचार	३०	रवि विचार	२५
चंद्र विचार	३०	चंद्र विचार	२५
मंगळ विचार	४०	मंगल विचार	३०
बुध विचार	३०	बुध विचार	२५
गुरु विचार	४०	गुरु विचार	३०
शुक्र विचार	४०	शुक्र विचार	३०
शनि विचार	४०	शनि विचार	३०
राहु केतु व ग्रहण विचार	७०	राहु केतु व ग्रहण विचार	४०
भाव विचार	३०	भाव विचार	२५
भावेश विचार	४०	भावेश विचार	३०
गोचर विचार	४०	गोचर विचार	२५
शुभाशुभ ग्रहनिर्णय विचार	४०	शुभाशुभ ग्रहनिर्णय विचार	३०
योग विचार भाग १ ते ७		योग विचार भाग १ ते ७	
(एकत्र किंमत	२००	(सजिल्द) मूल्य	१६०
अध्यात्म ज्योतिष विचार	२००	अध्यात्म ज्योतिष विचार	१५०
दैव विचार	२८	दैव विचार	३०
दैव रहस्य	३०	दैव रहस्य	२५
तेज विचार	१०	तेज विचार	१०
प्रश्न विचार	३५	प्रश्न विचार	३०

'अध्यात्म ज्योतिष-विचार' ग्रंथ पर
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और विद्वानों के मत

Readers interested in super-physical phenomena and their relations to life will find many theories expounded which conduce to a deeper insight into the Nature of both seen and unseen.

- Hindu, Madras

Fully illustrated and equipped with sketches and diagrams, Sriyut Katwe's volume contains a full and critical examination of the relation between Philosophy and Astrology.

September 1949 - Astrological Magazine

योगशास्त्रातूनच ज्योतिषशास्त्र निर्माण झाले, हे श्री. काटव्यांचे प्रतिपादन स्पृहणीय आहे. थोर महात्म्यांच्या कुंडल्या दिल्या असून, ज्योतिषाची सप्रमाण सत्यता पटविण्यास त्या उपयुक्त आहेत.

— नवशक्ति, मुंबई.

प्रस्तुत पुस्तक में १८ निबन्धों द्वारा राशियों का वेदान्त दृष्टि से विचार आदि का सुन्दर संग्रह किया गया है।

— नवभारत, दिल्ली.

या पुस्तकात श्री. काटवे यांनी ज्योतिषशास्त्राचा अध्यात्मदृष्ट्या विचार केला असून, ज्योतिष हे योगशास्त्राचे अंग आहे असे दाखवून दिले आहे.

— तरुण भारत, नागपूर.

अध्यात्माशी कौशल्याने ज्योतिष विषयाची सांगड घालणारा हा ग्रंथ अभिनव स्वरूपाचा आहे.

— भारतमित्र, गोवा.

हिन्दु वेदान्त का सुन्दर ढंग से ज्योतिषशास्त्र के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए ब्रह्म को रवि, माया को चंद्र, वैराग्य को शनि और मोक्ष को राहु सिद्ध किया गया है।

— प्रवाह, अकोला.

नागपूर प्रकाशन,
नागपूर